BAJY - 202/बी०ए०जे०वाई०- 202

मुहूर्त्त विचार

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
तीनपानी बाई पास रोड, ट्रान्सपोर्ट नगर के पास, हल्द्वानी - 263139
फोन नं. 05946 - 261122, 261123
टॉल फ्री नं. 18001804025
फैक्स नं. 05946-264232, ई-मेल info@uou.ac.in
http://uou.ac.in

पाठयक्रम समिति

प्रोफे0 एच0पी0 शुक्ल
निदेशक, मानविकी विद्याशाखा
उ0मु0वि0वि0, हल्द्वानी

प्रोफे0 देवीप्रसाद त्रिपाठी
ज्योतिष विभाग
श्री0ला0ब0शा0सं0वि0, नई दिल्ली

डॉ0 देवेश कुमार मिश्र
सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग
उ0मु0वि0वि0, हल्द्वानी

प्रोफे0 वासुदेव शर्मा
अध्यक्ष, ज्योतिष विभाग
रा0सं0सं0 , भोपाल परिसर

डॉ0 संगीता वाजपेयी
अकादमिक एसोसिएट , संस्कृत विभाग
उ0मु0वि0वि0, हल्द्वानी

डॉ0 नन्दन कुमार तिवारी
अकादमिक एसोसिएट , ज्योतिष विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

पाठ्यक्रम सम्पादन एवं संयोजन

डॉ नन्दन कुमार तिवारी
अकादमिक एसोसिएट , ज्योतिष विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय , हल्द्वानी , नैनीताल

इकाई लेखन	खण्ड	इकाई संख्या
डॉ0 शिवाकान्त मिश्र असिस्टेन्ट प्रोफेसर , ज्योतिष विभाग जगद्गुरू रामानन्दाचार्य संस्कृत विश्वविद्यालय, जयपुर	**1**	**1,2,3,4,5**
डॉ0 नन्दन कुमार तिवारी **अकादमिक एसोसिएट, ज्योतिष विभाग** उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय , हल्द्वानी	**2**	**1,2,3,4,5**
डॉ0 जितेन्द्र कुमार दूबे सहायक आचार्य, ज्योतिष विभाग श्री लाडदेवी शर्मा पंचोली संस्कृत महाविद्यालय , बरून्दनी, भिलवाड़ा, राजस्थान	**3**	**1,2,3,4,5**
डॉ0 नन्दन कुमार तिवारी अकादमिक एसोसिएट , ज्योतिष विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय	**4**	**1,2,3,4,5**

कापीराइट @ उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

प्रकाशन वर्ष : 2014 ***ISBN No. – 978-93-84632-80-9***

प्रकाशक : उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय , हल्द्वानी

मुद्रक : उत्तरायण प्रकाशन , हल्द्वानी, नैनीताल – उत्तराखण्ड

नोट : - इस पुस्तक के समस्त इकाईयों के लेखन तथा कॉपीराइट संबंधी किसी भी मामले के लिये संबंधित इकाई लेखक जिम्मेदार होगा। किसी भी विवाद का निस्तारण नैनीताल स्थित उच्च न्यायालय अथवा हल्द्वानी सत्रीय न्यायालय में किया जायेगा।

अनुक्रम

प्रथम खण्ड – मुहूर्त्त स्कन्ध	**पृष्ठ - 1**
इकाई 1: मुहूर्त्त परिचय	2-20
इकाई 2: पक्ष,मास,ऋतु,अयन एवं गोल विचार	21-36
इकाई 3: तिथि वार विवेचन	37-54
इकाई 4: नक्षत्र विचार	55-74
इकाई 5 : योग, करण एवं भद्रा निर्णय	75-92
द्वितीय खण्ड - संस्कार मुहूर्त्त	**पृष्ठ 93**
इकाई 1 : संस्कार परिचय	94-102
इकाई 2 : षोडश संस्कार	103-117
इकाइ 3: गर्भाधान, सीमन्तोन्नयन, पुंसवन, नामकरण	118-127
इकाइ 4: जलपूजन, कर्णवेध, अन्नप्राशन, चूड़ाकर्म	128-137
इकाई 5: अक्षराम्भ, विद्यारम्भ , उपनयन	138 – 146
तृतीय खण्ड – यात्रा मुहूर्त्त	**पृष्ठ 147**
इकाई 1: तिथि नक्षत्र शुद्धि	148-161
इकाई 2: वार शुद्धि लग्न शुद्धि	162-172
इकाई 3 : घात विचार	173-183
इकाई 4: यात्रा में शकुन विचार	184-193
इकाई 5: यात्रा में कृत्याकृत्य विचार	194 – 204
चतुर्थ खण्ड - गृहारम्भ एवं गृहप्रवेश मुहूर्त्त	**पृष्ठ 205**

इकाई 1 : शिलान्यास विधि 206-214

इकाई 2 : गृहारम्भ 215-224

इकाई 3 : द्वारस्थापन 225-231

इकाई 4 : जीर्ण गृहप्रवेश 232-239

इकाई 5 : शकुन विचार 240-250

बी0ए0ज्योतिष द्वितीय वर्ष

द्वितीय पत्र

मुहूर्त्त विचार

खण्ड – 1

मुहूर्त्त स्कन्ध

इकाई – 1 मुहूर्त्त परिचय

इकाई की संरचना

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 मुहूर्त्त विचार
1.3.1 मुहूर्त्त की परिभाषा व स्वरूप
1.3.2 मुहूर्त्त विवेचन
बोध प्रश्न
1.4 सारांशः
1.5 पारिभाषिक शब्दावली
1.6 बोधप्रश्नों के उत्तर
1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.8 सहायक पाठ्यसामग्री
1.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना -

प्रस्तुत इकाई प्रथम खण्ड के '**मुहूर्त्त परिचय**' शीर्षक से संबंधित है। **मुहूर्त्त** ज्योतिष शास्त्र का एक अभिन्न अंग हैं, जिसके आधार पर हम व्यक्तिपरक वा समष्टिपरक कार्यों का संपादन करते है।

मुहूर्त्त विश्वोत्पादक काल भगवान के त्रुटि आदि कल्पान्त अनन्त अवयवों में एक महत्वपूर्ण अंग है। जिसके आधार पर ही विश्व के मानव समाज अपने – अपने कर्तव्य करते है तथा स्व – स्व प्रारब्ध और पुरूषार्थ के अनुसार उसका फल प्राप्त करते है।

इससे पूर्व की इकाईयों में आपने ज्योतिष शास्त्र क्या हैं, तथा उसके सिद्धान्त स्कन्धादि विषयों का ज्ञान कर लिया है। यहॉ हम इस इकाई में मुहूर्त्त सम्बन्धित विषयों का अध्ययन विस्तार पूर्वक करेंगे

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप -

1. मुहूर्त्त शास्त्र को परिभाषित करने में समर्थ होंगे।
2. मुहूर्त्त शास्त्र के महत्त्व को समझा सकेंगे।
3. मुहूर्त्त शास्त्र के भेद का निरूपण कर लेंगे।
4. मुहूर्त्त शास्त्र का स्वरूप वर्णन करने में समर्थ होंगे।
5. मुहूर्त्त शास्त्र के सम्बन्ध को निरूपित करने में समर्थ होंगे।

1.3 मुहूर्त्त विचार

1.3.1 मुहूर्त्त की परिभाषा व स्वरूप

मुह धातु में उरट प्रत्यय लगकर '**मुहूर्त्त**' शब्द का निर्माण हुआ है। कालतन्त्र ज्यौतिषशास्त्र में काल के अनेक अंग बताये गये है, जिनमें 5 अंगों की प्रधानता है। यथा –

वर्षं मासो दिनं लग्नं मुहूर्त्तश्चेति पंचकम्।
कालस्याङ्गानि मुख्यानि प्रबलान्युत्तरोत्तरम्॥
पञ्चस्वेतेषु शुद्धेषु समय: शुद्ध उच्यते।
मासो वर्षभवं दोषं हन्ति मासभवं दिनम्॥
लग्नं दिनभवं हन्ति मुहूर्त्त: सर्वदूषणम्।
तस्मात् शुद्धिमुर्हत्तस्य सर्वकार्येषु शस्यते॥

अर्थात् प्रथम वर्ष, 2 मास, 3 दिन, 4 लग्न, और पॉचवाँ **मुहूर्त्त** ये 5 काल के अंगों में मुख्य अंग है।

इनमें ये सभी क्रमश: उत्तरोत्तर बली है। इन्हीं 5 की शुद्धि से समय शुद्ध समझा जाता है। यदि मास शुद्ध हो तो अशुद्ध वर्ष का दोष नष्ट हो जाता है एवं दिन शुद्ध हो तो अशुद्ध मास का दोष नष्ट हो जाता है। एवं लग्नशुद्धि से दिन का दोष तथा मुहूर्त्त शुद्धि से सभी दोष नष्ट हो जाते है।

इस हेतु ही हमारे ज्योतिष के महर्षियों ने सभी कार्यों में मुहूर्त्त शुद्धि देखने का आदेश दिया है।

मुहूर्त्त की परिभाषा –

'मुहूर्त्तस्तु घटिकाद्वयम्' । अर्थात् दो घटी का एक मुहूर्त्त होता है। जगत में समस्त कार्यों हेतु मुहूर्त्त का विधान बतलाया गया है ।

हमारे प्राचीन ऋषियों ने काल का सूक्ष्म निरीक्षण व परीक्षण करने पर यह निष्कर्ष निकाला कि प्रत्येक कार्य के लिये अलग – अलग काल खण्ड का अलग – अलग महत्व व गुण – धर्म है। अनुकूल समय पर कार्य करने पर सफलता होती है। यही दृष्टि व सूक्ष्म विचार मुहूर्त्तत्व का आधार स्तम्भ है। इसी कारण मुहूर्त्त की अनुकूलता का चयन कर लेने में भी आशा तो रहती ही है तथा हानि की सम्भावना भी नहीं है।

मुहूर्त्त का आधार –

विवाहादि सभी कार्यों में, ग्रहों के गोचर में, यात्रा में, सभी संस्कारों में सदैव नियमत: जन्मराशि अर्थात् जन्म चन्द्र राशि व नक्षत्र से ही विचार करना चाहिये। यदि जन्म समय अज्ञात हो तो प्रसिद्ध नाम से मुहूर्त्त देखना चाहिये। इसके अतिरिक्त नौकरी सम्बन्धी बातों में, सामाजिक व्यवहार में, आपसी रीति रिवाजों में, सामाजिक या समूहगत कार्यों में यथा देश, ग्राम या जिले की उन्नति आदि के लिये किये जाने वाले सम्मिलित प्रयासों में, गृह में, नाम राशि अर्थात् प्रसिद्ध नाम से विचार करना चाहिये।

मनुष्य के हृदय में नित्य नई भावनायें एवं कल्पनाएँ जागृत होती रहती है वह उनकी परिपूर्ति के लिये सतत – प्रयत्नशील रहता है। कभी वह सिद्धार्थ हो जाता है, कभी नहीं भी। काल व कर्म की सार्थकता का एकमात्र पक्षपाती ज्यौतिष शास्त्र ही है। अत: ज्योतिर्विज्ञान को इतरेतर शास्त्रों का दण्डनायक निर्णीत करना कोई अतिशयोक्ति न होगी। कहा भी है –

यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा।

तद्वेदांगशास्त्राणां ज्यौतिषं मूर्धनि स्थितम् ॥

पूर्वाचार्यों ने मानवजीवन के विभिन्न करिष्यमाण कर्मों को विशिष्ट काल वेलाओं में विधिवत् कार्यान्वित करने का यत्र – तत्र निर्देश किया है। इन काल नियमन वचनों का विस्तृत अध्याय **'मुहूर्त्त'** संज्ञक है।

अहोरात्र को 60 घटी परिमित ग्रहण करके यद्यपि पूर्वाचार्यों ने विभिन्न देवताओं के द्वारा अधिकृत 30 मुहूर्त्तों की व्यवस्था की है। अत: प्रत्येक मुहूर्त्त 2 घटयात्मक होता है। न्यूनाधिकत्व की स्थिति

में दिनमान रात्रिमान को पन्द्रह से विभाजित कर एक मुहूर्त्त काल ज्ञात किया जा सकता है। विभिन्न मुहूर्त्तों के अधिष्ठाताओं के नाम निम्न चक्र में दिये गये है। साथ ही साथ चक्र में मुहूर्त्त स्वामियों के नक्षत्र भी वर्णित हैं। अत: जिस नक्षत्र में जो कार्य विहित है वह कार्य उसी नक्षत्र के मुहूर्त्त में करना विशेष फलदायक होता है।

दिवा मुहूर्त्त		**रात्रि मुहूर्त्त**	
मुहूर्त्त स्वामी	**नक्षत्र**	**मुहूर्त्त स्वामी**	**नक्षत्र**
शिव	आर्द्रा	शिव	आर्द्रा
सर्प	आश्लेषा	अजपाद	पूर्वाभाद्रपद
पितर	मघा	पू.षा.	रेवती
वसु	धनिष्ठा	अश्विनी कुमार	अश्विनी
जल	पूर्वाषाढा	यम	भरणी
विश्वेदेवा	उत्तराषाढा	अग्नि	कृत्तिका
ब्रह्मा	अभिजित	ब्रह्मा	रोहिणी
ब्रह्मा	रोहिणी	चन्द्र	मृग
इन्द्र	ज्येष्ठा	अदिति	पुनर्वसु
इन्द्राग्नि	विशाखा	वृहस्पति	पुष्य
राक्षस	मूल	विष्णु	श्रवण
वरूण	शतभिषा	सूर्य	हस्त
अर्यमा	उत्तराफाल्गुनी	विश्वकर्मा	चित्रा
भग	पूर्वाफाल्गुनी	पवन	स्वाती

अभिजिन्मुहूर्त्त - यह दिन का अष्टम मुहूर्त्त है जो कि विजय मुहूर्त्त के नाम से प्रसिद्ध है।

'अष्टमे दिवसस्यार्द्धे त्वभिजितसंज्ञक: क्षण:' ॥ (ज्योतिस्तत्व)

सूर्य जब ठीक खमध्य में हो वह काल अर्थात् मध्यान्ह में पौने बारह बजे से साढ़े बारह बजे तक का मध्यान्तर **अभिजिन्मुहूर्त्त** कहलाता है।

यद्यपि मनुष्य के जीवन में उसके जन्मकाल से लेकर मृत्युपर्यन्त समस्त तत्वों से जुड़ी मुहूर्त्तों का विचार आचार्यों के द्वारा ज्योतिष शास्त्र में कथित है, परन्तु हम यहॉ इस इकाई में उन महत्वपूर्ण मुहूर्त्तों का विचार करेंगे, जो कि व्यावहारिक और पारमार्थिक दृष्टिकोण से वर्तमान परिप्रेक्ष्य में हो। इस क्रम में सर्वप्रथम गर्भाधान मुहूर्त्त का नाम आता हैं, यहीं से मनुष्य की उत्पत्ति का प्रथम सोपान आरम्भ होता है।

1.3.2 मुहूर्त्त विवेचन

गर्भाधान मुहूर्त्त - यह प्रथम संस्कार हैं जो ऋतु स्नान के पश्चात् कर्त्तव्य है। भार्या के स्त्री धर्म में होने के 16 दिन तक वह गर्भ धारण के योग्य रहती है, तदनन्तर रमण निष्फल जाता है। रजोदर्शन के दिन से 6,8,10,12,14, 16 वें दिनों में क्रियमाण गर्भाधान पुत्रदायक व विषम दिनों (5,7,9,11,13,15) में कन्या प्रद होता है। इस द्वादश, दिनात्मक काल में विचारणीय मुहूर्त्त शुद्धि - तिथि (उभय पक्ष) – 2,3,5,7,10,11,12,13 (शु.)।

वार – चन्द्र, बुध, गुरू, शुक्र।

नक्षत्र – रोहिणी, मृगशिरा, तीनों उत्तरा, हस्त, स्वाती, अनुराधा, श्रवण, धनिष्ठा एवं शतभिषा।

लग्न – पुत्रार्थी विषम राशि तथा विषम नवांशगत लग्न में तथा कन्याकांक्षी तद् विलोम लग्न में स्त्रीसंग करे। लग्न, केन्द्र – त्रिकोण में शुभग्रह और 3,6,11 वें पापग्रह हो, लग्न को सूर्य, मंगल और गुरू देखते हो तथा चन्द्रमा विषम नवांश और शुभ ग्रहों की सन्निधि में हो तो गर्भाधान से पुत्रोत्पत्ति अवश्यंभावी होती है।

पुंसवन मुहूर्त्त - यह प्रथम गर्भ स्थिति में ही निम्न काल – शुद्धि में करना चाहिये।

मास – गर्भधारण से तृतीय मास।

तिथि – 1 (कृ.) 2,3,5,7,10,11,12,13 (शु.)।

वार – सूर्य, मंगल, गुरू।

नक्षत्र – अश्विनी, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, मघा, तीनों पूर्वा, उत्तरात्रय, हस्त, मूल, अनु., पु.भा., श्रवण, रेवती।

जातकर्म मुहूर्त्त - शास्त्रकारों ने प्रसव के समय नालच्छेदन के पूर्व ही इस संस्कार को कार्यान्वित करने का आदेश दिया है। कारणवश नाल छेदनोपरान्त सूतक प्रवृत्ति हो जाती है। जंन्म से 12 घटी 4 घंटा 48 मिनट अथवा 16 घटी तक यह कर्म सम्पूर्णता को प्राप्त कर लेना चाहिये। यदि पुत्रोत्पत्ति के समय कोई अशौच पहले से ही वर्तमान हो तथापि जातकर्म नि:सन्देह किया जा सकता है। यदि किसी व्यवधान के कारण तत्काल न बन पड़े तो निम्न काल शुद्धि में अवश्यमेव कर लेना चाहिये –

दिन – सूतकान्त के पश्चात 11,12 वें दिन।

तिथि - 1 (कृ.) 2,3,5,7,10,12,13 (शु.) 15।

वार – सोमवार, बुधवार, गुरूवार तथा शुक्रवार

नक्षत्र – अश्विनी, रोहिणी, मृगशिरा, पुनर्वसु, पुष्य, तीनों उत्तरा, हस्त, चित्रा, स्वाती, अनुराधा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा एवं रेवती।

लग्न – 2,3,4,6, 7,9,12 राशि तथा इनकी नवमांश राशि लग्न, जब लग्न में गुरू एवं शुक्र हो।

विशेष – यह संस्कार पुत्र जन्म के अवसर पर ही प्राय: किया जाता है – **'जातमात्रकुमारस्य जातकर्म विधीयते'।** यह निर्णयसिन्धु का मत है। प्रस्तुत संस्कार जातक की आयु और समृद्धि का रक्षक और वर्द्धक होने के कारण पिता – पुत्र के चन्द्र बल में करना चाहिये। पुत्र जन्म सुनते ही

अथवा उपरोक्त समय सवस्त्र स्नान करके पिता शुद्ध भूमि पर आसीन होकर नान्दीमुख श्राद्ध के साथ बालक का विधिवत् जातकर्म करे। मूल, ज्येष्ठा, गण्डान्त, वैधृति, व्यतिपात आदि में उत्पन्न बालक का जातकर्म करिष्यमाण शान्ति विधान के साथ ही करना चाहिये।

प्रसुता स्नान मुहूर्त्त – सूतिका स्नान जन्मदिन से एक सप्ताह के पश्चात ही अभिहित है।

तिथि - 1 (कृ.) 2,3,5,7,10,11,13 (शु.) 15।

वार – सूर्य, मंगल एवं गुरू।

नक्षत्र – अश्विनी, रोहिणी, मृगशिरा, उत्तरात्रय, हस्त, स्वाती, अनुराधा एवं रेवती।

लग्न - 2,3,4,6,7,9,12 लग्न राशि। लग्न सौम्य ग्रह से युत व दृष्ट हो तथा पंचम में ग्रह – राहित्य हो।

नामकरण मुहूर्त्त –

नामाखिलस्य व्यवहारहेतुः। शुभावहं कर्मसु भाग्यहेतुः।
नाम्नैव कीर्ति लभते मनुष्यस्ततः प्रशस्तं खलु नामकर्म॥

उपर्यभिहित वचनानुसार मनुष्य के नाम की सार्वभौमिकता का यह स्तर होने के कारण सूतक समाप्ति पर कुल देशाचार के अनुरूप 10,12,13,16,19, 22 वें दिन नामकरण संस्कार करना चाहिये। प्रकारान्तरेण विप्र को 10,12, 13,16 19, 22 वें दिन नामकरण संस्कार करना चाहिये। प्रकारान्तरेण विप्र को 10 या 12 वें दिन, क्षत्रिय को 13 वें दिन, वैश्य को 16 या 20 वें दिन तथा शूद्र को 30 वें दिन बालक का नामकरण संस्कार करना चाहिये। नामकरण पिता या कुल में वृद्ध व्यक्ति के द्वारा होना चाहिये।

तिथि - 1 (कृ.) 2,3,7,10,11,13 (शु.)।

वार – सोमवार, बुधवार, गुरूवार एवं शुक्रवार

नक्षत्र – अश्विनी, रोहिणी, मृगशिरा, पुनर्वसु, पुष्य, उत्तरात्रय, हस्त, चित्रा, स्वाती, अनुराधा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, रेवती।

लग्न – 2,4,6,7,9,12, लग्न। जब लग्न, अष्टम और द्वादश भाव शुद्ध हो 2,3,5,9 वें चन्द्रमा 3,6,11 वें पापग्रह और अन्यत्र शुभ ग्रह हो।

अन्नप्राशन मुहूर्त्त – जन्म से सौर मास के प्रमाण से 6,7,8,9 10, 12 वें मास में, बालक की पाचन शक्ति उपयुक्त होने पर प्रथम अन्नप्राशन सम्पादित करना चाहिये। प्रकारान्तरेण पुत्र के लिये 6,8 वें मास में तथा कन्या के लिये 5,7 वें मास में प्रथम बार अन्न खिलाना विहित है।

तिथि – शुक्ल 2,3,5,7,10,13,15।

वार – सोमवार, बुधवार, गुरूवार, शुक्रवार

नक्षत्र – अश्विनी, रोहिणी, मृगशिरा, पुनर्वसु, तीनों उत्तरा, हस्त, चित्रा, स्वाती, अनुराधा, अभिजित, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा रेवती तथा जन्मर्क्ष।

1.4 बोध प्रश्न –

1. मुहूर्त्त शब्द में कौन सा प्रत्यय है।

क. मुह ख. मतुप ग. वतुप घ. उरट

2. काल के मुख्य अंगों में पॉचवॉ अंग है।

क. तिथि ख. वर्ष ग. मुहूर्त्त घ. मास

3. लग्नशुद्धि से नष्ट होता है।

क. रात्रि का दोष ख. दिन का दोष ग. मध्याह्न दोष घ. सर्वदोष

4. मुहूर्त्त होता है।

क. 4 घटी का ख. 2 घटी का ग. 3 घटी का घ. 60 घटी का

5. संस्कारों में प्रथम संस्कार है।

क. सीमन्तोन्नयन संस्कार ख. गर्भाधान संस्कार ग. पुंसवन संस्कार घ. इनमें कोई नही

कर्णवेध मुहूर्त्त – जन्म से 12 वें 16 वें दिन या 6,7,8 वें मास में अथवा 3,5 वें वर्ष में बालक का कर्ण छेदन प्रशस्त कहा गया है।

मास – चैत्र मीनस्थ सूर्य त्याज्य, कार्तिक शु. 11 के पश्चात्, पौष धनु संक्रान्ति वर्जित तथा फाल्गुन।

तिथि – शुक्ल 2,3,5,6,7,10,12,13।

वार – सोमवार, बुधवार, गुरूवार एवं शुक्रवार।

नक्षत्र - अश्विनी, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु , हस्त, चित्रा, अनुराधा, अभिजित, श्रवण, धनिष्ठा एवं रेवती

लग्न – 2,3,4,6,7,9,12 लग्न। लग्न में गुरू 4,5,7,9,10 वें शुभ ग्रह, 3,6,11 वें पापग्रह तथा अष्टम गृह विशुद्ध हो।

चूड़ाकर्म संस्कार मुहूर्त्त - जन्म या गर्भाधान से 1,3,5,7 इत्यादि विषम वर्षों में कुलाचार के अनुसार, उत्तरायणगत सूर्य में जातक का चौलकर्म संस्कार करना चाहिये।

मास – चैत्र (मीन संक्रान्ति वर्जित) वैशाख, ज्येष्ठ , आषाढ़ शुक्ल 11 से पूर्व, माघ, फाल्गुन। जन्ममास त्याज्य।

तिथि – शुक्ल 2,3,57,10,11,13।

वार – सोमवार, बुधवार, गुरूवार एवं शुक्रवार।

अक्षरारम्भ व विद्यारम्भ मुहूर्त्त – बालक पॉच वर्ष की अवस्था में सम्प्राप्त हो जाने पर अधोवर्णित विशुद्ध दिन को विघ्नविनायक, शारदा, लक्ष्मीनारायण, गुरू एवं कुलदेवता की पूजा के साथ उसे लिखने पढ़ने का श्रीगणेश करवाना चाहिये। अर्थात् अक्षराम्भ संस्कार करवाना चाहिये।

मास – कुम्भ संक्रान्ति वर्जित तथा उत्तरायण मास।

तिथि – शुक्लपक्ष की 2,3,5,7,10,11,12।

वार – सोमवार, बुधवार, गुरूवार एवं शुक्रवार।

नक्षत्र – अश्विनी, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, चित्रा, स्वाती, अनुराधा, ज्येष्ठा, अभिजित्, श्रवण एवं रेवती।

लग्न – 2,3,6,9,12 लग्नराशि। अष्टम भाव ग्रहरहित होना चाहिये।

वर्णमाला गणितादि में बालक परिपक्व हो जाने पर भविष्यत आजीविका प्रदात्री कोई विशेष या सर्वसामान्य विद्या का शुभारम्भ करना चाहिये। अप्रधान रूप से विद्यारम्भ मुहूर्त्त –

मास – फाल्गुन के अतिरिक्त उत्तरायणमास।

तिथि – 2,3,5,7,10,11,13 आदि शुक्लपक्ष की तिथियॉ।

वार – रविवार, गुरूवार एवं शुक्रवार।

नक्षत्र – अश्विनी, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, आश्लेषा, तीनों पूर्वा, हस्त, चित्रा, स्वाती, श्रवण, धनिष्ठा एवं शतभिषा।

लग्न - 2,5,8 राशि लग्न जब केन्द्र त्रिकोण में शुभ ग्रह तथा 3,6,11 वें क्रूर ग्रह हों।

उपनयन संस्कार मुहूर्त्त - यह संस्कार यज्ञोपवीत, व्रतबन्ध उपनयन, मौंजिबन्धन और यज्ञोपवीत आदि नामों से यत्र – तत्र प्रचलित है। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य का प्रथम जन्म मातृ गर्भ से और द्वितीय जन्म व्रतबन्ध से संस्कृत होने पर माना गया है। अत: वे द्विज वा द्विजन्मा कहलाने के अधिकारी है। अत: ऐसे महत्वपूर्ण संस्कार को शास्त्र - सम्मत काल में विधिवत् सम्पादित करना चाहिये।

काल - सौरवर्ष प्रमाण के अनुसार ब्राह्मण बालक के गर्भधारण या जन्म दिन से पंचम या अष्टम वर्ष में, क्षत्रिय का षष्ठ या एकादश वर्ष में एवं अष्टम वा द्वादश वर्ष में वैश्य का उपनयन संस्कार होना चाहिये।

उपर्यभिहित वर्षों को द्विगुणित कर देने से मध्यमान्तर काल गौण समझा गया है। अर्थात् 8 से 16 वें वर्ष तक ब्राह्मण का 11 से 22 तक क्षत्रिय का तथा 12 से 24 तक वैश्य का यज्ञोपवीत मध्यमफलद होने के कारण अत्यावश्यकता में ही करणीय है।

मास – चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़, माघ, फाल्गुन किन्तु ज्येष्ठ पुत्र के लिये ज्येष्ठ मास त्याज्य है तथा आषाढ़ का प्रयोग केवल क्षत्रिय – वैश्य के लिये और देवशयन के पूर्व ही करना चाहिये। निर्णयसिन्धु में मीनस्थ सूर्य यज्ञोपवीत में शुभ कहा गया है।

पक्ष – शुक्ल पक्ष उत्तम तथा कृष्ण पक्ष मध्यम फलदायक होता है।

तिथि – 1 (कृ.) 2,3,5,6,7 शुक्लपक्ष की 10,11,13।

विवाह मुहूर्त्त -

भारतीय आश्रमिक समाजव्यवस्था के अन्तर्गत गृहस्थाश्रम ही सर्वोत्कृष्ट माना गया है । इसका कारण हैं कि स्वरूप सृष्टि का प्रादुर्भाव ही स्त्रीधारा और पुरूषधारा के पुनीत संगम से हुआ है । यह निर्विवाद सत्य हैं कि परमपिता परमात्मा ने स्वयं को ही, विश्व सृजन के उद्देश्य से नर और नारी स्वरूप दो लम्बरूप खण्डों में मूर्तिमान किया । वामांग को स्त्रीरूप एवं दक्षिणांग को पुरूष रूप में प्रचलित किया । शनै: शनै: इन धाराद्वय ने एक विशाल जन- समूह को खड़ा किया । इस प्रकार, आविर्भूत असंख्य नर नारियों ने संस्कृति के क्रमिक विकास के साथ अपने समकक्ष प्रतिद्वन्दी के प्रवरण की आवश्यकता का अनुभव किया । अन्ततोगत्वा, विवाह प्रथा का जन्म हुआ जो आने वाली पीढियों के लिये अत्युपयोगी सिद्ध हुई । विवाह ही गृहस्थाश्रम की आधारशिला है, और उसी माध्यम से मानव, देवर्षिपित्र्यादि ऋण त्रय से उऋण होकर पुरूषार्थ को प्राप्त करता है ।

विवाह मास –

मिथुनकुम्भमृगालि वृषाजगे मिथुनगेऽपि रवौ त्रिलवे शुचे ।
अलीमृगाजगते करपीडनं भवति कार्तिक पौष मधुष्वपि ।।

सूर्य जब मिथुन, कुम्भ, वृश्चिक, वृष, मेष राशि में हो तथा आषाढ़ मास के प्रथम तृतीयांश तक विवाह करना शुभ होता है । माघ, फाल्गुन, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़ व मार्गशीर्ष ये माह विवाह के लिए शुभ होता है ।

विवाह नक्षत्र – रेवती, तीनों उत्तरा, रोहिणी, मृगशिरा, मघा, मूला, अनुराधा, हस्त, स्वाती आदि नक्षत्रों में विवाह कार्य शुभ कहा गया है ।

पक्ष व तिथि शुद्धि – शुक्ल पक्ष के प्रति आचार्यों का सभी शुभ कार्यों के सन्दर्भ में विशेष झुकाव है । कृष्ण पक्ष की भी अष्टमी तक मतान्तर से दशमी तक लिया जा सकता है । तिथियों के विषय में महत्व नहीं दिया जाता है तथापि जहॉ तक सम्भव हो रिक्ता तिथि को छोड़ना चाहिये । लेकिन प्रचलन ऐसा है कि चतुर्दशी, अमावस्या व शुक्ल प्रतिपदा को ही प्राय: छोड़ा जाता है ।

वर वरण मुहूर्त्त – तीनों उत्तरा, तीनों पूर्वा, कृत्तिका, रोहिणी में शुभ वार व शुभ तिथि में उत्तम शकुनादि देखकर, चन्द्रबल वर व वरण कर्ता दोनों को शुभ होने पर वर का वरण करना चाहिये । इसे टीका, रोकना या ठाका आदि भी कहा जाता है । कन्या का पिता तिलक करके उक्त मुहूर्त्त में लड़के को वचन दें या वाग्दान दें ।

कन्या वरण मुहूर्त्त – तीनों पूर्वा, श्रवण, अनुराधा, उ.षा., कृत्तिका, धनिष्ठा, स्वाती नक्षत्रों में या विवाह के नक्षत्रों में पूर्ववत् शुभ तिथि, शुभ वार, व लग्न में पूर्वाभिमुख या उत्तराभिमुख होकर कन्या को उत्तम वस्त्र, खजूर, फल , मिष्ठान्न व आभूषणादि से वर की माता व बहनें वरण करें । वर के द्वारा कन्या को अंगूठी पहनाते समय भी उक्त मुहूर्त्त व विधि का अनुसरण करना चाहिये ।

द्विरागमन मुहूर्त्त - नव विवाहिता का वधू – प्रवेश के अनन्तर पिता के गृह को लौटकर पुन: भर्त्तृगृहगमन द्विरागमन कहलाता है। अत: इसे पुनर्वधूप्रवेश कहना कोई अतिशयोक्ति नही होगी।

द्विरागमन काल – विवाह के पश्चात प्रथम, तृतीय या पंचम सप्तमादि विषम वर्षों में पुरूष के सूर्य एवं वृहस्पति तथा दोनों के चन्द्रमा बलवान होने पर पत्नी का द्विरागमन शुभ है।

मास – सौर वैशाख (मेष), मार्गशीर्ष (वृश्चिक) तथा फाल्गुन (कुम्भ)।

तिथि – शुक्ल 2,3,5,7,10,11,13

वार – चन्द्र, बुध, गुरू, शुक्र

नक्षत्र – अश्विनी, रोहिणी, मृगशिरा, पुनर्वसु, पुष्य, उत्तरात्रय, हस्त, चित्रा, स्वाती, अनुराधा, मूल, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, रेवती।

क्षौरकर्म मुहूर्त्त – साधरणतया क्षौर बनवाने के लिये शुभाशुभ समय चिन्तन यहॉ किया गया है। यज्ञ, हवन के शुभारम्भ, विवाह, उपनयन, किसी रिश्तेदार का निधन, ब्राह्मणाज्ञा, गोदान के समय, कारावासमुक्ति, गंगा गयादि तीर्थ गमन, सोमरसपान तथा मन्त्र दीक्षा के अवसर पर मुण्डनादि क्षौरकर्मार्थ काल शुद्धि आवश्यक नहीं है। अन्यथा निम्न मुहूर्त्त में मुण्डन शुभ है।

तिथि – सोमवार, बुधवार, गुरूवार एवं शुक्रवारादि में शुभ फलद तथा रवि, शनि, मंगल वार अशुभ फल देते है।

ब्राह्मण रविवार को, क्षत्रिय मंगल को तथा वैश्य शूद्र शनि को क्षौर करवा सकते है।

पापग्रहाणां वारेऽपि विप्राणां तु शुभो रवि: ।
क्षत्रियाणां तु भूसूनुर्विट्शूद्राणां शनि: शुभ: ॥

नूतन गृहारम्भ मुहूर्त्त –

मानवीय जीवन काल को ऋषि मुनियों ने चार आश्रमों में विभाजित किया है – ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं सन्यास इनमें गृहस्थाश्रम ही सर्वोत्कृष्ट माना गया है। गृहस्थाश्रम की सुखसम्पन्नता के लिये स्वीय – निकेतन का होना परमाश्वयक हैं। क्योंकि स्वातिरिक्त अधिकार प्राप्त गृह में करिष्यमाण कर्म अपना यथेष्ट फल नहीं देते।

जैसा कि भविष्यपुराण में लिखा है –

गृहस्थस्य क्रिया: सर्वा न सिद्धयन्ति गृहं विना।
परगेहे कृता: सर्वा: श्रौत: स्मार्त्तक्रिया: शुभा: ॥
निष्फला: स्युर्य तस्तासां भूमीश: फलमश्नुते।

अत: स्वाधिकार प्राप्त निवास स्थान का निर्माणारम्भ मुहूर्त्त का यहॉ उल्लेख किया गया है।

गोचर शुद्धि – गृहारम्भ मुहूर्त्त निर्णय में सर्वप्रथम गृहस्वामी की जन्मराशि से गोचरस्थ सूर्य, चन्द्र, गुरू और शुक्र का प्रबल होना अनिवार्य है।

मास –

चैत्र – मेषार्क, वैशाख – सर्वदा, ज्येष्ठ वृषार्क, आषाढ़ – कर्कमास, श्रावण सर्वदा, भाद्रपद सिंहार्क, आश्विन तुला का सूर्य, कार्तिक वृश्चिक राशिस्थ सूर्य, मार्गशीर्ष सर्वदा, पौष सौर मकर परन्तु सम्पूर्ण मास पर्यन्त धन्वर्क न हो तो पौश अशुभ है।

गृहारम्भ के योग -

1. रोहिणी, मृगशिरा, पुनर्वसु , श्लेषा, तीनों उत्तरा, पूषा, श्रवण आदि नक्षत्र हो तथा गुरूवार दिन हो तो गृह आरम्भ कराने से गृह में धन – सम्पत्ति तथा संतति का पूर्णसुख प्राप्त होता है ।
2. अश्विनी, रोहिणी, मृगशिरा, उ. फा., हस्त, चित्रा, नक्षत्र यदि बुधवार को हो तो उस दिन बनाया हुआ गृह में सुख – पुत्रार्थ सिद्धिदायक होता है।
3. अश्विनी, आर्द्रा, चित्रा, विशाखा, धनिष्ठा, शतभिषा, आदि नक्षत्र शुक्रवार युत हो तो उस दिन गृहारम्भ धन – धान्यदायक होता है।
4. भरणी, स्वाती, अनुराधा, ज्येष्ठा, पू.भा., उ . भा. , तथा शनिवार के संगम में शुरू किया हुआ गृहारम्भ भूत – प्रेतों से अधिकृत रहता है।

   गुरू – शुक्रास्त, कृष्ण पक्ष, निषिद्ध मास, रिक्तादि वर्ज्यतिथियॉं, तारा अशुद्धि, भूशयन, अग्निबाण, अग्नि पंचक, भद्रा, पूर्वाभाद्रपद, नक्षत्र तथा वृश्चिक कुम्भ लग्नादि गृहारम्भ में गर्हित है। विवाहोक्त इक्कीस दोषों की भी विद्यमानता गृहारम्भ में वर्ज्य है।

शिलान्यास मुहूर्त्त - गृहारम्भ की शुभ वेला में खनित नींव को प्रस्तुत शिलान्यास मुहूर्त्त के दिन विधिवत् पत्थरों से पूरित कर देना चाहिये। तदर्थ ग्राह्य तिथ्यादि शुद्धि इस प्रकार है –

तिथि – 1 कृ., 2,3,5,7,10,11,12,13 शु.

वार – सोमवार, बुधवार, गुरूवार, शुक्रवार एवं शनिवार

नक्षत्र – अश्विनी, रोहिणी, मृगशिरा, पुष्य, तीनों उत्तरा, हस्त, श्रवण एवं रेवती।

विशेष – सम्यक् समय में ब्रह्मा, वास्तुपुरूष, पंचलोकपाल, कूर्म, गणेश तथा स्थान – देवताओं का शिष्टाचार पूर्वक पूजन एवं स्वस्ति पुण्याहवाचनादि के साथ तथा स्वर्ण एवं गंगादि पुण्य स्थानों की रेणु सहित मुख्य शिला का उचित कोण में स्थापना करें। तदनन्तर, प्रदक्षिण क्रम से अन्य पत्थरों को जमाना चाहिये।

जलाशय खनन दिशा एवं मुहूर्त्त –

ग्राम अथवा शहर से पूर्व और पश्चिम में खुदा हुआ जलाशय स्वादु और उच्च कोटि का जल प्रदान करता है – ऐसा कवि कालिदास का मत है। परन्तु गॉंव के आग्नेय, नैऋत्य और वायव्य कोण में जलाशय निर्माण सर्वथा अशुभ है। तथा च –

आग्नेये यदि कोणे ग्रामस्य पुरस्य वा भवति कूपः।

नित्यं स करोति भयं दाहं वा मानसं प्रायः।

नैऋतकोणे बालक्षयं वनिताक्षयश्च वायव्ये ।।

विभिन्न दिशाओं में स्थित जलाशय का फल –

दिशा	पूर्व	आग्नेय	दक्षिण	नैऋत्य	पश्चिम	वायव्य	उत्तर	ईशान
फल	ऐश्वर्य	पुत्र हानि	स्त्री भंग	निधन	संपत्ति	शत्रु भय	सौख्य	पुष्टि

जलाशय खनन मुहूर्त्त -

सामान्य रूप से कुँआ, तालाब, बावड़ी, आदि समस्त जलस्थानों का शुभारंभ निम्न मुहूर्त्त में शास्त्र सम्मत है।

मास – वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़ (मिथुनार्क), माघ, फाल्गुन

तिथि – शुक्ल 2,3,5,7,10,11,12,13।

वार – सोमवार, बुधवार, गुरूवार, शुक्रवार

नक्षत्र – अश्विनी, रोहिणी, मृगशिरा, पुनर्वसु, तीनों उत्तरा, हस्त, चित्रा, स्वाती, अनुराधा, मूल, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, रेवती।

लग्न – 2,4,7,9,10,11,12 आदि राशि लग्न

तथा शुभ ग्रहों के नवांश। लग्न में बुध, गुरू दसवें शुक्र, पापग्रह निर्बल तथा शुभ ग्रह सबल हों।

विशेष – गुरू, शुक्रास्त, गुर्वादित्य, दक्षिणायन, गुरू – शुक्र का शैशव एवं वार्द्धक्य, त्रयोदशात्मक पक्ष, भूशयन, क्षयाधिमास तिथि, भद्रा, कुयोगादि त्याज्य।

वास्तु शान्ति मुहूर्त्त -

गृहप्रवेश के पूर्व दिन पंचांग शुद्धि उपलब्ध होने पर अथवा तत्पूर्व ही शुभ दिन में वास्तु पूजा – बलिक्रियादि का आचरण करना चाहिये।

तिथि – 1 कृष्णपक्ष, 2,3,5,7,10,11,12,13 शुक्लपक्ष।

वार – सोमवार, बुधवार, गुरू, शुक्रवार।

नक्षत्र – अश्विनी, रोहिणी, मृगशिरा, पुनर्वसु, पुष्य, उत्तरात्रय, हस्त,चित्रा, स्वाती, अनुराधा, मूल, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा एवं रेवती।

लग्न – कोई भी राशि लग्न जब 1,2,4,5,7,9, 10,11 वें भावों में शुभग्रह और 3,6,11 वें पापग्रह हों तथा 8,12 वें सूर्य, मंगल, शनि राहु, केतु न हो।

नूतन गृहप्रवेश मुहूर्त्त –

मास – ज्येष्ठ, वैशाख, माघ, फाल्गुन - (उत्तम) , कार्तिक, मार्गशीर्ष – (मध्यम), परन्तु कुम्भ संक्रान्ति में माघ फाल्गुन भी हो तो भी गृहप्रवेश न करें। कदाचित् अत्यावश्यक होने पर मकर, मीन, मेष, वृष और मिथुन संक्रान्तियों में त्याज्य चान्द्र मास (चैत्र, पौष) भी गृहप्रवेशार्थ ग्राह्य है।

तिथि – 1 कृ., 2,3,5,7,10,11,13 शु.।

दिग्द्वार के अनुरूप गृहप्रवेशोपयोगी तिथियॉं -

द्वार दिशा	पूर्व	पश्चिम	उत्तर	दक्षिण
शुभ तिथियॉं	5,10,15	2,7,12	3,8,13	1,6,11

जीर्णादि गृह प्रवेश मुहूर्त्त -

पुरातन, दूसरे के द्वारा निर्मित, अग्नि बहु वृष्टि, बाढ़ादि देवी अथवा राजप्रकोप से विनष्ट, जीर्णोद्धृत, नवीनीकृत एवं उत्थापित गृह में प्रवेश करने के लिये प्रस्तुत मुहूर्त्त विचारणीय है।

मास – श्रावण, कार्तिक, मार्गशीर्ष तथा नूतन गृहप्रवेशोक्त मास।

वार – सोमवार, बुधवार गुरूवार, शुक्रवार एवं शनिवार

तिथि – 1 कृ. 2,3,5,6,7,8,10,11,12,13 शु.

नक्षत्र – रोहिणी, मृगशिरा, पुष्य, उत्तरात्रय, चित्रा, स्वाती, अनुराधा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा एवं रेवती

विशेष – प्रस्तुत कर्म में दक्षिणायन सूर्य, गुरू, शुक्र का अस्त बाल्य वार्द्धक्य , सिंह मकरस्य गुरू एवं लुप्त संवत्सरादि दोषों का चिन्तन न करके उपरोक्त विशुद्ध काल तथा नूतन गृहप्रवेशोदित लग्न बल का ही विचार करें। तथापि भद्रा, व्यतीपात, वैधृति, मासान्त, त्रयोदश दिनात्मक पक्ष, क्षयद्धि तिथि एवं नाम राशि से निर्बल चन्द्र तो परिवर्ज्य ही हैं।

नवदुर्ग प्रवेश मुहूर्त्त –

मास – वैशाख, ज्येष्ठ, माघ एवं फाल्गुन।

तिथि – शुक्ल 2,3,5,7,10,11,13

वार – सोमवार, बुधवार, गुरूवार, शनिवार एवं शुक्रवार

नक्षत्र – रो. पु. तीनो उत्तरा, हस्त, चित्रा, स्वाती, अनुराधा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिष, रेवती।

लग्न – 2,5,8,11 आदि लग्न।

विशेष – गुरू – शुक्रास्त, भद्रा, निर्बल चन्द्र तथा अनिष्ट वर्ग परिवर्जनीय।

गृहप्रवेश विचार – गृहप्रवेश तीन प्रकार का होता है। अपूर्व, सपूर्व व द्वन्द प्रवेश, ये तीन भेद है। नूतन गृह में प्रवेश करना अपूर्व प्रवेश होता है। यात्रादि के पश्चात् गृह में प्रवेश करना सपूर्व कहलाता है। जीर्णोद्धार किये गये मकान में प्रवेश का नाम द्वन्द प्रवेश है। इनमें मुख्यत: अपूर्व प्रवेश का विचार यहॉं विशेष रूप से करते है।

माघ, फाल्गुन, वैशाख, ज्येष्ठ मास में प्रवेश उत्तम व कार्तिक, मार्गशीर्ष में मध्यम होता है।

माघफाल्गुनवैशाखज्येष्ठमासेषु शोभन:।

प्रवेशो मध्यमो ज्ञेय: सौम्यकार्तिकमासयो:॥

कृष्ण पक्ष में दशमी तिथि तक एवं शुक्ल पक्ष में चन्द्रोदयानन्तर ही प्रवेश करना चाहिये। जीर्णोद्धार वाले गृहप्रवेश में दक्षिणायन मास शुभ है। सामान्यत: गुरू शुक्रास्त का विचार जीर्णोद्धार किये या पुराने या किराये के मकान को छोड़कर सर्वत्र करना चाहिये।

तीनों उत्तरा, अनुराधा, रोहिणी, मृगशिरा, चित्रा, रेवती, धनिष्ठा, शतभिषा, पुष्य, अश्विनी, हस्त में प्रवेश शुभ है। तिथि व वार शुभ होने पर स्थिर लग्न में शुद्धि देखकर चन्द्रमा व तारा की अनुकूलता रहने पर गृहप्रवेश शुभ होता है।

प्रवेश के समय शुक्र पीछे व सूर्य वाम रहे तो शुभ होता है। शुक्र के विषय में यात्रा विचार के प्रसंग में बतायेंगे। वाम रवि का ज्ञान आप इस प्रकार कर सकते है –

प्रवेश लग्न से 5,6,7,8,9 भावों में सूर्य रहने से दक्षिणाभिमुख मकान में प्रवेश करते समय वाम सूर्य होता है। इसी प्रकार 8,9,10,11,12 भावों में प्रवेश समय सूर्य हो तो पूर्वाभिमुख मकान में 2,3,4,5,6 भावों में सूर्य हो तो पश्चिमाभिमुख मकान में एवं 11,12,1,2,3 स्थानों में सूर्य रहने से उत्तराभिमुख मकान में प्रवेश करने पर वाम सूर्य रहता है जैसा कि कहा है -

अष्टमात् पंचमात् वित्ताल्लाभात् पंचस्थिते रवौ।

पूर्वद्वारादिके गेहे सूर्यो वाम: प्रकीर्तित:॥

देव प्रतिष्ठा मुहूर्त्त –

उत्तरायण सूर्य में, शुक्र गुरू व चन्द्रमा के उदित रहने पर जलाशय, बाग – बागीचा या देवता क प्रतिष्ठा करनी चाहिये। प्रतिपदा रहित शुक्ल पक्ष सर्वत्र ग्राह्य है, लेकिन कृष्ण पक्ष में भी पंचमी तक प्रतिष्ठा हो सकती है।

लेकिन अपने मास, तिथि आदि में दक्षिणायन में भी प्रतिष्ठा का विधान है। जैसे आश्विन मास नवरात्र में दुर्गा की, चतुर्थी में गणेश की, भाद्रपद में श्री कृष्ण की, चतुर्दशी तिथि में सर्वदा शिवजी की स्थापना सुखद है। इसी प्रकार उग्र प्रकृति देवता यथा भैरव, मातृका, वराह, नृसिंह, वामन, महिषासुरमर्दिनी आदि की प्रतिष्ठा दक्षिणायन में भी होती है।

मातृभौरववाराहनारसिंहत्रिविक्रमा:।

महिषासुरहन्त्री च स्थाप्या वै दक्षिणायने॥ (वैखानस संहिता)

यद्यपि मलमास सर्वत्र प्रतिष्ठा में वर्जित है, लेकिन कुछ विद्वान पौष में भी सभी देवताओं की प्रतिष्ठा शुभ मानते है -

श्रावणे स्थापयेल्लिंगमाश्विने जगदम्बिकाम्।

मार्गशीर्षे हरिश्चैव सर्वान्पौषेऽपि केचन॥ (मुहूर्त्तगणपति)

आचार्य वृहस्पति पौष मास में सभी देवों की प्रतिष्ठा को राज्यप्रद मानते है –

सर्वेषां पौषमाघौ द्वौ विबुधस्थाने शुभौ। (वृहस्पति)

तिथियों के विषय में ध्यान रखना चाहिये कि रिक्ता व अमावस्या तथा शुक्ल प्रतिपदा को छोड़कर

सभी तिथियों एवं देवताओं की अपनी तिथियॉ विशेष शुभ हैं।

यद्दिनं यस्य देवस्य तद्दिने तस्य संस्थितिः। (वशिष्ठ संहिता)

मंगलवार को छोड़कर शेष वारों में यजमान को चन्द्र व सूर्य बल शुद्ध होने पर प्रतिष्ठा, स्थिर या द्विस्वभाव लग्न में स्थिर नवमांश में लग्न शुद्धि करके विहित प्रकार से विधानपूर्वक स्थापित करें। प्रतिष्ठा में अशुद्धि कष्टों को जन्म देती है –

श्रियं लक्षाहीना तु न प्रतिष्ठा समो रिपुः।

इस प्रकार मध्यान्ह तक हस्त, चित्रा, स्वाती, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, रेवती, अश्विनी, पुनर्वसु, पुष्य, तीनों उत्तरा, रोहिणी, मृगशिरा, नक्षत्रों में बलवान् लग्न में, अष्टम राशि, लग्न को छोड़कर प्रतिष्ठा का मुहूर्त्त कहना चाहिये।

यात्रा मुहूर्त्त विचार -

षष्ठी, अष्टमी, द्वादशी, अमावस्या, पूर्णिमा, शुक्ल प्रतिपदा तथा रिक्ता तिथियों को छोड़कर शेष तिथियॉ यात्रा में ग्राह्य है। अमृतसिद्धि या सर्वार्थसिद्धि योगों में तिथ्यादि विचार के बिना भी यात्रा की जा सकती है।

तीनों पूर्वा, तीनों उत्तरा, शतभिषा, मूल, ज्येष्ठा, रोहिणी ये नक्षत्र यात्रा में मध्यम हैं। कृत्तिका, स्वाती, आर्द्रा, विशाखा, चित्रा, आश्लेषा, मघा, भरणी ये नक्षत्र यात्रा में अशुभ हैं। अश्विनी, मृगशिरा, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, अनुराधा, श्रवण, धनिष्ठा, रेवती ये नक्षत्र यात्रा में श्रेष्ठ है।

जन्म लग्न व राशि से अष्टम राशि लग्न में तथा राशीश के शत्रु ग्रह के लग्न में होने पर कदापि यात्रा न करें। कुम्भ लग्न व कुम्भ नवमांश सर्वथा यात्रा में त्याज्य है। मृत्युयोग, दग्धा तिथि, संक्रान्ति आदि अशुभ समय में यात्रा त्याज्य है।

आवश्यक होने पर कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा तथा दिग्द्वार लग्नों में यात्रा करना श्रेष्ठ होता है। जब अपनी जन्मराशि शुभयुक्त हो अथवा सूर्य की राशि से द्वितीय राशि वेशि लग्न हो तो यात्रा जयप्रद है जब केन्द्र त्रिकोण में शुभ व 3,6,10,11 में पापग्रह हों तब यात्रा करें। चन्द्रमा 1,6,8,12 में अशुभ होता है। इसी प्रकार दशम शनि, सप्तम शुक्र तथा लग्नेश 6,7,8,12 में अशुभ होता है।

चन्द्रमा विचार –

यात्रा में चन्द्र बल शुद्धि अनिवार्य है। 1,4,8,12 राशियों में चन्द्रमा का गोचर यात्रा में अशुभ है। यथा – ऋते: चन्द्रबलं पुंसां यात्रा शस्ताऽप्यनर्थदा (यात्रा शिरोमणि)

यात्रा में चन्द्रमा का वास भी प्रयत्नपूर्वक देखना चाहिये। जिस दिशा की राशि में चन्द्रमा हो उसी दिशा में चन्द्रमा का वास होता है। जैसे 1,5,9 राशियों का चन्द्रमा पूर्व में 2,6,10 राशिगत चन्द्रमा दक्षिण में 3,7,11 राशि का चन्द्रमा पश्चिम में व 4,8,12 राशि का चन्द्रमा उत्तर में रहता है। चन्द्रमा को सदैव यात्रा में सामने या दाहिनें होना चाहिये। वाम व पृष्ठगत चन्द्रमा हानिप्रद है। यथा –

सम्मुखे सोर्थलाभाय दक्षिणे सुखसम्पदः।

पश्चिमे प्राणसन्देहो वामे चन्द्रे धनक्षय: ॥

सम्मुख चन्द्रमा प्राय: सभी दोषों को शान्त करने में सक्षम होता है। माण्डव्य ने तो यहॉ तक कहा है कि –

करणभगणदोषं वारसंक्रान्तिदोषं कुलिकतिथिजदोषं यामयामार्धदोषम्।

शनिकुजरविदोषं राहुकेत्वादि दोषं हरति सकलदोषं चन्द्रमासम्मुखस्थ: ॥

घात चन्द्रमा – मेषादि द्वादश राशियों के लिये क्रमश: 1,5,9,2,6,10,3,7,4,8,11,12 भावों में चन्द्रमा घात चन्द्रमा कहलाता है। यात्रा, शास्त्रार्थ, मुकदमा दायर करना एवं वाद – विवाद आदि में घात चन्द्र का त्याग करना चाहिये।

योगिनी विचार – योगिनी का भी यात्रा में विचार मुख्य है। तिथि विशेष के आधार पर दिशाओं में योगिनियों का वास माना जाता है। योगिनी सदैव पीछे या बायें होनी चाहिये। योगिनी वास को सारिणी के माध्यम से समझा जा सकता है –

योगिनी वास चक्रम्

दिशा	पूर्व	अग्नि	दक्षिण	नैऋत्य	पश्चिम	वायव्य	उत्तर	ईशान
तिथि	1,9	3,11	5,13	4,12	6,14	7,15	2,10	8,30

इन तिथियों में योगिनी का वास कही गई दिशाओं में होता है। युद्धादि की यात्रा में बायें योगिनी भी त्याज्य है। पीछे रहना सदैव शुभ है।

राहु विचार – राहु व योगिनी सदैव पीठ पीछे रहने पर यात्रा विशेष सफल होती है। सम्मुख राहु में विशेषतया गृहारम्भ व गृहप्रवेश नहीं करना चाहिये। राहु वास का चक्र यहॉ दिया जा रहा है –

राहु वास चक्र

सूर्य संक्रान्ति मास	वृश्चिक, धनु एवं मकर	मेष, कुम्भ व मीन	वृष, मिथुन एवं कर्क	सिंह, कन्या एवं तुला
राहु वास की दिशा	पूर्व दिशा	दक्षिण दिशा	पश्चिम दिशा	उत्तर दिशा

सर्वार्थ सिद्धियोग – विशेष वार व नक्षत्रों के योग से सर्वार्थ सिद्धि योग बनते हैं। इनमें वार गणना प्राचीन प्रचलनानुसार सूर्योदय से सूर्योदय तक मानते है। इन वार व नक्षत्रों के योग में सर्वार्थसिद्धि योग बनते है।

1. रविवार – मूल, तीनों उत्तरा, अश्विनी, हस्त, पुष्य
2. सोमवार - श्रवण, अनुराधा, रोहिणी, पुष्य व मृगशिरा
3. मंगलवार – उत्तरा भाद्रपद, कृत्तिका, अश्विनी व श्लेषा

4. बुधवार – हस्त, अनुराधा, कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा
5. शुक्रवार – पुनर्वसु, अनुराधा, रेवती, अश्विनी, श्रवण
6. शनिवार – रोहिणी, श्रवण, स्वाती।

इन योगों में प्राय: सभी शुभ कार्य सफल होते है ।

अमृतसिद्धि योग - सर्वार्थसिद्धि योगों में से कुछ को बहुत शक्तिशाली देखकर उनका नाम अमृतसिद्धि योग रखा गया है । रविवार व हस्त नक्षत्र, सोमवार में मृगशिरा, मंगल में अश्विनी, बुधवार में अनुराधा, गुरूवार में पुष्य, शुक्रवार में रेवती, शनिवार में रोहिणी रहने पर अमृतसिद्धि योग बनते है।

भद्रा विचार – विष्टि करण का ही दूसरा नाम भद्रा है। भद्रा नाम की राक्षसी थी, जिसके काल में किये गये कार्य का नाश हो जाता है।

शुक्ल पक्ष में 8,15 तिथियों के पूर्वार्ध में तथा 4,11 के उत्तरार्ध में भद्रा रहती है। कृष्ण पक्ष में 3,10 के उत्तरार्ध में व 7,14 के पूर्वार्ध में भद्रा होती है।

भद्रा वास विचार – भद्रा का फल उसके भूमि लोक वास में ही होता है। जब भद्रा स्वर्ग या पाताल में हो तो शुभ मानी जाती है। अन्यथा वह सभी शुभ कार्यों में त्याज्य है।

जब मेष,वृष, मिथुन व वृश्चिक का चन्द्रमा हो तो भद्रा स्वर्ग लोक में रहती है। शुक्ल पक्ष में विष्टि की सर्पिणी संज्ञा व कृष्ण पक्ष में वृश्चिकी संज्ञा है । सॉप का अग्रभाग जहरीला होने से शुक्लपक्ष में प्रारम्भ की 5 घड़ियॉ तथा कृष्ण पक्ष में अन्तिम पॉच घडियॉ भद्रा का मुख होता है। क्योंकि बिच्छू के पिछले भाग में डंक होता है। पीयूषधारा में मुख या पुच्छ के निर्णय के विषय में अनेक मत बताये है । हमारे विचार से तो सामान्यत: भद्रा अशुभ ही होती है । तथा लोकवासानुसार यदि भूमि पर उसका वास आये तो सदैव त्याज्य है । अत: खण्ड के अनुसार मुँह या पूँछ का भेद समन्वयपरक विद्वानों ने नही माना है।

भूर्लोकस्था सदा त्याज्या स्वर्गपातालगा शुभा। (मुहूर्त्त गणपति)

सामान्यत: भद्रा की पूँछ का काल सदैव जयप्रद होता है, ऐसा कहा गया है। लेकिन इस विषय में विभिन्नता है। चतुर्दशी में पूर्व को, अष्टमी में अग्नि कोण की ओर, सप्तमी में दक्षिण की ओर, पूर्णिमा में नैऋत्य की ओर, चतुर्थी में पश्चिम की तरफ, दशमी में वायव्य की ओर, एकादशी में उत्तर व तृतीया में ईशान कोण की ओर भद्रा के मुख की दिशा में नहीं जाना चाहिये। पूँछ की दिशा में जाने से सदा सफलता मिलती है। भीषण कार्यों में भद्रा शुभ होती है, अर्थात् वध, बन्धनादि कार्यो में मारणादि तान्त्रिक क्रियाओं में यह सफलता देती है।

क्रय- विक्रय मुहूर्त्त – तीनों पूर्वा, विशाखा, कृत्तिका, आश्लेषा, भरणी नक्षत्रों में रिक्ता तिथि, मंगलवार व कुम्भ लग्न को छोड़कर, शेष तिथि वार व लग्नों में, चन्द्रमा व शुक्र के बलवान रहने पर, शुभ लग्नों में लग्न शुद्धिपूर्वक खरीदना या बेचना शुभ होता है।

हलप्रवहण मुहूर्त्त – चित्रा, रेवती, अनुराधा, रोहिणी, हस्त, तीनों उत्तरा,अश्विनी, पुष्य, अभिजित, स्वाती, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, मघा, मृगशिरा नक्षत्रों में, रिक्ता, अमावस्या, षष्ठी व अष्टमी तिथियों के अतिरिक्त शुभ वारों में प्रात:काल हल जोतना श्रेष्ठ है।

बीजवपन मुहूर्त्त – विशाखा, पूर्वाभाद्रपद, मूल, रोहिणी, शतभिषा, उत्तरा फाल्गुनी में, शुभ तिथि व शुभ ग्रह के वार में धान्यरोपण करना श्रेष्ठ है।

व्यापारारम्भ मुहूर्त्त – रिक्ता व अमावस्या रहित तिथियों में शुभ वारों में सर्वार्थसिद्धि आदि योगों में, हस्त, चित्रा, रोहिणी, रेवती, तीनों उत्तरा, पुष्य, अभिजित्, अश्विनी नक्षत्रों में चन्द्रबल देखकर दुकान या व्यवसाय का आरम्भ करना चाहिये।

1.5 सारांशः –

इस इकाई के अध्ययन से आपने जाना कि मुह धातु में उरट् प्रत्यय लगकर '**मुहूर्त्त**' शब्द का निर्माण हुआ है। कालतन्त्र ज्यौतिषशास्त्र में काल के अनेक अंग बताये गये है, जिनमें 5 अंगों की प्रधानता है। अर्थात् प्रथम वर्ष, 2 मास, 3 दिन, 4 लग्न, और पॉचवाँ **मुहूर्त्त** ये 5 काल के अंगों में मुख्य अंग है। इनमें ये सभी क्रमश: उत्तरोत्तर बली है। इन्हीं 5 की शुद्धि से समय शुद्ध समझा जाता है। यदि मास शुद्ध हो तो अशुद्ध वर्ष का दोष नष्ट हो जाता है एवं दिन शुद्ध हो तो अशुद्ध मास का दोष नष्ट हो जाता है। एवं लग्नशुद्धि से दिन का दोष तथा मुहूर्त्त शुद्धि से सभी दोष नष्ट हो जाते है। इस हेतु ही हमारे ज्योतिष के महर्षियों ने सभी कार्यों में मुहूर्त्त शुद्धि देखने का आदेश दिया है। इस जगत में मानव अपने दैनन्दिनी जीवन में कई कार्य करता है, किसी कार्य में वह सफल व किसी कार्य में असफल हो जाता है। मनुष्य अपने जीवन में कौन सा कार्य कब करें, तथा उस कार्य को करनें के लिये किस समय का चयन करें इसका ज्ञान ज्योतिष शास्त्रोक्त मुहूर्त्त स्कन्ध में उद्धृत है। मुहूर्त्त विषयक स्कन्ध का ज्ञान यदि हम सम्यक् रूप में कर लें, तो निश्चय ही जीवन में अधिकाधिक सफलताओं को प्राप्त करने में सक्षम हो सकेगें। अत: इस इकाई से आप मुहूर्त्त विषयक कई तत्वों को समझकर तत्सम्बन्धित ज्ञानार्जन कर लेंगे।

1.6 पारिभाषिक शब्दावली

मुहूर्त्त- मुह धातु में उरट प्रत्यय लगकर मुहूर्त्त शब्द बना है। जिसका अर्थ समय भी होता है

लग्न- लगतीति लग्नम्। उदयक्षितिज वृत्त क्रान्ति वृत्त में पूर्व दिशा में जहॉ स्पर्श करता है, उसे लग्न कहते है।

भद्रा – विष्टि नामक करण को भद्रा कहते है।

सर्वार्थ सिद्धि – सभी प्रकार के सिद्धियों को देने वाला योग सर्वार्थ सिद्धि योग कहलाता है।

जीर्णोद्धार – पुराने चिजों को पुननिर्मित कर नूतनता प्रदान करना जीर्णोद्धार कहलाता है।

1.7 बोध प्रश्नों के उत्तर –

1. घ
2. ग
3. ख
4. ख
5. ख

1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची –

1. ज्योतिष सर्वस्व – पं सुरेश चन्द्र मिश्र
2. मुहूर्त्तचिन्तामणि – आचार्य राम दैवज्ञ
3. वृहज्जातक – वराहमिहिर
4. लघुजातक – वराहमिहिर
5. होराशास्त्रम् – वराहमिहिर

1.9 निबन्धात्मक प्रश्न -

1. मुहूर्त्त का परिचय देते हुए गर्भाधान एवं नामकरण मुहूर्त्त का उल्लेख कीजिये।
2. मुहूर्त्त के भेदादि का निरूपण करते हुए विस्तार पूर्वक लिखिये।

इकाई– 2 पक्ष, मास, ऋतु, अयन एवं गोल विचार

इकाई की संरचना

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 पक्ष, मास, ऋतु, अयन एवं गोल
बोध प्रश्न
2.4 पक्ष, मास, ऋतु, अयन एवं गोल का महत्व
2.5 सारांशः
2.6 पारिभाषिक शब्दावली
2.7 बोधप्रश्नों के उत्तर
2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना -

प्रस्तुत इकाई प्रथम खण्ड के द्वितीय इकाई के '**पक्ष, मास, ऋतु, अयन एवं गोल' नामक** शीर्षक से संबंधित है। ज्योतिष के आरम्भिक ज्ञान के अन्तर्गत उपर्युक्त विषयों का ज्ञान किया जाता है।

पन्द्रह (15) दिनों का एक पक्ष, 2 पक्ष का एक मास, दो मास की एक ऋतु, तीन ऋतुओं का एक अयन एवं सूर्य के द्वारा 6 राशियों का भ्रमण पूर्ति काल गोल कहलाता है।

इससे पूर्व की इकाईयों में आपने मुहूर्त्त क्या हैं, तथा उसके विभिन्न प्रकार के स्वरूपों का ज्ञान कर लिया है। यहॉ हम इस इकाई में **पक्ष, मास, ऋतु, अयन एवं गोल** सम्बन्धित विषयों का अध्ययन विस्तार पूर्वक करेंगे।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप-

1. पक्ष, मास, ऋतु, अयन एवं गोल को परिभाषित करने में समर्थ हो सकेंगे।
2. पक्ष, मास, ऋतु, अयन एवं गोल के महत्त्व को समझा सकेंगे।
3. पक्ष, मास, ऋतु, अयन एवं गोल के प्रकार जान लेंगे।
4. पक्ष, मास, ऋतु, अयन एवं गोल का स्वरूप वर्णन करने में समर्थ होंगे।
5. पक्ष, मास, ऋतु, अयन एवं गोल के सम्बन्ध को निरूपित करने में समर्थ होंगे।

2.3 पक्ष, मास, ऋतु, अयन एवं गोल

पक्ष –

जिस रात्रि में सूर्य और चन्द्रमा किसी राशि के एक ही अंश पर हो वह रात्रि अमावस्या कहलताती है।उस रात्रि में अन्धकार ही अन्धकार दिखाई देता है, क्योंकि सूर्य के समक्ष चन्द्र - प्रकाश नगण्य होता है। फिर अमावस्या से निरन्तर बढ़ती हुई चन्द्र – सूर्य की परस्पर दूरी जिस दिन 180 अंश परिमित हो जाती है, उस दिन रात्रि को पूर्ण चन्द्र दृष्टिगोचर होता है और वह रात्रि पूर्णिमा के नाम से प्रसिद्ध है। अत: अमावस्या से पूर्णिमा तक का यह 15 दिनात्मक प्रकाशमान मध्यान्तर शुक्लपक्ष कहलाता है। तद्वत ही पूर्णिमा से अमावस्या तक का काल कृष्णपक्ष कहलाता है।

शुक्लपक्ष प्रधान होने से देवकर्मो में तथा कृष्णपक्ष पितराधिष्ठित होने के कारण पितृकर्मों में विहित है। अर्थात् शुक्लपक्ष में सर्व शुभकार्य तथा कृष्णपक्ष में पितृकार्य प्रशस्त हैं। यथा –

य देवा पूर्यतेऽर्द्धमास स देवा, योऽपक्षीयते स पितर: ॥

(शतपथ ब्राह्मण)

प्राय: एक पक्ष 15 दिन का होता है और कभी – कभी तिथि क्षय वृद्धि के कारण न्यूनाधिक भी हो सकता है। परन्तु एक ही पक्ष में दो बार तिथि क्षय हो जाने से 13 दिनात्मक पक्ष समस्त कर्मों में वर्जनीय है यथा –

पक्षस्य मध्ये द्वितिथि पतेतां तदा भवेद्रौरवकालयोग: ।
पक्षे विनष्टे सकलं विनष्टकमित्याहुराचार्यवरा: समस्ता: ।।

(ज्योतिर्निबन्ध)

प्रत्येक चान्द्रमास में अमावस्या से पूर्णिमा तक शुक्ल पक्ष या सुदी या पूर्णिमा से अमावस्या तक कृष्णपक्ष या बदी कहलाता है। सूर्य एवं चन्द्रमा की युति अमावस्या कहलाती है। इसी प्रकार सूर्य व चन्द्रमा में 12^0 - 12^0 का अन्तर बढ़ने या घटने पर क्रमश: प्रतिपदा, द्वितीया, आदि तिथियॉ व 168^0 – 180^0 अंश के अन्तर पर पूर्णिमा व ($348^0 – 0^0$) अन्तर पर अमावस्या होती है। पक्षों की संख्या 2 है। प्रथम शुक्लपक्ष, द्वितीय कृष्णपक्ष। शुक्ल का अर्थ श्वेत एवं कृष्ण का अर्थ काला होता है। अर्थात् शुक्लपक्ष में चन्द्रमा की एक – एक कला बढ़कर अन्त में पूर्णरूपेण दिखलाई देता है, तथा कृष्णपक्ष में एक – एक कला घटकर अन्त में दृश्यहीन होता हो जाता है। दृश्य अवस्था शुक्लपक्ष के अन्त में व अदृश्य अवस्था कृष्णपक्ष के अन्त में होती है।

यथा –

मासे शुक्लश्च कृष्णश्च द्वौ पक्षौ परिकीर्तितौ।
सायं यत्रोदितश्चन्द्र: स शुक्लोऽन्यस्तु कृष्णक: ॥

प्रतिमास दो पक्ष होते है। जिसमें सायंकाल से ही चन्द्रमा दृष्टगत होते हैं वह शुक्ल और दूसरा कृष्णपक्ष कहलाता है।

पक्ष फल –

यदि किसी जातक का जन्म समय **शुक्ल पक्ष** में हो तो वह मनुष्य चंचल, बहुत सुशील, स्त्री पुत्रयुक्त सुन्दर व कोमल शरीर, बहुत काल जीवन धारण करनेवाला और सदैव परम आनन्द से समय व्यतीत करने वाला होता है।

यदि किसी जातक का जन्म **कृष्ण पक्ष** में हो तो निर्बल शरीर वाला, प्रतापयुक्त, चंचल स्वभाव वाला, शोर मचाने वाला, कुल के विरूद्ध चलनेवाला और अत्यन्त कामी होता है।

मास -

चान्द्र वर्ष में शुक्ल प्रतिपदा से एवं सौरवर्ष में मेष संक्रान्ति से निम्नांकित चैत्रादि 12 मास प्रारम्भ होते हैं - चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक मार्गशीर्ष, पौष, माघ व फाल्गुन।

इन मासों के नाम पूर्णिमा को पड़ने वाले नक्षत्र के आधार पर रखे गये हैं। चित्रा से चैत्र, विशाखा से वैशाख आदि। सूर्यसिद्धान्त में बताया गया है कि चैत्रादि मासों में कार्तिक आदि मास कृत्तिका व

रोहिणी दोनों नक्षत्रों से युक्त होते हैं। आश्विन, भाद्रपद व फाल्गुन मास तीन – तीन नक्षत्रों से युक्त होते हैं। चैत्र – चित्रा स्वाती, वैशाख – विशाखा अनुराधा, ज्येष्ठ – ज्येष्ठा व मूल, आषाढ़ – पूर्वोत्तराषाढ़, श्रावण – श्रवण धनिष्ठा, भाद्रपद – शतभिषा व पूर्वोत्तरभाद्रपद, आश्विन – रेवती अश्विनी भरणी, कार्तिक – कृत्तिका रोहिणी, मार्गशीर्ष – मृगशिरा आर्द्रा, पौष – पुनर्वसु पुष्य, माघ – आश्लेषा मघा, फाल्गुन – पूर्वोत्तरा फाल्गुनी, हस्त।

परिमाणपरत्व पर आधारित मासों के चार प्रकार है – सौर, चान्द्र, सावन और नाक्षत्र। संज्ञा भेद के अनुसार इनकी उपादेयता भी भिन्न – भिन्न है।

क. **सौरमास** - यह सूर्य संक्रमण से सम्बन्धित है। मेषादि बारह राशियों पर सूर्य के गमनानुसार ही मेषादिसंज्ञक द्वादश सौरमासों का गठन किया गया है। एक सौरमास लगभग 30 दिन और 10 घण्टे का होता है। विवाह उपनयनादि षोडश संस्कार, यज्ञ, एकोदिष्ट श्राद्ध, ऋण का दानादान, एवं ग्रह – चारादि अन्योन्यविषयक कालों का विचार सौरमास में करना चाहिये।

ख. **चान्द्रमास** – जिस प्रकार सौरमास का सम्बन्ध सूर्य से है तद्वत् चान्द्र मास का चन्द्रमा से। अमावस्या के पश्चात् शुक्ल प्रतिपदा को चन्द्र किसी नक्षत्र विशेष में प्रवेश करके प्रतिदिन एक – एक कला के परिमाण से बढ़ता हुआ पूर्णिमा को पूर्ण चन्द्र के रूप में दृष्टिगोचर होता है । पुन: कृष्ण प्रतिपदा से क्रमश: अल्प शुक्ल होता हुआ चन्द्रमा अमावस्या को पूर्णान्धकाररूपी मृतावस्था को प्राप्त हो जाता है।

अत: एक मत के द्वारा शुक्ल प्रतिपदा से अमावस्या तक अन्यतर मतानुसारेण कृष्ण प्रतिपदा से पूर्णिमा तक का समय चान्द्रमास कहा गया है। यद्यपि शुक्ल पक्षादि मास मुख्य तथा कृष्णपक्षादि गौण है, तथापि देश – भेद के अनुसार दोनों प्रकारों से चान्द्रमासों की प्रवृत्ति को ग्रहण किया जाता है प्रत्येक चान्द्रमास प्राय: 29 दिन और 22 घण्टे का होता है। चैत्रादि विभिन्न चान्द्रमासों की संज्ञायें पूर्णिमा को चन्द्र द्वारा संक्रमित नक्षत्र संज्ञा पर आधारित है। चैत्रादि मास और पूर्णिमा स्थित नक्षत्रों का सम्बन्ध चक्र से ज्ञातव्य है –

चैत्र	**वै.**	**ज्ये.**	**आ.**	**श्रा.**	**भा.**	**आ.**	**का.**	**मार्ग.**	**पौ.**	**मा.**	**फा.**	**मास**
चि.	विशा.	ज्ये.	पू.षा.	श्र.	शत.	रे.	कृ.	मृ.	पुन.	श्ले.	पू. फा.	**नक्षत्र**
स्वा.	अनु.	मू.	उ.षा.	धनि.	पू.भा. उ.भा.	अ. भ.	रो.	आ.	पुष्य	मघा	उ. फा. हस्त	**नक्षत्र**

पार्वण – अष्टका – वार्षिक – श्राद्ध , व्रतोपवास, यज्ञादि तथा तिथिविषयक अशेष कर्मों के सम्पादन में चान्द्रमास को ही प्रधानता देना युक्तिसंगत है।

ग. **सावनमास** – एक अहोरात्र में 24 घण्टे या 60 घटी मानकर 30 दिन का एक सावन मास

होता है । मनुष्य की अवस्था, उत्तराधिकारियों में सम्पत्ति – विभाजन, स्त्रीगर्भ की वृद्धि तथा प्रायश्चितादि कर्मों में सावनमास का ही विचार करना चाहिये ।

घ. नाक्षत्रमास – चन्द्रमा के द्वारा 27 नक्षत्रों के भ्रमण को सम्पूर्ण करने में आवश्यक समयावधि को एक नाक्षत्रमास कहा गया है । नाक्षत्रमास का उपयोग जलपूजन, नक्षत्रशान्ति, यज्ञ विशेष तथा गणितादि में किया जाना चाहिये ।

अधिक व क्षय मास –

पंचांगों में मासों की गणना चान्द्रमास से व वर्ष की गणना सौरमास से की जाती है । 12 चान्द्रमासों का वर्ष सौर वर्ष से लगभग 10 दिन के लगभग छोटा होता है । प्राय: प्रति तीन वर्ष में जब यह अन्तर एक चान्द्रमास के बराबर हो जाता है तो सौर वर्ष में 13 चान्द्रमास हो होते हैं । तेरहवॉ मास अधिकमास या अधिमास या मलिम्लुच मास या पुरूषोत्तम मास कहलाता है । सैद्धान्तिक रूप से जिस चान्द्र मास में सूर्य की संक्रान्ति न हो वह **अधिक मास** या **मलमास** कहलाता है । जैसा कि आचार्य भास्कराचार्य जी ने सिद्धान्तशिरोमणि में निरूपित किया है –

असंक्रान्तिमासोऽधिमास स्फुटं स्यात् ।
द्विसंक्रान्तिमासो क्षयाख्य: कदाचित् ।।
क्षय: कार्तिकादित्रय नाऽन्यत् स्यात् ।
तदावर्ष मध्येऽधि मासं द्वयं च ।।

इसके विपरीत यदि किसी एक चान्द्रमास में दो संक्रान्तियॉ पड़ जायें तो वह क्षयमास या घटा हुआ मास होता है । सिद्धान्तशिरोमणि के अनुसार क्षय मास कार्तिक आदि तीन मासों में ही पड़ता है । जिस वर्ष में क्षय मास होता है, उस वर्ष दो अधिमास भी होते हैं । ये अधिमास क्षय मास से तीन मास पहले व बाद में होते हैं । प्राय: 19 वर्ष बाद क्षय मास सम्भावित होता है ।

अधिक मास प्राय: फाल्गुनादि आठ मास अर्थात् आश्विन तक होते हैं । कार्तिक मास क्षय व अधिक दोनों हो सकता है और माघ मास क्षयाधिक नहीं होता ।

वृहज्ज्यौतिसार ग्रन्थ में लिखा है –

मेषादिराशिगे सूर्ये यो यो मास: प्रपूर्यते ।
राशीनां द्वादशत्वात् ते चैत्राद्या द्वादश स्मृता: ।।

अर्थात् मेषादि 12 राशियों में सूर्य के रहने से जिस जिस मास की पूर्ति होती है, वे चैत्र आदि नाम से 12 चान्द्रमास होते है ।

मासाश्चैत्रश्च वैशाखो ज्येष्श्चाषाढ एव च ।
श्रावणो भाद्रपात् तद्व – दाश्विन: कार्तिकस्तथा ।।
मार्गशीर्षोऽथ पौषश्च माघसंज्ञश्च फाल्गुन: ।

बोध प्रश्न –

1. एक पक्ष होता है।

क. 20 दिनों का ख. 15 दिनों का ग. 25 दिनों का घ. 10 दिनों का

2. 30 दिन के बराबर होता है।

क. 2 मास ख. 1 मास ग. 1 वर्ष घ. कोई नही

3. ऋतुओं की संख्या होती है।

क. 3 ख. 4 ग. 5 घ. 6

4. संक्रमण का अर्थ होता है।

क. मिलन ख. परिवर्तन ग. योग घ. शमन

5. जिस चान्द्रमास में सूर्य की संक्रान्ति न हो, उसे कहते है –

क. चान्द्रमास ख. अधिमास ग. क्षयमास घ. सौरमास

6. 60 घटी में होता है।

क. 10 घण्टे ख. 24 घण्टे ग. 20 घण्टे घ. 30 घण्टे

7. शतभिषा नक्षत्र का सम्बन्ध किस मास है।

क. चैत्र ख. वैशाख ग. श्रावण घ. भाद्रपद

विशेष – सौर वर्ष का मान 365 दिन, 15 घटी, 31 पल तथा 30 विपल है एवं चान्द्र वर्ष मान 354 दिन, 22 घटी, 1 पल और 23 विपल है। अत: स्पष्ट है कि चान्द्र वर्ष सौर वर्ष से 10 दिन, 53 घटी, 30 पल और 7 विपल कम है। इस क्षति पूर्ति और दोनों मानों के सामंजस्य के उद्देश्य से प्रत्येक तीसरे वर्ष अधिक – चान्द्रमास तथा एक बार 141 वर्षों के बाद तथा दूसरी बार 19 वर्षों के बाद क्षय – चान्द्रमास की व्यवस्था की गई है।

वेदों में मास नाम – चैत्र को मधु, वैशाख को माधव, ज्येष्ठ को शुक्र, आषाढ़ को शुचि, श्रावण को नभ, भाद्रपद को नभस्य , आश्विन को इष, कार्तिक को उर्ज, मार्गशीर्ष को सह , पौष को सहस्य , माघ को तप तथा फाल्गुन को तपस्य के नाम से जानते है ।

मासों के नाम सम्बन्धित चक्र –

नक्षत्र	हिन्दू मास	अंग्रेजी मास	मुसलमानी मास
चित्रा	चैत्र	अप्रैल	रविलाखर
विशाखा	वैशाख	मई	जमादिलावल
ज्येष्ठा	ज्येष्ठ	जून	जमादिलाखर
पूर्वाषाढ़ा	आषाढ़	जुलाई	रज्जब

श्रवण	श्रावण	अगस्त	साबान
पूर्वाभाद्रपद	भाद्रपद	सितम्बर	रमजान
अश्विनी	अश्विन	अक्टूबर	सव्वाल
कृत्तिका	कार्तिक	नवम्बर	जिल्काद
मृगशिरा	मार्गशीर्ष	दिसम्बर	जिल्हेज
पुष्य	पौष	जनवरी	मोहर्रम
मघा	माघ	फरवरी	सप्फर
पूर्वाफाल्गुनी	फाल्गुन	मार्च	रविलावल

मलमास में कार्याकार्य -

सन्ध्या, अग्निहोत्र, पूजनादि नित्यकर्म, गर्भाधान, जातकर्म, सीमन्त, पुंसवनादि संस्कार, रोगशान्ति, अलभ्य योग में श्राद्ध, द्वादशाह सपिण्डीकरण, मन्वादि तिथियों का दान, दैनिक दान, यव - तिल – गो – भूमि तथा स्वर्णादि दान अतिथि सत्कार, विधिवत् स्नान, प्रथम वार्षिक श्राद्ध, मासिक श्राद्ध एवं राजसेवा विषयक कर्म, मलमास में शास्त्र सम्मत है।

परन्तु, अनित्य व अनैमित्तिक कार्य, द्वितीय वार्षिक श्राद्ध, तुलापुरूष - कन्यादान – गजदानादि अन्योन्य षोडश महादान, अग्न्याधान, यज्ञ, अपूर्व तीर्थयात्रा, अपूर्व देवता के दर्शन, वाटिका – देव – कुँआ- तालाब – बावड़ी आदि के निर्माण और प्रतिष्ठा, नामकरण – उपनयन – चौलकर्म – अन्नप्राशनादि संस्कार विशेष, राज्याभिषेक, सकामना वृषोत्सर्ग, बालक का प्रथम निष्क्रमण, व्रतारम्भ, व्रतोद्यापन, गृहारम्भ, गृहप्रवेश, विवाह, देवता का महोत्सव, कर्मानुष्ठानादि काम्यकर्म, पाप प्रायश्चित, प्रथम उपाकर्म व उत्सर्ग, हेमन्तऋतु का अवरोह, सर्पबलि, अष्टकाश्राद्ध, ईशान देवता की बलि, वधूप्रवेश, दुर्गा – इन्द्र का स्थापना और उत्थान, देवतादि की शपथ ग्रहण करना, विशेष परिवर्तन, विष्णु शयन और कमनीय यात्रा का मलमास में निषेध है।

मास फल –

चैत्र मास में जन्म फल -

चैत्र मास में जन्म लेने वाला मनुष्य सत्कर्मी, विद्या – विनययुक्त, भोगी, मिष्ठान्न भोजन वाला, मित्र, सज्जनों का प्रिय, आम रूप से सलाह देने वाला तथा राजमन्त्री होता है

वैशाख मास में जन्म फल -

वैशाख मास में जन्म लेने वाला मनुष्य बलवान, देव ब्राह्मण भक्त, दीर्घायु, बन्धुजन सुखयुक्त और बहुत जल पीने वाला होता है।

ज्येष्ठ मास में जन्म फल –

ज्येष्ठ मास में जन्म लेने वाला मनुष्य क्षमायुक्त, चंचल प्रवृत्ति, विदेशगमन प्रिय, विचित्र बुद्धि,

तीक्ष्ण स्वभाव, विलम्ब से कार्य करनेवाला और श्रेष्ठ होता है।

आषाढ़ मास में जन्म फल –

आषाढ़ मास में जन्म लेने वाला मनुष्य बहुखर्ची, बहुभाषी, हास्य विलासी, साहसी, गुरूभक्त, मन्दाग्नि रोगयुक्त, सुकर्मा और महान अभिमानी होता है।

श्रावण मास में जन्म फल –

श्रावण मास में जन्म लेने वाला मनुष्य पुत्र, पौत्र, मित्र सुखयुक्त, पितृभक्त, आज्ञाकारी, लोगों में प्रसिद्ध वक्ता, गुणवान, कफ प्रकृति का होता है।

भाद्रपद मास में जन्म फल –

भाद्रपद मास में जन्म लेने वाला मनुष्य दुर्बल शरीर वाला, दाता, धनवान, स्त्री – पुत्र सुखभोक्ता, दु:ख – सुख में समान वृत्ति रखनेवाला, स्वजनों में श्रेष्ठ कहलाता है।

आश्विन मास में जन्म फल -

आश्विन मास में जन्म लेने वाला मनुष्य विद्वान, धनी, राजाओं का
मित्र, सेवक युक्त, पराये गुण का ज्ञानी, बहुत पुत्र सम्पदावाला, धन धान्य, ऐश्वर्य भोगनेवाला होता है।

कार्तिक मास में जन्म फल –

कार्तिक मास में जन्म लेने वाला मनुष्य सुकर्मा, धनवान, कामी, क्रय – विक्रय कार्य में प्रवीण, बहुत प्रीति करनेवाला और श्रेष्ठ कर्म करनेवाला होता है।

मार्गशीर्ष मास में जन्म फल –

मार्गशीर्ष में जन्म लेने वाला मनुष्य सुशील, श्रेष्ठ तीर्थयात्रा करनेवाला, सम्पूर्ण कला में निपुण, हास्य विलासयुक्त, परोपकारी, साधु – सन्तों के मार्ग से चलने वाला होता है।

पौष मास में जन्म फल –

पौष मास में जन्म लेने वाला मनुष्य परोपकारी, पितृधनहीन, कष्टार्जित धन का व्यय करने वाला, शास्त्रोक्त यत्न से कार्य से सिद्ध करने वाला, शास्त्री और दुर्बल देहवाला होता है।

माघ मास में जन्म फल –

माघ मास में जन्म लेने वाला मनुष्य योगाभ्यासी, तान्त्रिक आचार्य, बुद्धि बल से शत्रु का नाश करने वाला तथा निष्पापी होता है।

फाल्गुन मास में जन्म फल –

फाल्गुन मास में जन्म लेने वाला मनुष्य परोपकारी, चतुर, दयावान, कोमल शरीर, हास्य क्रीड़ा में प्रवीण, शक्तिवाला और वृथा बकवाद करने वाला होता है।

मलमास में जन्म लेने वाला मनुष्य अपना ही कल्याण चाहने वाला, परोपकारी, सभी का प्रिय,

आरोग्य शरीर, तीर्थयात्रा प्रिय, विषय – वासना से विरक्त और सुन्दर चरित्र वाला होता है।

जन्ममास विवेक –

जन्मदिन से एक सावनमास पर्यन्त जन्ममास कहलाता है। मतान्तरेण जिस कृष्णपक्षादि चान्द्रमास में व्यक्ति का जन्म हो, उसे ही जन्ममास माना जाता है। पुनश्च, क्षयमास के अन्तर्गत तिथि के पूर्वार्द्ध में जन्म हो तो पूर्वमास तथा परार्द्ध में जन्म हो तो आगामी मास ही जन्म मास निर्धारित किया जाना चाहिये।

जन्ममास में साधारणतया क्षौरकर्म, यात्रा व कर्णवेधादि कर्म वर्जित है। परन्तु स्नान, दान, जप, होम, विवाह, एवं कमनीय कार्यों के लिये जन्ममास शुभद समझा गया है। तदुक्तम् –

स्नानं दानं तपो होमः सर्वमांगल्यवर्द्धनम्।

उद्वाहश्च कुमारीणां जन्ममासे प्रशस्यते ॥ (श्रीपतिसमुच्चय)

अपि च –

जन्मनि मासि विवाहः शुभदो जन्मर्क्षजन्मराश्योश्च।

अशुभं वदन्ति गर्गाः श्रुतिवेधक्षौरयात्रासु ॥ (पीयूषधारा)

जन्ममास में मांगलिक कार्य सम्पादन के निर्णयान्तर्गत वशिष्ठ ने केवल जन्म दिन, गर्गाचार्य ने जन्मानन्तर 8 दिन, अत्रि ऋषि ने 10 दिन और भृगु ने जन्म के पक्ष को ही केवल दूषित बतलाया है। एवं जन्ममास के शेष दिन शुभकर्म सम्पादन में ग्राह्य है -

जातं दिनं दूषयते वसिष्ठो, ह्यष्टौ च गर्गो नियतं दशात्रिः।

जातस्य पक्षं किल भागुरिश्च शेषाः प्रशस्ताः खलु जन्ममासि ॥ (राजमार्तण्ड)

अंग्रेजी मास के उत्पत्ति का कारण –

Janues जनवरी – हिन्दु धर्म में गणेश पूजा जिस प्रकार सर्वप्रथम शुभ और आवश्यक माना गया है, उसी तरह रोम के लोग इटली देश में Janues देवता को सर्वश्रेष्ठ और शुभ समझते है। इस देवता के दो मुख है – एक आगे और एक पीछे, जिसके कारण वह दो दिशा पिछले व अगले को पूर्ण रूप से देखता है। इसी देवता की दृष्टि के आधार पर इस मास को प्रथम मास का नाम पाने का मान प्राप्त हुआ और जेनस शब्द के आधार पर जेनवरी नाम रखा गया जिससे मनुष्य को पिछले व अगले मास और वर्ष का स्मरण नित्य बना रहे।

Februa फरवरी – रोमन लोगों में शुचिर्भूत होने के लिये फेब्रुआ नाम की एक श्रेष्ठ विधि है। अत: इस नाम के आधार पर द्वितीय मास के नाम को फेब्रुअरी नाम प्राप्त हुआ। प्रत्येक चौथे वर्ष इस मास के तीस दिन निश्चित किये गये थे। परन्तु इटली के बादशाह आगस्टस ने यह क्रम बदलकर 28 दिन का और हर चौथे वर्ष का मास 29 दिन का निश्चित किया जो आज तक प्रचार में है।

Mars मार्च – रोम्युलस जिसने रोम शहर स्थापित किया। उसके पिता का नाम मार्स था। इसी कारण से इस मास को वर्ष के प्रथम मास गिने जाने का बहुमान प्राप्त हुआ था और यह कई वर्षो तक वर्ष का प्रथम मास माना जाता था। रोमन लोगों का युद्ध देवता मार्स होने के कारण इसे प्रथम

मास का स्थान मिलने के पश्चात् वीर, योद्धा, मार्स होने के कारण इसे प्रथम मास का स्थान मिलने के पश्चात् वीर योद्धा और धुरन्धर विद्वान पंचांगकर्ता ज्यूलिअस सीजर ने अपने पंचांग में जनवरी मास को प्रथम मास निश्चित करने के कारण इसे तीसरे मास का स्थान प्राप्त हुआ ।

Aperaira अप्रैल – यह एक लैटिन शब्द है। इस शब्द का अर्थ खोलना है। निसर्ग देवता अपने ठण्ड काल की निद्रा से जाग्रता हो इस महीने में वृक्षों को नये पत्ते प्रदान करता है। इसी कारण इस मास के नाम की उत्पत्ति हुई। अंग्रेजों के राज्य में इसे खर्चिक वर्ष का प्रथम मास का स्थान प्राप्त हआ। यह प्रथा आज तक समय है। परन्तु जिन लोगों को कोई उद्योग और धन्धा नहीं रहता वे लोग दूसरों की चेष्टा विफल करनें में अपना समय व्यतीत करते थे। इसीलिये इस मास के प्रथम दिन को आल फुलिस डे सर्वमूर्खों का दिन समझने लगे, जो प्रथा आज तक चालू है।

Maia मई – पाश्चात्य देशों के धर्मग्रन्थों में अटलास नामक राक्षस का वर्णन है। यह राक्षस पृथ्वी को अपने बाहुबल से भुजाओं पर तौला करता था। यह पाश्चात्य देश के लोगों का विश्वास है कि इस राक्षस के Maia नाम की एक ही लड़की थी। Maia यह लैटिन शब्द है जिसका अर्थ बढ़ना है। इस मास में पृथ्वी पर सब चीजें विपुल प्रमाण में मिलती हैं। इस लड़की के स्मरणार्थ इस मास का नाम मई रखा गया और प्रथम दिन को उत्सव के रूप में मनाते है। इस दिन गॉव के सभी पुरूष एवं महिलायें मिलकर नाचते हुये गाते है। किसी सुन्दर लड़की को फूलों के पोशाक से सजाकर नाचते गाते उसे **'मे क्वीन'** मई रानी कहते हैं और यह प्रथा शहरों की अपेक्षा खेतों और गॉवों में अधिक प्रमाण में दिखाई देती है और आज भी प्रचलित है।

Juno जून - जूनो रोमन देवता का नाम और इसी कारण Junius यह नाम वहॉ के श्रेष्ठ कुल के लोगों के सम्मानार्थ रखने की प्रथा थी। इसी देवता के नाम से इस मास के नाम की उत्पत्ति हुई यह स्पष्ट है।

Julies जुलाई - इस मास को रोमन लोग क्विण्टीलस अर्थात् पॉचवॉ कहते है जबकि वर्ष का आरम्भ मार्च महीने से हुआ करता था। ज्युलियस सीजर का जन्म इसी मास को पन्द्रह तारीख को को ईसा मसीह के 200 वर्ष पूर्व हुआ। इस वीर के स्मरणार्थ इस मास का नाम जुलाई रखा गया।

Octovius अगस्त - रोम के शहर में आक्टोवियस नाम का एक राजा हो गया जिसके राज्य में जनता को हर प्रकार का सुख मिला करता था। इसी कारण आगस्ट दी महान् की संज्ञा उसे दी गयी। इस राजा के राज्य में कई महत्वपूर्ण घटनायें हुई जिनका स्मरण रोम के लोग आज भी करते है। इसी कारण इस मास का नाम आगस्ट रखा गया।

Septem सितम्बर – सेप्टेम यह लैटिन शब्द है जिसका अर्थ सातवॉ है। वर्ष का आरम्भ जब मार्च महीने से हुआ करता था तब यह मास सातवॉ था परन्तु ज्यूलियस सीजर के जनवरी को वर्ष का प्रथम मास का स्थान देने के कारण इसका क्रम नवॉ हुआ। उपर लिखे हुये कारण से इस मास के नाम की उत्पत्ति हुई।

Octo अक्टूबर - यह लैटिन शब्द है जिसका अर्थ आठ है। परन्तु उपर लिखे हुये कारण से इसका

क्रम आज दसवॉ हो गया। किन्तु इस मास की उत्पत्ति इसी कारण हुई।

Novem नवम्बर – नोवेम यह लैटिन शब्द है। तारीख 5.11. 165 को इंग्लैण्ड में कहते हैं कि इस दिन गायफाक्स ने पार्लमेण्ट हाउस उड़ाने का प्रयत्न किया था। वहॉ के लोग इस मास को रक्तमास कहते हैं क्योंकि वहॉ के लोग इसी मास में अपने खाने के लिये पशुओं का संहार किया करते थे। इसी कारण इस मास का नाम नावेम्बर रखा गया।

Decem दिसम्बर – यह लैटिन शब्द है, इसका अर्थ दसवॉ है। किन्तु ज्यूलियस सीजर के कारण इसका क्रम बदलकर बारहवॉ मास हुआ। इस मास की 25 तारीख को ईसा मसीह का जन्म हुआ। इसी कारण ईसाई लोग इस मास की 25 तारीख को बड़ा दिन आजतक कहते और मानते आ रहे है। इस मास के नाम की उत्पत्ति का कारण स्पष्ट है।

ऋतु – ऋतु का सम्बन्ध सूर्य की गति से है। सूर्य क्रान्तिवृत्त में जैसे भ्रमण करता है वैसे ही ऋतुयें बदल पड़ती है। ऋतुओं की संख्या 6 है। प्रत्येक ऋतु दो मास के होते है। शरत्सम्पात व वसन्त सम्पात पर ही 6 ऋतुओं का प्रारम्भ निर्भर करता है। वसन्त सम्पात से वसन्त ऋतु, शरत्सम्पात से शरद ऋतु, सायन मकर से शिशिर ऋतु, सायन कर्क से वर्षा ऋतु प्रारम्भ होती है। अत: सायन मकर या उत्तरायण बिन्दु ही शिशिर ऋतु का प्रारम्भ है। क्रमश: 2 – 2 सौरमास की एक ऋतु होती है। अर्थात् सायन मकर – कुम्भ में शिशिर ऋतु, मीन मेष में वसन्त ऋतु , वृष – मिथुन में ग्रीष्म ऋतु, कर्क – सिंह में वर्षा ऋतु, कन्या - तुला में शरद ऋतु, वृश्चिक – धनु में हेमन्त ऋतु होती है।

यथा –

मृगादिराशिद्वयभानुभोगात् षडऋतव: शिशिरो वसन्त:।

ग्रीष्मश्च वर्षाश्च शरच्च तदवत् हेमन्त नामा कथितोऽपि षष्ठ: ॥

अपि च –

ऋतव: षड् वसन्ताद्या मीनाद् द्विद्विभगे रवौ।

क्रमाद् वसन्तो ग्रीष्मश्च वर्षाश्चैव शरत् तथा ॥

इस प्रकार दो राशियों पर संक्रमण काल ऋतु कहलाता है। एक वर्ष में कुल 6 ऋतुयें होती है। सौर एवं चान्द्रमासों के अनुसार इन वसन्तादि ऋतुओं का स्पष्टार्थ चक्र –

वसन्त	**ग्रीष्म**	**वर्षा**	**शरद्**	**हेमन्त**	**शिशिर**	**ऋतु**
मीन, मेष	वृष, मिथुन	कर्क, सिंह	कन्या, तुला	वृश्चिक, धनु	मकर, कुम्भ	**सौरमास**
चैत्र	ज्येष्ठ	श्रावण	आश्विन	मार्गशीर्ष	माघ	**चान्द्र मास**
वैशाख	आषाढ़	भाद्रपद	कार्तिक	पौष	फाल्गुन	

यथा – **वसन्तश्चैत्रवैशाखो ज्येष्ठाषाढौ च ग्रीष्मकौ।**

मार्गपौषौ च हेमन्त: शिशिरो माघफाल्गुनौ ॥ - गोरक्षसंहिता

ऋतुओं का महत्व – वसन्तो ग्रीष्मो वर्षा। ते देवाऽऋतव: शरद्धेमन्त: शिशिरस्ते पितर: ॥

- शतपथ ब्राह्मण।

उपरोक्त आर्षवचनानुसार वसन्त, ग्रीष्म एवं वर्षादि तीन दैवी ऋतुयें हैं तथा शरद् , हेमन्त, और शिशिर, ये पितरों की ऋतुयें हैं। अत: इन ऋतुओं में यथोचित कर्म ही शुभ फल प्रदान करते हैं।

ऋतु फल –

वसन्त ऋतु जन्म फल – वसन्त ऋतु में जन्म लेने वाला मनुष्य सुन्दर रूपवाला, बुद्धिमान, प्रतापी, गणित, विद्या व संगीत – शास्त्र में प्रवीण, शास्त्रों का जानने वाला, प्रसन्नचित्त व निर्मल वस्त्र धारण करनेवाला होता है।

ग्रीष्म ऋतु जन्म फल – विद्या, धन – धान्य युक्त, ऐश्वर्यवान, वक्ता, भोगी, जल – विहार करने वाला होता है।

वर्षा ऋतु जन्म फल – बुद्धिमान, प्रतापी, संग्राम में धीर,घोड़े की सवारी में प्रीति रखने वाला, सुन्दर रूपवाला, कफ व वात प्रकृतिवाला व स्त्रियों के साथ क्रीड़ा करने वाला और प्रसन्नचित्त होता है।

शरद् ऋतु जन्म फल – वात प्रकृति, अभिमानी, धनी, पवित्र शरीर वाला, रण में प्रसन्नचित्त, उत्तम वाहनवाला व क्रोधरहित होता है।

हेमन्त ऋतु – श्रेष्ठ गुण सम्पन्न, उत्तम कर्म, धर्म में प्रीति, चतुर, उदार, राजमन्त्री, सदा नम्र व मनस्वी स्वभाव का होता है।

शिशिर ऋतु - मिष्ठान्न भोजन प्रिय, क्रोधी, स्त्री – पुत्र से सुखी, अधिक बलवान और वेष में प्रीति करनेवाला होता है।

2.4 अयन व गोल : महत्व –

अयन का अर्थ है - चलना। सूर्य का क्रान्तिवृत्त की कर्कादि छ: राशियों में दक्षिण की ओर गमन दक्षिणायन है और सूर्य का मकरादि छ: राशियों में उत्तर की ओर गमन उत्तरायण कहलाता है। उत्तरायण प्राय: 14 जनवरी से आरम्भ होकर, 15 जुलाई के आसपास तक होता है। दक्षिणायन 16 जुलाई से लेकर 13 जनवरी तक होता है। उत्त्रायण में प्राय: सभी शुभ कार्यो का करना जैसे - देवालयों में देवताओं की प्राण प्रतिष्ठा, नये मकान में प्रवेश, विवाह, व्रतबन्ध, मन्त्र - तन्त्र सीखना सनातन धर्म वालों के लिये शुभ माना गया है। इन कार्यो के अतिरिक्त अन्य कार्य दक्षिणायन में किये जाते है। दक्षिणायन में मार्गशीर्ष मास में विवाह करना शुभ माना गया है। सूर्य और चन्द्रमा उत्तरायन में बलवान होने के कारण मनुष्य का जन्म यदि इस अयन में हो तो उसे श्रेष्ठ फल मिलता है और सूर्य तथा चन्द्रमा दक्षिणायन में निर्बली होने के कारण उसे अनिष्ट फल मिलता है। उत्तरायन को देवताओं का दिन और दक्षिणायन को देवताओं की रात्रि कहते है।

वसन्त सम्पात से 90^0 आगे चलकर जब सूर्य दक्षिणायन बिन्दु पर पहुॅचता है तो दक्षिणायन प्रारम्भ होता है। यह प्राय: 21 जून को घटित होता है। इसी प्रकार दक्षिणायन बिन्दु से 90^0 आगे जाकर सूर्य शरत्सम्पात पर 23 सितम्बर के लगभग पहुॅचता है तो सर्दी की ऋतु आरम्भ हो जाती है। तत् पश्चात् 90^0 आगे जाकर उत्तरायण बिन्दु पर पहुँचता है तो सूर्य उत्तराभिमुख होकर चलने लगता है, अत: वही समय 22 दिसम्बर उत्तरायण का होता है। तत्पश्चात् 90^0 आगे चलकर पुन: वसन्त ऋतु के प्रारम्भ बिन्दु वसन्त सम्पात पर पहुॅच जाता है। यह सम्पूर्ण क्रान्तिवृत्त की परिक्रमा $90^0 \times 4 = 360^0$ अंशों या 12 राशियों की होती है। अत: ये चारों घटनायें प्रतिवर्ष होती है।

मकरादिषड्भस्थे सूर्ये सौम्यायनं स्मृतम्।

कर्कादिराशिषटके च याम्यायनमुदाहृतम्॥

मकरादि 6 राशि में सूर्य के रहने पर **सौम्यायन** और कर्कादि 6 राशि में **याम्यायन** कहलाता है।

वसन्त सम्पात व शरत्सम्पात वे बिन्दु हैं जो राशिवृत्त व विषुवद्वृत्त की काट पर स्थित हैं। ये दो है। अत: सूर्य वर्ष में दो बार 21 मार्च व 23 सितम्बर को विषुवद्वृत्त पर पहुॅचता है। ये दो दिन विषुव दिन या गोल दिन व इस दिन होने वाली सायन मेष व तुला संक्रान्ति **गोल** या **विषुवसंक्रान्ति** कहलाती हैं। **स्पष्ट है** कि सायन मेष से सायन तुला प्रवेश तक उत्तर गोल व सायन तुला से सायन मेषारम्भ पूर्व तक दक्षिण गोल होता है। इनकी तिथियॉं इस प्रकार हैं –

वसन्त सम्पात या सायन मेष – 21 मार्च या उत्तर गोलारम्भ।

सायन मेष + 90^0 = दक्षिणायनारम्भ (सायन कर्क अर्थात् 21 जून)

सायन कर्क + 90^0 = शरत्सम्पात या सायन तुला या दक्षिण गोलारम्भ या 23 सितम्बर।

सायन तुला + 90^0 = उत्तरायणारम्भ या सायन मकर या 22 दिसम्बर।

क्रान्तिवृत्त के प्रथमांश का विभाजन उत्तर व दक्षिण गोल के मध्यवर्ती ध्रुवों के द्वारा माना गया है। यही विभाजन उत्तरायण और दक्षिणायन कहलाता है। इन अयनों का ज्योतिष संसार में प्रमुख स्थान है।

उत्तरायण - इसे सौम्यायन भी कहा जाता है। उत्तरायण प्रवृत्ति सायनमकर के सूर्य अर्थात् 21-22 दिसम्बर से लेकर मिथुन के सूर्य 6 मास तक रहता है। साधारणतया लौकिकमतानुसार यह माघ से आषाढ़ पर्यन्त माना जाता है।

सौम्यायन सूर्य की कालावधि को देवताओं का दिन माना गया है एवं इस समय में सूर्य देवताओं का अधिपति होता है। शिशिर, वसन्त और ग्रीष्म ये तीन ऋतुयें, उत्तरायण सूर्य का संगठन करती हैं। इस अयन में नूतन गृहप्रवेश, दीक्षाग्रहण, देवता उद्यान – कुॅआ – बावड़ी – तालाब आदि की प्रतिष्ठा, विवाह – चूड़ाकरण तथा यज्ञोपवीत प्रभृति संस्कार एवं इतरेतर शुभ कर्म करना वांछनीय है विशेष – उत्तरायण – प्रवृत्ति के समय से 40 घटी पर्यन्त समय पुण्यकाल माना जाता है, जो सर्व

शुभजनक कार्यों में वर्जित है।

दक्षिणायन – यह समय देवताओं की रात्रि माना गया है। सायन कर्क के सूर्य अथवा 21 -22 जून से 6 मास अर्थात् धनुराशिस्थ सायनसूर्य तक का मध्यान्तर दक्षिणायन संज्ञक है। दक्षिणायन में वर्षा, शरद् और हेमन्तादि ऋतु – त्रय की संगति होती है।

दक्षिणायन काल में सूर्य पितरों का अधिष्ठाता कहा गया है। अतएव इसकाल में षोडश संस्कार तथा अन्य मांगलिक कार्यों के अतिरिक्त कर्म ही करणीय है। अत्यावश्कत्व में मातृ, भैरव, वराह, नृसिंह, त्रिविक्रम और देवी प्रभृति उग्र देवताओं के प्रतिष्ठापन में भी दोषापत्ति नहीं है।

अयन फल –

उत्तरायन में जन्म फल – उत्तरायन में जन्म लेने वाला मनुष्य सदा प्रसन्न चित्त, स्त्री पुत्रादि से अति सन्तोष व सुख पानेवाला, बहुत आयुष्यवाला, श्रेष्ठ आचार विचारवाला, उदार व धीरज वाला होता है।

दक्षिणायन में जन्म फल – दक्षिणायन में जन्म लेने वाला मनुष्य खेती करने वाला, पशुओं का पालन करने वाला, निष्ठुर मन वाला और किसी की बात न सहन करने वाला होता है।

विशेष – दक्षिणायन प्रवेश होन के समय से 16 घटी का समय पुण्यकाल के नाम से प्रसिद्ध है और वह सर्व शुभाशुभ कर्मों में विशेषतया त्याज्य है।

गोल –

सौम्यगोलश्च मेषाद्या: सायना राशयो हि षट्।

तुलाद्या राशयश्चैवं याम्यगोल: प्रकीर्तित: ॥

सायन मेषादि 6 राशि सौम्यगोल और तुलादि 6 राशि दक्षिणगोल कहलाता है। जब सूर्य मेष राशि में प्रवेश करता है, उस दिन वह उत्तर गोल में रहता है, और तब से लेकर कन्यान्त तक यावत् अवस्था में बना रहता है, अर्थात् उत्तर गोल ही रहता है। तत्पश्चात् जब वह तुला राशि में प्रवेश करता है, तब दक्षिण गोल होता हैं, तब से लेकर मीनान्त पर्यन्त दक्षिण गोल रहता है।

विशेष - गोल सामान्यत: दो प्रकार के होते है – उत्तर गोल एवं दक्षिण गोल। ज्योतिष शास्त्र के तीन स्कन्ध है – सिद्धान्त, संहिता एवं होरा। इन स्कन्धों में सिद्धान्त स्कन्ध में विस्तृत रूप से गोलाध्ययन किया जाता है। गोल के समस्त भाग, विभाग की चर्चा गोल स्कन्ध में की गई है। आचार्य भास्कराचार्य जी ने तो गोल के नाम से एक स्वतन्त्र अध्याय की ही चर्चा की है।

उन्होंने गोल की प्रशंसा करते हुये कहा है कि –

भोज्यं यथा सर्वरसं विनाज्यं राज्यं यथा राजविवर्जितं च।

सभा न भातीव सुवकतृहीना गोलानभिज्ञो गणकस्तथाऽत्र ॥

अर्थ – यथा भोजन के सभी प्रकार उपलब्ध हो, और उसमें घी न हो, तथा बिना राजा का राज्य हो,

सभा हो किन्तु उसमें कोई विद्वान न हो ये सभी बातें निरर्थक है। उसी प्रकार गोल से अनभिज्ञ गणक अर्थात् ज्योतिर्विद निरर्थक है। वह ज्योतिर्विद हो ही नहीं सकता। अत: ज्योतिषी को गोल का ज्ञान होना परमावश्यक है।

2.5 सारांशः –

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि जिस रात्रि में सूर्य और चन्द्रमा किसी राशि के एक ही अंश पर हो वह रात्रि अमावस्या कहलताती है। उस रात्रि में अन्धकार ही अन्धकार दिखाई देता है, क्योंकि सूर्य के समक्ष चन्द्र - प्रकाश नगण्य होता है। फिर अमावस्या से निरन्तर बढ़ती हुई चन्द्र – सूर्य की परस्पर दूरी जिस दिन 180 अंश परिमित हो जाती है, उस दिन रात्रि को पूर्ण चन्द्र दृष्टिगोचर होता है और वह रात्रि पूर्णिमा के नाम से प्रसिद्ध है। अत: अमावस्या से पूर्णिमा तक का यह 15 दिनात्मक प्रकाशमान मध्यान्तर शुक्लपक्ष कहलाता है। तद्वत ही पूर्णिमा से अमावस्या तक का काल कृष्णपक्ष कहलाता है। चान्द्र वर्ष में शुक्ल प्रतिपदा से एवं सौरवर्ष में मेष संक्रान्ति से निम्नांकित चैत्रादि 12 मास प्रारम्भ होते हैं - चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक मार्गशीर्ष, पौष, माघ व फाल्गुन। अयनों की संख्या दो होती है – उत्तरायण एवं दक्षिणायन। सूर्य के दो – दो राशियों का भोग करने से एक ऋतु की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार वर्ष में छ: ऋतु – शिशिर, वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद एवं हेमन्त होती है। ज्योतिष शास्त्र में पक्ष, मास, ऋतु, अयन एवं गोल ये सभी विषय अत्यन्त महत्वपूर्ण होने के साथ – साथ ज्योतिष शास्त्र के आरम्भिक ज्ञान के लिये परमावश्यक है। इनके ज्ञानाभाव में आप स्कन्धत्रय ज्यौतिष में प्रवेश नहीं पा सकते है, क्योंकि सम्पूर्ण स्कन्धों में इनका वर्णन किया गया है।

2.6 पारिभाषिक शब्दावली

तिथि – सूर्य और चन्द्रमा के द्वादश अंश का गत्यात्मक अन्तर का नाम तिथि है।

वार – सूर्यादित: शनि पर्यन्त सात वार होते है।

पक्ष – पक्षों की संख्या दो है – शुक्ल पक्ष एवं कृष्णपक्ष

मास – मास 12 होते है। सूर्य के द्वारा एक राशि का भोग 30 दिन में होता है, जिसकी मास संज्ञा होती है।

गोल – गोल दो प्रकार के होते है एक सौम्य गोल दूसरा याम्य गोल।

ऋतु – ऋतुओं की संख्या 6 है। शिशिर, वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त।

अयन - अयन दो प्रकार के होते है, उत्तरायण एवं दक्षिणायन।

2.7 बोध प्रश्नों के उत्तर –

1. ख
2. ख
3. घ

4. ख
5. ख
6. ख
7. घ

2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची –

1. वृहज्जयौतिसार
2. मुहूर्त्तपारिजात
3. वृहज्जातक
4. ज्योतिषसर्वस्व
5. होराशास्त्रम्

2.9 निबन्धात्मक प्रश्न -

1. पक्ष, मास एवं ऋतु को परिभाषित करते हुये विस्तार से उसका उल्लेख कीजिये।
2. अयन एवं गोल से आप क्या समझते है। विस्तृत वर्णन कीजिये।

इकाई – 3 तिथि वार विवेचन

इकाई की संरचना

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 तिथि – वार का परिचय
3.4 तिथि – वार की परिभाषा व स्वरूप
तिथि – वार का महत्व
बोध प्रश्न
3.5 सारांशः
3.6 पारिभाषिक शब्दावली
3.7 बोधप्रश्नों के उत्तर
3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना -

प्रस्तुत इकाई प्रथम खण्ड के इकाई तीन **'तिथि वार विवेचन' नामक** शीर्षक से संबंधित है। ज्योतिष शास्त्र में तिथि - वार सिद्धान्त ज्योतिष से जुड़ा विषय है।

ग्रहों में सूर्य – चन्द्र के गति के आधार पर तिथि वार का विवेचन किया गया है, अर्थात् तिथि एवं वारोत्पत्ति में सूर्य एवं चन्द्रमा की गति हेतु है।

इससे पूर्व की इकाईयों में आपने मुहूर्त्त, पक्ष, मास, ऋतु अयन एवं गोल का अध्ययन कर लिया हैं। अब यहॉ हम इस इकाई में तिथि - वार सम्बन्धित विषयों का अध्ययन विस्तार पूर्वक करेंगे।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप-

1. तिथि वार को परिभाषित करने में समर्थ हो सकेंगे।
2. तिथि वार के महत्त्व को समझा सकेंगे।
3. तिथि वार की संख्या जान लेंगे।
4. तिथि वार का स्वरूप वर्णन करने में समर्थ होंगे।
5 तिथि वार के सम्बन्ध को निरूपित करने में समर्थ होंगे।

3.3 तिथि - वार का परिचय –

'दर्श: सूर्येन्दु संङ्गः' के आधार पर अमावस्या तिथि को जब सूर्य और चन्द्रमा का समागम होता है, उसके पश्चात् दोनों ग्रह उत्तरोत्तर दूर होते जाते हैं। उस दिन चन्द्रमा 0^0 से प्रारम्भ होकर जब 12^0 तक जाता है तब तक शुक्ल – प्रतिपदा का अस्तित्व रहता है। इसी प्रकार प्राय: 12 – 12 अंशों के परिमाण से अग्रिम तिथियॉ बनती रहती है। अन्ततोगत्वा, पूर्णिमा को सूर्य – चन्द्रमा में 180^0 की दूरी हो जाने पर चन्द्रमा का मण्डल पूर्ण प्रकाशमान दिखलाई देता है। शुक्लपक्ष की समाप्ति और कृष्णपक्ष के आरम्भ के साथ चन्द्रमा दिन – प्रतिदिन क्षीणता को प्राप्त होने लगता है। प्रतिदिन 12 अंश के क्रमिक – ह्रास के साथ – साथ कृष्ण प्रतिपदादि तिथियों का भी आवागमन क्रमश: चलता रहता है। परिणामस्वरूप चन्द्रमा 0^0 पर पहुॅच जाता है और अमावस्या की प्रवृत्ति के साथ कृष्णपक्ष भी इति श्री को प्राप्त हो जाता है। चन्द्रमा का यह परिभ्रमण ही षोडश तिथियों की विद्यमानता का कारण – स्वरूप है।

तिथि को इस प्रकार भी समझा सकता है - सूर्य की गति मध्यम मान से प्रतिदिन कलादि मान 59' – 8 है, जबकि चन्द्रमा की दैनिक गति मध्यम मान से 13^0 – 10' के तुल्य है। अमावस्या को

सूर्य चन्द्रमा की राशि अंशात्मक युति के पश्चात् चन्द्रमा सूर्य से औसतन $12^0 - 12^0$ प्रतिदिन आगे निकल जाता है जिससे क्रमश: तिथियॉ बनती जाती है। कभी – कभी चन्द्रमा एक सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय तक 12^0 से अधिक चला जाता है तथा एक ही वार में तीन तिथियों का स्पर्श हो जाता है, तब बीच वाली तिथि का क्षय मान लिया जाता है। इसी प्रकार अनियमित चन्द्र गति के कारण जब एक ही तिथि में तीन वारों का स्पर्श हो जाये तो वह वृद्धि तिथि कहलाती है। क्षयतिथि को अवम भी कहते है। सूर्योदय के समय की तिथि को ही उस दिन की तिथि कहते हैं।

एक – एक पक्ष में 15 – 15 तिथियॉ होती है, उनके नाम इस प्रकार है –

प्रतिपच्च द्वितीया च तृतीया तदनन्तरम्।
चतुर्थी पंचमी षष्ठी सप्तमी चाष्टमी तथा।।
नवमी दशमी चैका दशी च द्वादशी तत:।
तिथिस्त्रयोदशी नाम तदग्रे च चतुर्दशी।।
ततोऽग्रे पूर्णिमा शुक्ले कृष्णे पंचदशी त्वमा।
सा दृष्टेन्दु: सिनीवाली सा नष्टेन्दुकला कुहू:।।

प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पंचमी, षष्ठी, सप्तमी, अष्टमी, नवमी, दशमी, एकादशी, द्वादशी, त्रयोदशी, चतुर्दशी और शुक्लपक्ष की 15 पूर्णिमा तथा कृष्णपक्ष की अमावस्या कहलाती है। उसमें यदि चन्द्र की कला कुछ शेष रहती है तो सिनीवाली यदि चन्द्रकला नि:शेष हो जाती है तो वही कुहू कहलाती है। अमावस्या को दर्श भी कहते है।

तिथियों के स्वामी –

तिथिशा वह्निकौ गौरी गणेशोऽहिर्गुहो रवि:।
शिवो दुर्गान्तको विश्वे हरि: काम: शिव: शशी।।

इस श्लोक के अनुसार प्रत्येक तिथियों के अलग – अलग स्वामी कहे गये है। यथा -

प्रतिपदा – अग्नि, **द्वितीया** – ब्रह्मा, **तृतीया** – गौरी, **चतुर्थी** – गणेश, **पंचमी** – सर्प, **षष्ठी** – कार्तिकेय, **सप्तमी** – सूर्य, **अष्टमी** – शिव, **नवमी** – दुर्गा, **दशमी** - यम, **एकादशी** – विश्वदेव, **द्वादशी** - विष्णु, **त्रयोदशी** – कामदेव, **चतुर्दशी** – शिव, **पूर्णिमा** – चन्द्रमा, **अमावस्या** - पितर।

शुभाशुभ तिथियॉ –

अष्टमी द्वादशी षष्ठी रिक्ता दर्शस्तथैव च।
असत्तिथ्यो बुधै: प्रोक्ता: शेषा: सत्तिथय: स्मृता:।।

अष्टमी, द्वादशी, षष्ठी, चतुर्थी, नवमी तथा चतुर्दशी और अमावस्या ये असत् अर्थात् अशुभ तिथियॉ है कही गई है। इनके अतिरिक्त प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया, पंचमी, सप्तमी, दशमी, एकादशी, त्रयोदशी, और पूर्णिमा शुभ तिथियॉ कही गई है।

ति.	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	पूर्णिमा	अमा.
स्वा.	अग्नि	ब्रह्मा	गौरी	गणेश	सर्प	कार्ति-केय	सूर्य	शिव	दुर्गा	यम	विश्व	विष्णु	काम	शिव	चन्द्र	पितर
नन्दादि	नन्दा	भद्रा	जया	रिक्ता	पूर्णा	नन्दा	भद्रा	जया	रिक्ता	पूर्णा	नन्दा	भद्रा	जया	रिक्ता	पूर्णा	पूर्णा
शुभ	शुभ	शुभ	शुभ		शुभ		शुभ			शुभ	शुभ		शुभ			
अशुभ				अशुभ		अशु-भ		अशु-भ	अशुभ			अशुभ		अशु-भ	शुभ	अशुभ

स्पष्टार्थ चक्र –

तिथियों के उपादेयता के परत्व को दृष्टिगत रखकर उन्हें विभिन्न संज्ञायें प्रदान की गई हैं, जिनका परिचय यहाँ संक्षेप में दिया जा रहा है –

1. **नन्दादि तिथियाँ** - शुक्ल एवं कृष्णपक्ष की समस्त तिथियाँ भिन्न – भिन्न गुणों और नन्दादि संज्ञाओं से विभूषित की गई है। सुगमता से उन्हें पहचानने के लिये नीचे कोष्ठक दिया गया है –

नन्दा	भद्रा	जया	रिक्ता	पूर्णा
1	2	3	4	5
6	7	8	9	10
11	12	13	14	15

नन्दादि तिथियों में कर्त्तव्य कर्म –

नन्दासु चित्रोत्सववास्तुतन्त्रक्षेत्रादि कुर्वीत तथैव नृत्यम्।
विवाहभूषाशकटाध्वयानं भद्रासु कार्याण्यपि पौष्टिकानि॥
जयासु संग्रामबलोपयोगि कार्याणि सिद्धयन्ति हि निर्मितानि।
रिक्तासु तद्वद्विषबन्ध घातविषाग्निशस्त्राणि च यान्ति सिद्धिम्॥
पूर्णासु मांगल्यविवाहयात्रा सपौष्टिकं शान्तिककर्म कार्यम्।
सदैव दर्शे पितृकर्म मुक्त्वा नान्यद्विदध्याच्छुभ्मंगलानि॥

क. **नन्दा** - नन्दा (1,6 ,11) तिथियों में वस्त्र, गीत – वाद्य नृत्य, कृषि, उत्सव, गृहसम्बन्धी कार्य तथा किसी शिल्प का अभ्यास

ख. **भद्रा** – भद्रा (2,7,12) तिथियों में विवाह, उपनयन, यात्रा, आभूषण – निर्माण और उपयोग, कला सीखना तथा हाथी – घोड़ा एवं सवारी विषयक कार्य।

ग. **जया -** जया (3,8,13) तिथियों में सैन्य संगठन, सैनिक शिक्षा, संग्राम, शस्त्र निर्माण, यात्रा, उत्सव, गृहारम्भ, गृहप्रवेश, औषधकर्म और व्यापार।

घ. **रिक्ता -** रिक्ता (4,9,14) तिथियों में शत्रुओं का दमन और कैद करना, विषदेना, शस्त्रप्रयोग, शल्य क्रिया तथा अग्नि लगाना आदि क्रूरकर्म।

ङ. **पूर्णा** – पूर्णा (5,10,15) तिथियों में विवाह, यज्ञोपवीत, आवागमन, नृपाभिषेक तथा शान्तिक – पौष्टिक कर्म।

तिथि समय – सूर्योदय के समय जो तिथि वर्तमान हो वह **उदयव्यापिनी** तिथि सम्पूर्ण दिन – रात्रि तक दान, पठन, व्रतोपवास, स्नान, देवकर्म, विवाहादि संस्कार तथा प्रतिष्ठादि समस्त मांगलिक कार्यों में ग्राह्य है। परन्तु श्राद्ध शरीर पर तैल उबटन का प्रयोग, मैथुन तथा जन्म मरण में तात्कालिक कर्मव्यापिनी तिथि को ही ग्रहण करनी चाहिये।

2. **छिद्रा तिथियॉ** – प्रत्येक पक्ष की 4,6,8,9,12 और 14 तिथियॉ पक्ष छिद्रा कहलाती हैं तथा शुभकार्यों में इनका परित्याग ही अपेक्षित है। आवश्यक कार्य के अवसर पर अधोलिखित चक्र में प्रस्तुत तिथियों की निर्दिष्ट आदिम घटियॉ त्यागकर शेष घटियों को प्रयोगार्थ ग्रहण करना चाहिये।

स्पष्टार्थ चक्र

तिथि	4	6	8	9	12	14
घटी	8	9	14	25	10	5

उपर्युक्त घटियॉ प्रत्येक तिथि का मान 60 घटी मानकर लिखी गई हैं। तिथिमान के अल्पाधिक होने पर पाठक गण त्रैराशिक प्रणाली का उपयोग करना चाहिये।

त्रैराशिक – इस गणित में प्रमाण, इच्छा, और फल इन तीनों राशियों का कार्य है। यदि ये तीनों राशियॉ ज्ञात हों तो चतुर्थराशि (इच्छा फल) को प्राप्त किया जा सकता है। यथा –

चूँकि 60 घटी चतुर्थी हो तो त्याज्य = 8 घटी (फल)

इसीलिये 61 घटी (इच्छा) '' '' = 8 / 60 × 61

इसलिये इच्छा फल = 8 घटी 8 पल

अत: 61 घटी तिथि मान होने पर चतुर्थी की अग्रिम 8 घटी और 8 पल त्याज्य होती हैं।

3. **पर्व तिथियॉ** –

अमावास्याऽष्टमी चैव पूर्णिमा च चतुर्दशी।

इति पर्वाणि कथ्यन्ते रविसंक्रान्तिगं दिनम्॥

अमावस्या 8,15, 14 ये तिथियॉ और सूर्य की संक्रान्ति ये 5 पर्व कहलाते हैं। इनमें स्नान दानादि का अधिक महत्व कहा गया है।

तिथियों में त्याज्य –

षष्ठयष्टमीभूतविधुक्षयेषु नो सेवेत ना तैलपलक्षुरं रतम् ।

नाभ्यञ्जनं विश्वदशद्विके तिथौ धात्रीफलैः स्नानममाद्रिगोष्वसत् ॥

षष्ठी में तैल, अष्टमी में मॉस, चतुर्दशी में क्षौर, और अमावस्या में स्त्री - प्रसंग नहीं करना चाहिये । 13,10,2 तिथियों में उबटन तथा 30,7,9 इन तिथियों में धात्रीफल (ऑवले) से स्नान नहीं करना चाहिये

परिहार –

शनौ षष्ठयां स्मृतं तैलं महाष्टम्यां पलाशनम् ।

क्षौरं शुक्लचतुर्दश्यां दीपमाल्यां च मैथुनम् ॥

शनिवार में षष्ठी हो तो तैल, आश्विन शुक्ल अष्टमी में मॉस, शुक्लपक्ष की 14 में क्षौर और दीपावली 30 में स्त्री – प्रसंग प्रशस्त है ।

शुद्ध क्षय और अधिक तिथि –

सैव शुद्धा तिथिर्ज्ञेया यस्यामेकोदयो रवेः ।

यस्यां सूर्योदयो नैव सा क्षयाख्या प्रकीर्तिता ।।

सूर्योदयद्वयं यस्यां साधिका तिथिरूच्यते ।

शुभे सिद्धा तिथिर्ग्राह्या विवर्ज्ये च क्षयाधिके ॥

जिसमें एक सूर्योदय हो वह शुद्ध तिथि कहलाती है । जिसमें सूर्योदय नहीं हो वह क्षय तिथि और जिसमें दो सूर्योदय हो उनमें अग्रिम अधिक तिथि कहलाती है । शुभकार्य में क्षय और अधिक तिथि त्याज्य और शुद्ध तिथि प्रशस्त है ।

बोध प्रश्न : -

1. दर्श शब्द का अर्थ होता है ।

क. पूर्णिमा ख. अमावस्या ग.कृष्णपक्ष घ. शुक्लपक्ष

2. तिथि कहते है ।

क. सूर्य और चन्द्रमा के गति को ख. सूर्य और चन्द्रमा को ग. सूर्य और चन्द्रमा के गत्यन्तर को

घ कोई नहीं

3. तिथियों की संख्या होती है ।

क. 12 ख. 13 ग. 15 घ. 16

4. तृतीया तिथि के स्वामी है ।

क. अग्नि ख. गौरी ग. ब्रह्मा घ. यम

5. भद्रा संज्ञक तिथियॉ होती है ।

क. 1,11,6 ख. 2,7,12 ग. 3,8,13 घ. 4,14,9

विशेष - प्रत्येक स्थूल तिथि में उसी उसी तिथि से आरम्भकर 15 सूक्ष्म तिथियॉं व्यतीत होती हैं। इसलिये एक सूक्ष्म तिथि का मान 4 घटी होता है। उस दृष्टिकोण से प्रत्येक तिथि में सूक्ष्म शुभ तिथ देखकर ही कार्यारम्भ करना श्रेष्ठ कहा गया है।

1. **गलग्रह तिथियॉं** – चतुर्थी, सप्तम्यादि तीन तिथियॉं (7,8,9) और त्रयोदशी से चार दिन (13,14,30,1) ये कृष्णपक्ष की तिथियॉं गलग्रह कहलाती है। मंगल जनक कार्यों में इन गलग्रह तिथियों का त्याग कर देना चाहिये।
2. **सोपपद व कुलाकुल तिथियॉं** – ज्येष्ठ शुक्ला द्वितीया, आषाढ़ शुक्ला दशमी, पौष शुक्ला एकादशी, माघ की उभयपक्षी चतुर्थी और द्वादशी ये तिथियॉं सोपपद कहलाती हैं। इसी प्रकार प्रत्येक मास की 2,6,12 तिथियॉं कुलाकुल संज्ञक हैं। सोपपद तिथियों को शुभ तथा कुलाकुल तिथियों को मध्यम फलद जानना चाहिये।
3. **शून्य तिथियॉं** – चैत्रादि बारह मासों में कुछ विशेष तिथियों को शून्य कहा गया है।इन तिथियों में किये गये कार्य निष्फल होते है। यथा -

भाद्रे चन्द्रदृशौ नभस्यनलनेत्रे माधवे द्वादशी।
पौषे वेदशरा इषे दशशिवा मार्गेऽद्रिनागा मधौ॥
गोऽष्टौ चोभयपक्षगाश्च तिथय: शून्या बुधै: कीर्तिता।
उर्जाषाढतपस्यशुक्रतपसां कृष्णे शराङ्गाब्धय:॥
शक्रा: पञ्च सिते शक्राद्याग्निविश्वरसा: क्रमात्।

दोनों पक्षों की शून्य तिथियॉं – भाद्र में प्रतिपद्, द्वितीया, श्रावण में तृतीया, द्वितीया, वैशाख की द्वादशी, पौष की चतुर्थी, पंचमी, आश्विन में दशमी, एकादशी, मार्गशीर्ष में सप्तमी, अष्टमी, चैत्र में अष्टमी, नवमी – ये शून्य तिथियॉं कही गई है।

कार्तिकमास कृष्णपक्ष की पंचमी, शुक्ल की चतुर्दशी, आषाढकृष्ण की षष्ठी, शुक्ल की सप्तमी, फाल्गुनकृष्ण की चतुर्थी, शुक्ल की द्वितीया, ज्येष्ठकृष्ण की चतुर्दशी, शुक्ल की त्रयोदशी, माघकृष्ण की पंचमी और शुक्ल की षष्ठी तिथियॉं भी शून्य तिथियॉं कही गई है।

मास शून्य तिथियों में शुभ कर्म करने से वंशवित्त क्षय होता है। इन शून्य तिथियों में श्राद्ध किया जाना चाहिये किन्तु मंगल कर्म नहीं करने चाहिये।

युगादि तिथियॉं – सत्य, त्रेता, द्वापर और कल्यादि चार युगों के प्रारम्भ की तिथियॉं युगादि के नाम से प्रचलित हैं। स्पष्टता के लिये निम्न चक्र दर्शनीय है –

सतयुग	त्रेतायुग	द्वापरयुग	कलियुग	**चतुर्युग**
कार्तिक	वैशाख	माघ	श्रावण	**मास**
शुक्ल	शुक्ल	कृष्ण	कृष्ण	**पक्ष**

9	3	15	13	**युगादि तिथि**

मन्वादि युगादि तिथियों में कार्याकार्य - इन तिथियों में स्नान, हवन, जप, एवं दान – पुण्य करने से अनन्त फल की प्राप्ति होती है, परन्तु विद्यारम्भ उपनयन, व्रतोद्यापन, विवाह, गृह निर्माण प्रवेश, नित्याध्ययन तथा यात्रादि में इन्हें नहीं लेना चाहिये। शुक्लपक्ष में कर्त्तव्य श्राद्ध के लिये इन तिथियों का पूर्वाह्न और कृष्णपक्ष के श्राद्धों के लिये इनका अपराह्न ग्राह्य है।

तिथि कृत्य – प्रतिपदादि षोडश तिथियों में कर्त्तव्य एवं विहित कर्म –

1. **प्रतिपदा** - विवाह, यात्रा, उपनयन, प्रतिष्ठा, सीमन्तोन्नयन, चौलकर्म, गृहारम्भ प्रवेश तथा शान्तिक पौष्टिक कार्यादि समस्त मांगलिक कर्म।
2. **द्वितीया** - राजा मन्त्री सामन्त देश कौश गढ़ और सेनादि राज के सप्तांग व छत्र, चामर आदि राज्य के सप्तचिन्ह सम्बन्धी कार्य, वास्तुकर्म, प्रतिष्ठापन, यात्रा, विवाह, आभूषण घट्टन व धारण तथा उपनयनादि शुभकर्म। द्वितीया में तैलाभ्यंग वर्ज्य है।
3. **तृतीया** – संगीत विद्या व शिल्पकर्मविषयक कर्म, सीमन्त, चूड़ाकरण, अन्नप्राशन, गृहप्रवेश तथा द्वितीया में कहे हुये कार्य।
4. **चतुर्थी** – शत्रुताडन, विजली के कार्य, विषदान, किसी का वध, अग्नि लगाना, कैद करना तथा शस्त्र प्रयोगादि क्रूर कर्म।
5. **पंचमी** – चर – स्थिरादि समस्त शुभसंज्ञक कर्म। परन्तु इस दिन ऋण – प्रदान नहीं करना चाहिये।
6. **षष्ठी** - शिल्पकर्म, रणकार्य, गृहारम्भ, वस्त्रालंकार कृत्य एवं अखिल काम्य कर्म। परन्तु इस दिन दातुन, आवागमन, तैलाभ्यंजन, काष्ठकर्म एवं पितृकार्य सर्वथा वर्ज्य है।
7. **सप्तमी** – हस्तिकर्म, विवाह, संगीतकर्म, वस्त्राभूषणनिर्माण और धारण, यात्रा, गृहप्रवेश, वधूप्रवेश, संग्राम तथा द्वितीया, तृतीया एवं पंचमी में उदितकृत्य।
8. **अष्टमी** – युद्ध, वास्तुकार्य, शिल्प, राजकार्य, आमोद – प्रमोद, लेखन, नृत्य, स्त्रीकर्म, रत्नपरीक्षा, आभूषण कर्म तथा शस्त्रधारण,। इस दिन मांस सेवन न करे।
9. **नवमी** – चतुर्थ्युक्त कर्म, विग्रह, कलह, जुआ खेलना, मद्य निर्माण पान, आखेट और शस्त्रनिर्माण।
10. **दशमी** – द्वितीया, तृतीया, पंचमी एवं सप्तमी में कर्त्तव्यकार्य, हाथी – घोड़ों के काम तथा राजकार्य। इस दिन तैलाभ्यंग का त्याग करें।
11. **एकादशी** – व्रतोपवास, यज्ञोपवीत, पाणिपीडन, दैव – महोत्सवादि अखिलधर्मकर्म, गेहारम्भ, युद्ध, शिल्प सीखना, मद्यनिर्माण, गमनागमन और वस्त्रालंकार कार्य।

12. **द्वादशी** – अखिल चर स्थिरकार्य, पाणिग्रहण, उपनयनादि मांगलिक आयोजन। परन्तु तैलमर्दन, नूतन गृहारम्भ प्रवेश और यात्रा का परित्याग करें।
13. **त्रयोदशी** - द्वितीया, तृतीया, पंचमी, सप्तमी तथा दशमी में कहे गये कर्म। परन्तु मतान्तरेण इस दिन यात्रा, गेहादि प्रवेश, तैलाभ्यंग, युद्ध, वस्त्राभूषण कर्म तथा यज्ञोपवीत के अतिरिक्त समस्त मंगल कार्य शुभ है।
14. **चतुर्दशी** – विषदान, शस्त्रधारण- प्रयोग तथा चतुर्थ्युक्त दुष्ट कर्म। पुनश्च चतुर्दशी में क्षौर कर्म तथा यात्रा – करणादि विवर्जनीय है।
15. **पूर्णमासी** – विवाह, देव जलाशय वाटिका की प्रतिष्ठा, शिल्प भूषणादि कर्म, संग्राम तथा याज्ञिक शान्तिक पौष्टिक व वास्तु कर्म।

30. **अमावस्या** – इस दिन अग्न्याधान, पितृकर्म तथा महादान प्रशस्त है, परन्तु इसमें कोई शुभ कर्म तथा स्त्री संग रमण नहीं करना चाहिये।

तिथि विषघटी विवेक – अधोलिखित चक्र में निर्दिष्ट घटियों के उपरान्त 4-4 घटी प्रत्येक तिथि में विष बोधक होती हैं। ये दुष्ट फलदा होने के कारण इन विषघटियों में विवाहादि समस्त मांगलिक कर्म त्याज्य हैं –

विवाहव्रतचूडासु गृहारम्भप्रवेशयो:।

यात्रादिशुभाकार्येषु विघ्नदा विषनाडिका: ॥

विषनाडिका चक्र –

तिथि	**घटी**	**तिथि**	**घटी**
1	15	9	7
2	5	10	10
3	8	11	3
4	7	12	13
5	7	13	14
6	5	14	7
7	4	15,30	8
8	8		

तिथि का मान 60 घटी मानकर ये घटियॉ निर्णीत की गई हैं, परन्तु यदि तिथिमान न्यूनातिरिक्त हो तो तिथिमान को चक्र में प्रदत्त ध्रवे से गुणित करके 60 से विभाजित करने पर प्राप्त लब्धि घटी के पश्चात् उस तिथि की विषघटिका जानना चाहिये।

तिथियों की दिशा और फल –

पू - उ – आ – नै - द - पा – वा - ई दिशासु प्रतिपन्मुखाः।

वामसम्मुखयोर्नेष्टा यात्रादौ कथिता बुधै : ।।

पूर्व, उत्तर, अग्नेय, नैऋत्य, दक्षिण, पाशी पश्चिम, वायु और ईशान इन दिशाओं में क्रम से प्रतिपदादि तिथियॉ रहती है। यात्रादि में सम्मुख और वाम तिथियॉ त्याज्य कही गई है।

पूर्व	अग्नि	दक्षिण	नैऋत्य	पश्चिम	वायु	उत्तर	ईशान
1/9	3/11	5/13	4/12	6/14	7/15	2/10	8/30

वार विवेचन - दो सूर्योदयों के बीच में एक सावनात्मक वार होता है। समस्त विश्व में सात वारों का ही प्रचलन है। सृष्टि का शुभारम्भ चैत्र शुक्ल प्रतिपदा तदनुसार रविवार को होने के कारण सर्वत्र सप्ताह का श्रीगणेश रविवार से ही होता है। तदन्तर सोम, मंगल, बुध, गुरू, शुक्र और शन्यादि वार क्रम से आते रहते हैं। यद्यपि जन्म, मरण, षोडश संस्कार, यात्रा, यज्ञ, हवन – प्रतिष्ठादि अखिल मांगलिक कार्यों में वार – प्रवृत्ति सूर्योदय से ही सर्वदा मानी जाती है तथापि प्रात: सन्ध्यादि नित्य करिष्यमाण कर्मों में अर्द्धरात्रि के उपरान्त अग्रिम वार को संकल्प में ग्रहण कर लिया जाता है।

वारों की शुभाशुभता – सोम, बुध, गुरू और शुक्र वार सौम्य तथा रवि, मंगल व शनिवा क्रूर श्रेणी में आते हैं। शुभकर्म शुभ वारों में तथा पापकर्म क्रूर वारों में किये जाते हैं, तदुपरि कुछ शुभकर्मों में पापवारों को भी महत्व प्रदान किया गया है, यह कृत्य वैशेष्य पर निर्भर है।

वार नामानि –

आदित्यश्चन्द्रमा भौमो बुधश्चाथ वृहस्पति:।

शुक्र: शनैश्चरश्चैव वासरा: परिकीर्तिता: ।।

रवि, चन्द्र, मंगल, बुध, वृहस्पति, शुक्र और शनि ये सात वार होते हैं।

वारों के स्वामी तथा देवता –

सूर्यादित: शिवशिवागुहविष्णुकेन्द्रकाला: क्रमेण पतय: कथिता ग्रहाणाम्।

वह्नयम्बुभूमिहरिशक्रशचीविरंचिस्तेषां पुनर्मुनिवरैरधिदेवताश्च ।।

शिव, गौरी, षडानन, विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र और काल ये 7 क्रम से सूर्यादिक वारों के स्वामी तथा अग्नि, जल, भूमि, हरि, इन्द्र, इन्द्राणी और ब्रह्मा ये 7 क्रम से वारों के देवता हैं।

वारों में कृत्य –

रविवार –

राज्याभिषकोत्सवयानसेवागोवह्निमन्त्रौषधशस्त्रकर्म।

सुवर्णताम्रौर्णिकचर्मकाष्ठसंग्रामपण्यादि रवौ विदध्यात् ।।

राज्याभिषेक, उत्सव, यात्रा, राजसेवा, गाय – बैल का क्रय विक्रय, हवन करना, मन्त्रोपदेश करना, औषध तथा शस्त्र निर्माण करना, सोना, तॉबा, उन, चर्म, काष्ठ कर्म, युद्ध और क्रय - विक्रय इत्यादि कर्म रविवार को करने चाहिये।

सोमवार -

शङ्खाब्जमुक्तारजतं सुभोज्यं स्त्रीवृक्षकृष्य म्बुविभूषणाद्या: ।

गानं ऋतु: क्षीरविकारश्रृङ्गे पुष्पाम्बरारम्भणमिन्दुवारे ।।

शङ्ख, मूँगा, मोती, चॉदी, भोजन, स्त्रीसंसर्ग, वृक्ष, कृषि, जलादिकर्म, अलंकार, गीत, यज्ञकर्म, दूध – दही, मथना, सींग चढ़ाना, पुष्प, वस्त्र कार्य सोमवार को शुभ है।

मंगलवार –

भेदानृतस्तेयविषाग्निशस्त्रवन्ध्याविघाताहवशाठयदम्भान् ।

सेनानिवेशाकरधातुहेमप्रवालरत्नानि कुजे विदध्यात् ।।

भेद, अनृत, चोरी, विष, अग्नि, वध, वन्ध्या, घात, संग्राम, कपट व दम्भादि कर्म, सेना का पड़ाव, खानि, धातु, सुवर्ण, मूँगा, रत्नादि कर्म मंगल को प्रशस्त है।

बुधवार –

नैपुण्यपुण्याध्ययनं कलाश्च शिल्पादिसेवालिपिलेखकानि ।

धातुक्रियाकांचनयुक्तिसन्धिव्यायामवादाश्च बुधे विधेया: ।।

चातुर्य, पुण्य, विद्या, कला, शिल्प, सेवा, लिखना, धातुक्रिया, सोने के जड़ित अलंकार, सन्धि, व्यायाम और विवाद ये कर्म बुधवार को करने चाहिये।

गुरूवार –

धर्मक्रियापौष्टिकयज्ञविद्यामांगल्यहेमाम्बरवेश्मयात्रा ।

रथाश्वभैषजयविभूषणादि कार्यं विदध्यात्सुरमन्त्रिवारे ।।

धर्म करना, यज्ञ, विद्याभ्यास, मांगलिक कर्म, स्वर्ण कार्य, गृह निर्माण, यात्रा, रथ, अश्व, औषध नूतन वस्त्र धारण करना गुरूवार को शुभ है।

शुक्रवार -

स्त्रीगीतशय्यामणिरत्नगन्धवस्त्रोत्सवालंकरणादिकर्म ।

भूपण्यगोकोशकृषिक्रियाश्च सिद्धयन्ति शुक्रस्य दिने समस्ता: ।।

स्त्री प्रसंग, गायन, शय्या, रत्नादि, वस्त्र, अलंकार, वाणिज्य, भूमि, गौ, द्रव्य तथा खेती आदि कार्य शुक्रवार को प्रशस्त है।

शनिवार –

लोहाश्मसीसत्रपुशस्त्रदास – पापानृतस्तेयविषार्कविद्याम् ।
गृहप्रवेशद्विपबन्धदीक्षास्थिरं च कर्मार्कसुतेऽह्नि कुर्यात् ॥

लोहा, पत्थर, शीशा, जस्ता, शस्त्र, दास, दुष्टकर्म, चोरी, विष, अर्क निकालना, गृहप्रवेश, हाथी बॉंधना, दीक्षा ग्रहण करना और स्थिर कर्म शनिवार को करने चाहिये ।

उपर्युक्त रवि आदि वार दो प्रकार से व्यवहार में लाये जाते हैं । एक तो सूतक आदि में – अहोरात्र गणना के लिये सूर्योदय से एवं तिथि, नक्षत्र आदि की घटी, दिनमान की घटी भी सूर्योदय से किन्तु यात्रा विवाहादि शुभ कार्यों में विहित और निषिद्धवार जो कहा गया है, वह सदा सूर्योदय से नहीं होता, कभी सूर्योदय से पूर्व से ही और कभी पश्चात् से वार का प्रवेश होता हैं, क्योंकि सृष्टि के आरम्भ में जहॉं सूर्योदय हुआ था, उसी स्थान के सूर्योदय काल में सर्वत्र वार का प्रवेश और अन्त होता है जिसका मान मध्यम सावन 60 घटी होता है ।

मध्य रेखा लंका, उज्जयिनी – कुरूक्षेत्र की याम्योत्तर रेखा से पूर्वस्थान में जितने मिनट देशान्तर हो उसको 6 घंटे में जोड़ने से तथा मध्य रेखा से पश्चिम जितने मिनट देशान्तर हो उसको 6 घण्टा में घटाने से उतना घण्टा मिनट पर अपने इष्ट स्थान में वार – प्रवृत्ति जानना चाहिये ।

उदाहरण – काशी में मध्य रेखा से 28 मिनट पूर्व देशान्तर है तो प्रात: 6 बजकर 28 मिनट पर सदा काशी में रवि आदि वार की प्रवृत्ति होगी । मान लीजिये कि किसी रविवार को काशी में 5 बजकर 25 मिनट पर सूर्योदय है, तो 6।28 – 5।25 = 1।3 एक घण्टा तीन मिनट सूर्योदय के पश्चात् रविवार की प्रवृत्ति समझना चाहिये । एवं यदि 6 बजकर 50 मिनट पर सूर्योदय है तो 6/50 – 6/28 = 0/22 मिनट सूर्योदय से पूर्व ही रविवार की प्रवृत्ति होगी । ऐसा समझना तथा मुम्बई में मध्यरेखा से 13 मिनट पश्चिम देशान्तर है तो वहॉं प्रात: 5 बजकर 47 मिनट पर नित्य वार प्रवृत्ति होगी । इसी प्रकार देशान्तर सारिणी से स्व – स्व स्थान के देशान्तर द्वारा वार प्रवृत्ति का समय बनाकर फिर नित्य के सूर्योदय से पूर्व या पश्चात् वार प्रवृत्ति समझकर यात्रा विवाहादि या पर्वयोगादि में वार का प्रयोग करना चाहिये । ध्यातव्य है कि यात्रा, विवाहादि, यज्ञ और गृह या कृष्यादि कार्यों में जो निषिद्ध या विहित वार कहे गये हैं, वे भी दो प्रकार के हैं । एक स्थूलवार, दूसरा सूक्ष्मवार । स्थूलवार पूर्ण 24 घण्टे का होता है और सूक्ष्मवार एक – एक घण्टा का होता है । ऋषियों ने सूक्ष्मवार को क्षणवार कहा है और स्थूलवार से सूक्ष्मवार को प्रबल बताया है । इसीलिये एक स्थूलवार में 24 सूक्ष्म व्यतीत होते हैं । यदि स्थूलवार प्रशस्त हो और सूक्ष्मवार निषिद्ध हो तो उस समय में कार्य का परित्याग करना चाहिये । एवं यदि स्थूलवार निषिद्ध हो और सूक्ष्मवार प्रशस्त हो तो उस काल में कार्य का आरम्भ करने से स्थूलवार का दोष नहीं होता है । जैसे – शनिवार में पूर्व की यात्रा एवं क्षौर कर्म निषिद्ध है, इस स्थिति में स्थूल शनिवार में जब सूक्ष्म रवि की होरा में पूर्व यात्रा एवं बुध की होरा में क्षौर कर्म करने में दोष नहीं । एवं रविवार में पूर्व यात्रा विहित है किन्तु

स्थूल रविवार में यदि सूक्ष्म शनिवार पड़ जाये तो उस समय पूर्व की यात्रा स्थगित कर देनी चाहिये अन्यथा दिशाशूल का दोष होगा। इसीलिये महर्षियों ने स्वयं कहा है कि कार्यों में जो विहित या निषिद्ध वार कहे गये है, वह क्षणवार (एक घण्टे का सूक्ष्मवार)ही समझना चाहिये।

यथा – यस्य ग्रहस्य वारे यत् कर्म किंचित् प्रकीर्तितम्।
तत् तस्य कालहोरायां सर्वमेव विचिन्तयेत्॥

उपर्युक्त वारप्रवृत्ति समय से आरम्भ कर एक – एक घण्टा का एक – एक क्षणवार होता है। प्रथम घण्टा उसी वारेश का क्षणवार, आगे क्रमा से उससे छठे – छठे वारेश के क्षणवार होते हैं।

वारदोषापवाद - उपर्युक्त वारों की शुभाशुभता दिन – रात्रि के अनुसार भिन्न – भिन्न प्रभावोतदक होती हैं। यथा – रवि, गुरू और शुक्र वारों का प्रभाव रात्रि में तथा सोम, मंगल और शनैश्चर वारों का प्रभाव दिन में नगण्य होता है। परन्तु बुधवार अपना फल सर्वदा प्रदर्शित करता है –

न वारदोषा: प्रभवन्ति रात्रौ देवेज्यदैत्येज्यदिवाकराणाम्।
दिवा शशाङ्कार्कजभूसुतानां सर्वत्र निन्द्यो बुधवारदोष:॥

वारदोषपरिहार – वारों की प्रतिकूलता को प्रीति में परिवर्तित करने के लिये निम्नलिखित उपाय किये जायें – रविवार को ताम्बूल दान और भक्षण, सोम को चन्दन का दान और प्रयोग, मंगल को भोजन और पुष्पदान, बुध को बुध मन्त्र जप, गुरू को शिवाराधना और भोजन दान, शुक्र को श्वेत वस्त्र दान व धारण, तथा शनि को प्रात: तैलस्नान और विप्रसम्मान।

कालहोराचक्र

होरा	रवि	सोम	मंगल	बुध	गुरू	शुक्र	शनि
1	रवि	सोम	मंगल	बुध	गुरू	शुक्र	शनि
2	शुक्र	शनि	रवि	सोम	मंगल	बुध	गुरू
3	बुध	गुरू	शुक्र	शनि	रवि	सोम	मंगल
4	सोम	मंगल	बुध	गुरू	शुक्र	शनि	रवि
5	शनि	रवि	सोम	मंगल	बुध	गुरू	शुक्र
6	गुरू	शुक्र	शनि	रवि	सोम	मंगल	बुध
7	मंगल	बुध	गुरू	शुक्र	शनि	रवि	सोम
9	रवि	सोम	मंगल	बुध	गुरू	शुक्र	शनि
10	बुध	गुरू	शुक्र	शनि	रवि	सोम	मंगल
11	सोम	मंगल	बुध	गुरू	शुक्र	शनि	रवि
12	शनि	रवि	सोम	मंगल	बुध	गुरू	शुक्र
13	गुरू	शुक्र	शनि	रवि	सोम	मंगल	बुध
14	मंगल	बुध	गुरू	शुक्र	शनि	रवि	सोम
15	रवि	सोम	मंगल	बुध	गुरू	शुक्र	शनि

16	शुक्र	शनि	रवि	सोम	मंगल	बुध	गुरू
17	बुध	गुरू	शुक्र	शनि	रवि	सोम	मंगल
18	सोम	मंगल	बुध	गुरू	शुक्र	शनि	रवि
19	शनि	रवि	सोम	मंगल	बुध	गुरू	शुक्र
20	गुरू	शुक्र	शनि	रवि	सोम	मंगल	बुध
21	मंगल	बुध	गुरू	शुक्र	शनि	रवि	सोम
22	रवि	सोम	मंगल	बुध	गुरू	शुक्र	शनि
23	शुक्र	शनि	रवि	सोम	मंगल	बुध	गुरू
24	बुध	गुरू	शुक्र	शनि	रवि	सोम	मंगल

कालहोरा विचार – यदि किसी कार्य का सम्पादन मुहूर्त्तोदित वार में न बन पड़े तो उस कर्म को अन्यवार में भी विहित वार की कालहोरा में करना भी शुभद समझना चाहिये। एक क्षणवार सूर्योदय से 1- 1 घंटे का होता है। ये काल होरायें सूर्यादिवारों की होती हैं तथा प्रत्येक क्षणवार गत कालहोरेश से छठा होता है। यथा शुक्रवार को प्रथम होरा शुक्र की, द्वितीय होरा बुध की तथा तृतीय होरा सोम की होगी। प्रतिदिन के क्षण वार **काल होरा** चक्र में दिये गये हैं। पुनश्च, क्षण वार विशेष का यह भी प्रयोजन है कि जिस वार में जो कर्म शुभाशुभ कहा गया है, वही फल अन्य वार को उसकी कालहोरा में भी समझना चाहिये। यथा, भौमवार को क्षौर कर्म निषिद्ध है, अत: अन्य शुभ वार को भी भौमवार की काल होरा में क्षौर नहीं करवाना चाहिये। अपरं च प्राय: गुरूवार को वस्त्रधारण विहित है, अत: शनि मंगलवार को भी गुरूवार की कालहोरा में आवश्यक होने पर वस्त्रधारण शुभ होता है।

जन्म तिथि फल –

प्रतिपदा तिथि में जन्म लेने वाले जातक का फल – यदि किसी जातक का जन्म प्रतिपदा तिथि को हो तो वह बहुजन कुटुम्ब वाला, विद्या से युक्त, विवेकी, सुवर्ण – रत्नादि से युक्त, सुन्दर वेषवाला, मनोहर कान्तिशील, राजा से आदर रहित धन पाने वाला होगा।

द्वितीया तिथि में जन्म लेने वाले जातक का फल – जिस जातक का जन्म द्वितीया तिथि को हो तो वह दानी, दयावान, गुणी, उत्तम सम्पदा, कीर्तिवाला, सदैव आचार – विचार से चलनेवाला और प्रसन्न मूर्तिवाला होगा।

तृतीया तिथि में जन्म लेने वाले जातक का फल – यदि किसी जातक का जन्म तृतीया तिथि को हो तो मनुष्य उत्तम विद्या युक्त, बलवान शरीर, देश पर्यटन में प्रेमी, चतुर, राजकुल से धन पानेवाला, हास्य विलासयुक्त और अभिमानी होगा।

चतुर्थी तिथि में जन्म लेने वाले जातक का फल – चतुर्थी तिथि को जन्म लेने वाला जातक

सदा ऋणी, द्यूतप्रिय, साहसी, कृपण, चंचल चित्त व वाद – विवाद करने वाला होगा।

पंचमी तिथि में जन्म लेने वाले जातक का फल - पंचमी तिथि में जन्म लेने वाला जातक सुन्दर शरीर वाला, स्त्री – पुत्र मित्रयुक्त, वक्ता, दाता, दयावान व राज्यमान्य होगा।

षष्ठी तिथि में जन्म लेने वाला जातक का फल – षष्ठी तिथि में जन्म लेने वाला मनुष्य सत्यवादी, धनपुत्र – सम्पदायुक्त, तेजस्वी, चतुर, कीर्तिवान, श्रेष्ठ पुरूष व प्राणयुक्त अंगवाला होगा

सप्तमी तिथि में जन्म लेने वाला जातक का फल – सप्तमी तिथि में जन्म लेने वाला मनुष्य ज्ञानवान, गुणवान, विशाल नेत्र, देव व ब्राह्मण भक्त, पराया धन, शत्रुओं का नाश व कन्या - सन्ततिवाला होगा।

अष्टमी तिथि में जन्म लेने वाला जातक का फल – अष्टमी तिथि में जन्म लेने वाला मनुष्य चंचल स्वभाव, स्त्रियों का प्रेमी, नानाप्रकार की सम्पदा, पुत्र सुख, राजा से प्रतिष्ठापूर्वक विद्याधिकार पाने वाला होगा।

नवमी तिथि में जन्म लेने वाला जातक का फल – नवमी तिथि में जन्म लेने वाला जातक कठोरवचनी, बन्धुओं से दूर, पण्डितों का विरोधी, सदाचाररहित व निरादर पानेवाला होगा।

दशमी तिथि में जन्म लेने वाला जातक का फल – दशमी तिथि में जन्म लेने वाला जातक उदारचरित, विजयी, शास्त्र में निपुण, धार्मिक, ऐश्वर्यमान व अत्यन्त कामी होगा।

एकादशी तिथि में जन्म लेने वाला जातक का फल - एकादशी तिथि में जन्म लेने वाला जातक देव – ब्राह्मण भक्त, व्रत – दान का प्रेमी, निर्मल अन्त: करण, उत्तम कार्य करनेवाला होगा।

द्वादशी तिथि में जन्म लेने वाला जातक का फल – द्वादशी तिथि में जन्म लेने वाला जातक का व्यवहार चतुर, जल का प्रेमी, हास्य विलास युक्त, पुत्र पौत्रादि युक्त, अन्नदानी और राजाओं से धन प्राप्त करने वाला होगा।

त्रयोदशी तिथि में जन्म लेने वाला जातक का फल – त्रयोदशी तिथि में जन्म लेने वाला जातक सुन्दर स्वरूप, महाशूर व चतुर तमोगुणी स्वभाव वाला होगा।

चतुर्दशी तिथि में जन्म लेने वाला जातक का फल – चतुर्दशी तिथि में जन्म लेने वाला जातक मनुष्य कठोर, अति शूर, चतुर, आकुल चित्त, पराये उत्कर्ष की ईर्ष्यावाला, विरूद्ध वचन बोलने व दुर्बल शरीरवाला होगा।

पूर्णिमा तिथि में जन्म लेने वाला जातक का फल – पूर्णिमा तिथि में जन्म लेने वाला जातक सुन्दर शरीर, न्याय से धन प्राप्त करनेवाला, प्रसन्नचित्त, स्त्रियों से युक्त, हास्य विलासी, दयावान , पुण्यात्मा होगा।

अमावस्या तिथि में जन्म लेने वाला जातक का फल – अमावस्या तिथि में जन्म लेने वाला जातक मनुष्य मातृ – पितृ भक्त, बुद्धिमान, शान्त स्वभाव, कष्ठ से धन प्राप्त करने वाला,

सम्मानयुक्त, प्रवासप्रिय, कान्तिरहित, हीन व दुर्बल अंग वाला होगा।

वार विष घटी –

रव्यादि सात वारों में अधोलिखित चक्र में निर्दिष्ट घटी के पश्चात् 4 – 4 घटी विष संज्ञक होती हैं, जो शुभ कर्मों में अनिष्टप्रद हैं। इनका परिहार तिथि विष घटी के सदृश ही जानना चाहिये।

वार	**रवि**	**सोम**	**मंगल**	**बुध**	**गुरू**	**शुक्र**	**शनि**
घटी	20	2	12	10	7	5	25

वार विहित कर्म समय –

दिनमान को 3 से विभाजित करने पर प्राप्त लब्धि के बराबर पूर्वाह्न, मध्याह्न और अपराह्न ये तीन भाग जानना चाहिये। पूर्वाह्न में देवपूजन, विभिन्न संस्कार तथा यज्ञादि मंगल कर्म मध्याह्न में अतिथि सत्कार, पंचायत निमन्त्रण तथा मनुष्यों के व्यावहारिक कार्य तथा अपराह्न में श्राद्धादि समस्त पैतृक कृत्य प्रशस्त कहे गये हैं।

कालवेला –

रव्यादि वारों को दिन में यथानिर्दिष्ट प्रहरार्द्ध कालवेला तथा रात्रि में कुछ प्रहरार्द्ध विशेष कालरात्रि कहलाते हैं। इन यामार्द्धों में क्रियमाण मंगलवार जनक कार्य नष्ट हो जाते हैं। ये कालवेला और कालरात्रि बोधक प्रहरार्द्ध निम्नलिखित हैं –

वारसप्तक	रवि	सोम	मंगल	बुध	गुरू	शुक्र	शनि
कालवेला	5	2	6	3	7	4	1,8
कालरात्रि	6	4	2	7	5	3	1,8

कालवेलादि में यात्रा करने से प्रवासी का मरण, विवाह से वैधव्य तथा यज्ञोपवीत संस्कार करने से ब्रह्महत्या लगती है –

यात्रायां मरणं काले वैधव्यं पाणिपीडने।

व्रते ब्रह्मवध: प्रोजेक्ट सर्वकर्मसु तं त्यजेत्॥

वारों में त्याज्य मुहूर्त्त – तिथि प्रशाखोक्त मुहूर्त्तों में से सूर्यादि सप्तवारों में त्याज्य मुहूर्त्त -

वार	रवि	सोम	मंगल	बुध	गुरू	शुक्र	शनि
त्याज्य मुहूर्त्त	अर्यमा	ब्रह्मा, राक्षस	पितर, अग्नि	अभिजित्	राक्षस, जल	पितर, ब्रह्मा	शिव, सर्प

यामार्द्ध विचार –

दिनमान का अष्टमांश यामार्द्ध कहलाता है। वार – व्यवस्था के अनुसार विभिन्न त्याज्य यामार्द्ध निम्न चक्र से समझा जा सकता है –

वार	**रवि**	**सोम**	**मंगल**	**बुध**	**गुरू**	**शुक्र**	**शनि**
यामार्ध	**4,5**	**2,7**	**2,6**	**3,5**	**7,8**	**3,4**	**1,6,8**

वार वेला –

उपरोक्त त्याज्य यामार्द्धो में रवि को चतुर्थ, सोम को सप्तम, मंगल को द्वितीय, बुध को पंचम, गुरू को अष्टम, शुक्र को तृतीय, एवं शनि को षष्ठ यामार्द्ध वारवेला संज्ञक है । कृतमुनियमशरमंगलरामर्त्तुषु भास्करादि यामार्द्धे। प्रभवति हि वारवेला न शुभाशुभकार्यकरणाय। कुलिकादि मुहूर्त्त – वर्त्तमान वार से शनि, बुध, गुरू और मंगलवार तक गणना करने पर प्राप्त चार प्रकार के विविध अंकों को दुगुना कने से प्राप्त संख्या परिमित यामार्द्ध क्रमश: कुलिक, कालवेला, यमघण्ट, और कण्टक होते हैं। यथा रविवार से गुरूवार = 5 × 2 = 10 अर्थात् रविवार को दसवां अर्द्धयाम यमघण्ट होगा। स्पष्टता के लिये चक्र द्वारा समझा सकता है –

वार	रवि	सोम	मंगल	बुध	गुरू	शुक्र	शनि
कुलिक	14	12	10	8	6	4	2
कालवेला	8	6	4	2	14	12	10
यमघण्ट	10	8	6	4	2	14	12
कण्टक	6	4	2	14	12	10	8

ये यामार्द्ध दुष्टफलकारक हैं। अत: इनका सम्पूर्ण समय त्याग करना तो श्रेयस्कर ही है परन्तु असम्भव होने पर उत्तरार्द्ध का तो अवश्य परित्याग कर देना चाहिये।

जन्मवार चिन्तन - जन्मवार को कार्याकार्य निर्णय के अनुसार इस दिन बीजवपन, विवाह, राज्याभिषेक, नवोढा स्त्री से प्रथम सम्भोग, गन्धादि सुवासित द्रव्यों का उबटन लगाना विहित कहा गया है तथा यात्रा और क्षौरकर्म कदापि कर्त्तव्य नहीं है। यथा –

कृषिवपनविवाहा: पट्टबद्धाभिषेक: प्रथमयुवतिसेवा गन्ध माल्यानुलेप:।
इति वदति समस्तं जन्मवारे प्रशस्तं पथि गमनविरूद्धं क्षौरकर्मातिरूद्धम्॥

3.5 सारांश: –

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि **'दर्श: सूर्येन्दु संङ्ग:'** के आधार पर अमावस्या तिथि को जब सूर्य और चन्द्रमा का समागम होता है, उसके पश्चात् दोनों ग्रह उत्तरोत्तर दूर होते जाते हैं। उस दिन चन्द्रमा 0^0 से प्रारम्भ होकर जब 12^0 तक जाता है तब तक शुक्ल – प्रतिपदा का अस्तित्व रहता है। इसी प्रकार प्राय: 12 – 12 अंशों के परिमाण से अग्रिम तिथियॉ बनती रहती है। अन्ततोगत्वा, पूर्णिमा को सूर्य – चन्द्रमा में 180^0 की दूरी हो जाने पर चन्द्रमा का मण्डल पूर्ण प्रकाशमान दिखलाई देता है। शुक्लपक्ष की समाप्ति और कृष्णपक्ष के आरम्भ के साथ चन्द्रमा दिन – प्रतिदिन क्षीणता को प्राप्त होने लगता है। प्रतिदिन 12 अंश के क्रमिक – ह्रास के साथ – साथ कृष्ण प्रतिपदादि तिथियों का भी आवागमन क्रमश: चलता रहता है। परिणामस्वरूप चन्द्रमा 0^0 पर पहुॅच जाता है और अमावस्या की प्रवृत्ति के साथ कृष्णपक्ष भी इति श्री को प्राप्त हो जाता है। चन्द्रमा का यह परिभ्रमण ही षोडश तिथियों की विद्यमानता का कारण – स्वरूप है।

ज्योतिष शास्त्र में तिथि एवं वार एक महत्वपूर्ण इकाई हैं, आरम्भ में इनका ज्ञान परमावश्यक है। इनके ज्ञानाभाव में ज्योतिष के तीनों स्कन्धों को ठीक – ठीक समझा नहीं जा सकता। ज्योतिष के मूलभुत ज्ञान में तिथि एवं वार भी एक विशेषांक है।

3.6 पारिभाषिक शब्दावली

तिथि – प्रतिपदा से लेकर अमावस्या वा पूर्णिमा तक तिथियॉ 15 होती है।

वार- सूर्यादि शनिपर्यन्त सप्त वार होते है।

मुहूर्त्त – मुहूर्त्त दो प्रकार के होते है – शुभ मुहूर्त्त एवं अशुभ मुहूर्त्त

पक्ष – पक्ष दो होते है – पहला शुक्ल तथा दूसरा कृष्ण

मास - चैत्रादि फाल्गुन पर्यन्त 12 मास होते है।

3.7 बोध प्रश्नों के उत्तर –

1. ख

2. ग

3. ग

4. ख

5. ख

3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची –

1. वृहज्ज्योतिसार

2. मुहूर्त्तपारिजात

3. वृहज्जातक

4. ज्योतिषसर्वस्व

5. होराशास्त्रम्

3.9 निबन्धात्मक प्रश्न -

1. तिथि का परिचय देते हुए विस्तार से उसका उल्लेख कीजिये।

2. वार से आप क्या समझते है। वारों में कृत्य शुभाशुभ कर्मों की व्याख्या कीजिये।

इकाई – 4 नक्षत्र विचार

इकाई की संरचना

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 नक्षत्र विचार
4.4 नक्षत्रों का स्वरूप
4.4.1 नक्षत्रों के विभिन्न संज्ञायें
4.4.2 नक्षत्रों में उत्पन्न जातक विचार
बोध प्रश्न
4.5 सारांशः
4.6 पारिभाषिक शब्दावली
4.7 बोधप्रश्नों के उत्तर
4.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना -

प्रस्तुत इकाई प्रथम खण्ड **'मुहूर्त्त स्कन्ध'** के **'नक्षत्र विचार'** शीर्षक से संबंधित है। नक्षत्र ज्योतिष की अभिन्न इकाई है। ज्योतिष शास्त्र का अधिकाधिक भाग नक्षत्रों पर ही आधारित है। वृहदाकाश में अगण्य तारिकायें दृष्टिगोचर होती हैं, उनके प्रत्येक समूह को **'नक्षत्र'** कहते है । **'तारकानां समूह: नक्षत्र: कथ्यते'** ।

इससे पूर्व की इकाईयों में आपने तिथि – वार विवेचन का अध्ययन किया हैं तथा उससे सम्बन्धित अनेक विषयों का ज्ञान कर लिया है। यहॅा हम इस इकाई में नक्षत्र विचार से सम्बन्धित विषयों का अध्ययन विस्तार पूर्वक करेंगे।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप-

1. नक्षत्र को परिभाषित करने में समर्थ हो सकेंगे।
2. नक्षत्र के महत्त्व को समझा सकेंगे।
3. नक्षत्र के प्रकार को जान लेंगे।
4. नक्षत्र का स्वरूप वर्णन करने में समर्थ होंगे।
5. नक्षत्र के सम्बन्ध को निरूपित करने में समर्थ होंगे।

4.3 नक्षत्र विचार –

न क्षरतीति **नक्षत्रम्**। भचक्र का 27 वॉं भाग अर्थात् 13^0।20 अंशादि के बराबर एक नक्षत्र होता है। ज्यौतिषशास्त्र के अनुसार नक्षत्रों की संख्या 27 मानी गई है। प्रत्येक नक्षत्र के चार समान भाग (1 अंश = 3^0।20) होते है। ये भाग चरण या पाद कहलाते हैं। एक राशि में 9 चरण या सवा दो नक्षत्र होते है।

अश्विनी भरणी चैव कृत्तिका रोहिणी मृग:।
आर्द्रा पुनर्वसु: पुष्यस्तत: श्लेषा मघा तथा ।।
पूर्वाफाल्गुनिका तस्मादुत्तराफाल्गुनी तत:।
हस्तश्चित्रा तथा स्वाती विशाखा तदनन्तरम् ।।
अनुराधा ततो ज्येष्ठा तथा मूलं निगद्यते।
पूर्वाषाढोत्तराषाढा अभिजिच्छ्रवणस्तत: ।।
धनिष्ठा शतताराख्यं पूर्वाभाद्रपदा तत:।
उत्तराभाद्रपाच्चैव रेवत्येतानि भानि च ।।

अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा, मघा, पू0फा0, उ0फा0, हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पू0षा0, उ0षा0, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, पू0भा0, उ0भा0, रेवती। ये 27 नक्षत्र कहे गये है।

विशेष – उत्तराषाढा का चतुर्थ चरण और श्रवण के आरम्भ की 4 घटी अभिजित् नाम से 28 वॉ नक्षत्र माना गया है। जिसका कहीं - कहीं कार्य विशेष में ही प्रयोजन होता है।

नक्षत्रों के स्वामी –

नासत्याऽन्तक वह्निधातृ शशभूद्रुद्राऽदितीज्योरगा।
ऋक्षेशा: पितरो भगोऽर्यमरवी त्वष्टाऽऽशुगश्च क्रमात्॥
शक्राग्नी खलु मित्र इन्द्र निऋती नीराणि विश्वे विधि।
गोंविन्दो वसु तोयपाऽजचरणाऽहिर्बुध्न्य पूषाभिधा:॥

नक्षत्र नाम	**स्वामी**
अश्विनी	अश्विनी कुमार
भरणी	यम
कृत्तिका	अग्नि
रोहिणी	ब्रह्मा
मृगशिरा	शशी
आर्द्रा	शिव
पुनर्वसु	अदिति
पुष्य	वृहस्पति
आश्लेषा	सर्प
मघा	पितर
पू0फा0	भग
उ0फा0	अर्यमा (सूर्य)
हस्त	सूर्य
चित्रा	त्वष्टा
स्वाती	वायु
विशाखा	इन्द्र
अनुराधा	मित्र
ज्येष्ठा	इन्द्र
मूल	राक्षस

पू0षा0	जल
उ0षा0	विश्वदेव
श्रवण	विष्णु
धनिष्ठा	वसु
शतभिषा	वरूण
पू0भा0	सूर्य
उ0भा0	अहिर्बुघ्न्य (महादेव)
रेवती	पूषा

शुभाशुभ नक्षत्र –

रोहिण्यश्विमृगा: पुष्यो हस्तचित्रोत्तरात्रयम् ।
रेवती श्रवणश्चैव धनिष्ठा च पुनर्वसु: ।।
अनुराधा तथा स्वाती शुभान्येतानि भानि च ।
सर्वाणि शुभकार्याणि सिद्धयन्त्येषु च भेषु च ।।
पूर्वात्रयं विशाखा च ज्येष्ठार्द्रा मूलमेव च ।
शततराभिधैष्वेव कृत्यं साधारणं स्मृतम् ।।
भरणी कृत्तिका चैव मघा आश्लेषा तथैव च ।
अत्युग्रं दुष्टकार्यं यत् प्रोक्तमेषु विधीयते ।।

रोहिणी, अिश्वनी, मृगशिरा, पुष्य, हस्त, चित्रा, तीनों उत्तरा, रेवती, श्रवण, धनिष्ठा, पुनर्वसु, अनुराधा, और स्वाती ये नक्षत्र शुभ कहे गये हैं, इनमें शुभ कर्म प्रशस्त हैं।

तीनों पूर्वा, विशाखा, ज्येष्ठा, आर्द्रा, मूल तथा शततारा इनमें साधारण कृत्य शुभ हैं।

भरणी, कृत्तिका, मघा, आश्लेषा, इनमें अति उग्र या दुष्टकर्म सिद्ध होते हैं।

4.4 नक्षत्रों के स्वरूप –

हर्याननाभं च वरांगरूपं क्षुरोपमं ज्योतिरन:समाभम् ।
कुरंगकाभं मणिना सदृक्षं निकेताकारमथेषुरूपम् ।।
रथांगशालाशयनोपमानि शय्यासमं दो:प्रतिमं भमुक्तं ।
मुक्तात्मकं विद्रुमतोरणाभे मणिश्रवोवेष्टनतुल्यरूपे ।।
सकोपकण्ठीरवविक्रमप्रभं तल्पाकृतीभस्यविलासवत्स्थितम् ।
श्रृगांटकव्यक्ति च तार्क्षयकेतुभं त्रिविक्रमाभं च मृदंगसन्निभम् ।।
ज्योति: शतांगांगसमानरूपं ततोऽन्यदृक्षं यमलद्वयाभम् ।
शय्यासवर्णं मुरजप्रकारमितीह तारापटलस्वरूपम् ।।

नक्षत्र नाम	**स्वरूप**
अश्विनी	घोड़े का मुख
भरणी	भग (योनि)
कृत्तिका	क्षुर
रोहिणी	शकट
मृगशिरा	हिरण का शिर
आर्द्रा	मणि
पुनर्वसु	गृह
पुष्य	बाण
आश्लेषा	चक्र
मघा	घर
पू0 फा0	मचान
उ0फा0	शय्या
हस्त	हाथ
चित्रा	मोती
स्वाती	मूँगा
विशाखा	तोरण
अनुराधा	मणि
ज्येष्ठा	कुण्डल
मूल	सिंहपुच्छ
पू0षा0	हाथीदाँत
उ0षा0	मचान
अभिजित	त्रिकोण
श्रवण	विष्णुपाद
धनिष्ठा	मृदंग
शतभिषा	वृत्त
पू0भा0	मंच
उ0भा0	यमला
रेवती	मृदंगाकार

नक्षत्रों के तारा

हुताशनाग्न्यंगशराग्निभूमयो युगाग्निवाणाक्षयमा यमेषवः ।
धरेन्दुवेदार्णवरामशंभवो वार्यग्निरामाब्धिशताक्षिदृग्रदाः ॥

नक्षत्र नाम	**तारा**
अश्विनी	3
भरणी	3
कृत्तिका	6
रोहिणी	5
मृगशिरा	3
आर्द्रा	1
पुनर्वसु	4
पुष्य	3
आश्लेषा	5
मघा	5
पू0 फा0	2
उ0फा0	2
हस्त	5
चित्रा	1
स्वाती	1
विशाखा	4
अनुराधा	4
ज्येष्ठा	3
मूल	11
पू0षा0	3
उ0षा0	2
अभिजित	3
श्रवण	3
धनिष्ठा	4
शतभिषा	100
पू0भा0	2
उ0भा0	2

रेवती 32

इन नक्षत्रों में गुण के अनुसार 7 भेद हैं – उनके नाम है - 1. ध्रुव 2. चर 3. उग्र 4. मिश्र 5. लघु 6. मृदु **7. तीक्ष्ण संज्ञक नक्षत्र**

ध्रुवनक्षत्र और उनमें कृत्य कर्म -

उत्तरात्रय – रोहिण्यो भास्करश्च ध्रुवं स्थिरम् ।

तत्र स्थिरं बीजगेहशान्त्यारामादिसिद्धये ।।

तीनों उत्तरा, रोहिणी और रविवार ये ध्रुव संज्ञक और स्थिर संज्ञक हैं। इनमें स्थायी गृहारम्भ विवाह, उपनयन, कृषि, शान्ति और वाटिका लगाना आदि कार्य शुभ होते हैं।

चरनक्षत्र और उनमें कृत्य कर्म –

स्वात्यादित्ये श्रुतेस्त्रीतिण चन्द्रश्चापि चरं चलम् ।

तस्मिन् गजादिकारोहो वाटिकागमनादिकम् ।।

स्वाती, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शततारा तथा ये चर और चल संज्ञक हैं, इनमें यात्रा, बागीचा गमन, हाथी आदि सवारी पर चढ़ना, नृत्य गीतादि अल्पकालीन सम्पन्न होने योग्य सभी कार्य सिद्ध होते है

उग्र नक्षत्र और उनमें कृत्य कर्म –

पूर्वात्रयं याम्यमघे उग्रं क्रूरं कुजस्तथा ।

तस्मिन् घाताग्निशाठयानि विषशस्त्रादि सिद्धयति ।।

तीनों पूर्वा, भरणी, मघा और मंगलवार उग्र और क्रूर संज्ञक हैं, इनमें घात, अग्नि, शठता, विष, शस्त्र, मारण आदि क्रूरकर्म की सिद्धि होती है।

मिश्र नक्षत्र और उनमें कृत्यकर्म –

विशाखाग्नेयभे सौम्ये मिश्रं साधारणं स्मृतम् ।

तत्राऽग्निकार्यं मिश्रं च वृषोत्सर्गादि सिद्धयति ।।

विशाखा, कृत्तिका, और बुधवार ये मिश्र और साधारण संज्ञक हैं, इनमें अग्निकार्य, मिश्रकार्य और वृषोत्सर्गादिकार्य सिद्ध होते हैं।

लघु नक्षत्र और उनमें कृत्य कर्म –

हस्ताश्वि पुष्याऽभिजित: क्षिप्रं लघु गुरूस्तथा ।

तस्मिन् पुण्यरतिज्ञानं भूषाशिल्प कलादिकम् ।।

हस्त, अश्विनी, पुष्य, अभिजित् और वृहस्पतिवार ये लघु और क्षिप्र संज्ञक हैं, इनमें यात्रा, बाजार लगाना, मंगलकार्य, वस्त्र, भूषण, रति, शिल्प कला कार्य सिद्ध होते हैं।

मृदु नक्षत्र और उनमें कृत्य कर्म –

मृगान्त्यचित्रामित्रर्क्षं मृदु मैत्रं भृगुस्तथा ।

तत्र गीताम्बरक्रीडा मित्रकार्यं विभूषणम् ।।

मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा और शुक्रवार ये मृदु तथा मैत्र संज्ञक हैं, इनमें समस्त शुभकार्य, गीत, नृत्य, वस्त्रधारण, क्रीडा, मित्रकार्य शुभ हैं।

तीक्ष्ण नक्षत्र और उनके कृत्य -

मूलेन्द्रार्द्राहिभं सौरिस्तीक्ष्णं दारूणसंज्ञकम् ।

तत्राऽभिचारघातोग्रभेदाः पशुदमादिकम् ।।

मूल, ज्येष्ठा, आर्द्रा, आश्लेषा और शनिवार ये तीक्ष्ण और दारूण संज्ञक हैं, इनमें अभिचार (मारण, मोहन, भूत – बैताल की सिद्धि), घात, पापकृत्य, मित्रों में भेद डालना तथा पशु का दमन करना इत्यादि क्रूरकर्म सिद्ध होते हैं।

अध, उर्ध्व और तिर्यङ्मुख नक्षत्र –

मूलाहिमिश्रोग्रमधोमुखं भवेदूर्ध्वास्यमार्द्रेज्यहरित्रयं ध्रुवम् ।

तिर्यङ्मुखं मैत्रकरानिलादिज्येष्ठाश्विभानीदृशकृत्यमेषु सत् ।।

मूल, आश्लेषा, विशाखा, कृत्तिका, तीनों पूर्वा, भरणी और मघा ये अधोमुख नक्षत्र हैं। आर्द्रा, पुष्य, श्रवण, धनिष्ठा, शततारा, तीनों उत्तरा और रोहिणी ये उर्ध्वमुख तथा अनुराधा, हस्त, स्वाती, पुनर्वसु, ज्येष्ठा एवं अश्विनी ये तिर्यङ्मुख नक्षत्र हैं। जैसा जो नक्षत्र होता है उसमें वैसा कार्य शुभ होता है।

जैसे - अधोमुख में पृथ्वी सम्बन्धी (खेती करना, कूप खोदना, तालाब निर्माण करना इत्यादि) उर्ध्वमुख में मकान आदि का आरम्भ करना तथा तिर्यङ्मुख में बॉंध बंधवाना, गमन करना आदि कार्य शुभ होते हैं।

विशेष - तिथि और वार के समान ही नक्षत्रों के भी स्थूल व सूक्ष्म दो भेद होते हैं। प्रत्येक दिन सूर्योदय से 2,2 घटी का एक – एक क्षण सूक्ष्म नक्षत्र होता है। अत: अहोरात्र में 30 सूक्ष्म नक्षत्र बीतते हैं। यथा –

दिन में – अहोरात्र के पूर्वार्ध में 1 आर्द्रा, 2 आश्लेषा, 3 अनुराधा, 4 मघा, 5 धनिष्ठा, 6. पूर्वाषाढा, 7. उत्तराषाढा, 8. अभिजित् , 9. रोहिणी, 10. ज्येष्ठा, 11. विशाखा, 12. मूल, 13 शततारा, 14. उत्तराफाल्गुनी, 15 पूर्वाफाल्गुनी।

तदनन्तर – **रात्रि में** – अहोरात्र के उत्तरार्ध में 1 आर्द्रा, 2 पूर्वाभाद्रपद, 3 उत्तराभाद्रपद, 4 रेवती, 5 अश्विनी, 6 भरणी, 7 कृत्तिका, 8 रोहिणी, 9 मृगशिरा, 10 पुनर्वसु, 11 पुष्य, 12 श्रवण, 13 हस्त, 14 चित्रा, 15 स्वाती।

स्थूल नक्षत्र निषिद्ध भी हो तो आवश्यक में विहित क्षण – नक्षत्रों में कार्य की सिद्धि होती है।

अभ्यास प्रश्न –

1. नक्षत्रों की संख्या है।

क. 25 ख. 26 ग. 27 घ. 28

2. एक नक्षत्र का मान होता है।

क. 13 अंश ख. 15 अंश ग. 16 अंश 20 कला घ. 13 अंश 20 कला

3. हस्त नक्षत्र का स्वामी कौन है।

क. पितर ख . वृहस्पति ग. सूर्य घ. यम

4. शतभिषा नक्षत्र के ताराओं की संख्या है।

क. 20 ख. 3 ग. 100 घ. 4

5. पुष्य नक्षत्र की आकृति का स्वरूप है।

क. कुण्डल ख. चक्र ग. हस्त घ. बाण

4.4.1 नक्षत्रों के विभिन्न संज्ञायें -

अन्धाक्ष नक्षत्र – रोहिणी, पुष्य, उत्तराफाल्गुनी, विशाखा, पूर्वाषाढ़ा, धनिष्ठा और रेवती आदि अन्ध नक्षत्र हैं। इनमें विनष्ट अथवा खोइ हुई वस्तु पूर्वदिशा को जाती है और उसकी पुन: प्राप्ति शीघ्र हो जाती है।

मध्याक्ष नक्षत्र – भरणी, आर्द्रा, मघा, चित्रा, ज्येष्ठा, अभिजित् और पूर्वाभाद्रपद नक्षत्र मध्याक्ष बोधक हैं। इस नक्षत्र सप्तक में हरण की हुई वस्तु पश्चिम दिशा की ओर अतिदूर चली जाती है। वस्तु का पता भी लग जाता है, परन्तु हस्तगत नहीं होती।

मन्दाक्ष नक्षत्र – अश्विनी, मृगशिरा, आश्लेषा, हस्त, अनुराधा, उत्तराषाढ़ा और शतभिषा ये सात नक्षत्र मन्दाक्ष श्रेणी में सम्मिलित किये गये हैं। इन नक्षत्रों में कोई वस्तु चोरी गई हो तो वह दक्षिण दिशा की तरफ चली जाती है तथा खोजने के लिये अतिशय प्रयत्न करने पर अन्ततोगत्वा वह प्राप्त हो जाती है।

सुलोचन नक्षत्र - इस नक्षत्र सप्तक में कृत्तिका, पुनर्वसु , पूर्वाफाल्गुनी, स्वाती, मूल, श्रवण और उत्तराभाद्रपदादि नक्षत्रों को समझना चाहिये। इनमें बहिर्गत वस्तु उत्तरदिशा में जाती है। परन्तु उसका न तो पता लगता है और न प्राप्त ही होती है।

पंचक विचार - धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद और रेवती, पॉच नक्षत्रों का समूह ज्योतिष शास्त्र में पंचक नक्षत्र के नाम से जाना जाता है। प्रकारान्तरेण इस नक्षत्रपंचक का भभोग कुम्भ और मीन राशि गत चन्द्रमा के भोग्य काल परिमित भी जाना जाता है। यह पंचक कई कर्मों में त्याज्य है। मुख्यत: इसमें इच्छा पूर्ति हेतु प्रयत्न, काष्ठछेदन, दक्षिणदिशा की यात्रा, प्रेतकर्म, स्तम्भरोपण, तॉबा – पीतल तृण – काष्ठादि का संचय, गृहारम्भ, तथा खाट एवं बैठक की गद्दियाँ आदि का निर्माण व उपयोग सर्वथा त्याज्य है। पंचक के प्रति ऐसा कथन है कि इसके भोग्यकाल में समस्त किये हुये कार्य की पॉच वार पुनरावृत्ति होती हैं। अर्थात् नक्षत्र पंचक में किसी के पुत्रोत्पत्ति

हो तो पॉच पुत्र और होते हैं अथवा घर में मृत्यु हो तो पॉच मरण और होने की पूर्ण सम्भावना बनती है। पंचक में मरण स्थिति हो जाने पर, यद्यपि प्रेत – कर्म वर्जित होने पर भी शव का दाह तो आवश्यक है। अत: अन्त्येष्टि पद्धतियों में वर्णित यथोचित विधान से दाहादि अंतिम संस्कार सम्पन्न करना चाहिये।

मास शून्य नक्षत्र - शून्य नक्षत्र किसी कर्म विशेष में शुभ होने पर भी त्याज्य है। अत: निम्न चक्र में चैत्रादि द्वादश मासों के विभिन्न शून्य नक्षत्र दिये गये हैं। मास शून्य नक्षत्रों के दोष का प्रतिप्रसव तिथि प्रशाखा में दर्शनीय है।

मास शून्य नक्षत्र –

मास	चै.	वै.	ज्ये. आ.	श्रा.	भा. आ.	का.	मार्ग.	पौष.	माघ.	फा.
शून्य	अश्विन.	चि.	पुष्य.पू.फा.	उ.षा.	शत.पू.भा.	कृत्ति.	चि.	आ.	श्रव.	भर.
नक्षत्र										

नक्षत्र सम्राट पुष्य –

यदि आकाशीय नक्षत्रों के समूह में पुष्य नक्षत्र को सर्वप्रमुख कहा जाये तो इसमें अतिशयोक्ति नही होगी। कारण स्वरूप, अश्विन्यादि 28 नक्षत्रों में एक सर्वशक्तिमान नक्षत्र पुष्य ही हैं, जिसके लिये विशाल ज्यौतिषशास्त्र के किसी भी महान् दोष को खदेड़ देना बॉये हाथ का खेल है। चन्द्र तारा योगिनी तिथ्यादि पंचांग ग्रहादि जनित, अनिष्ट से अनिष्ट योगों को पुष्य सहज ही अकर्मण्य कर देता है। मुहूर्त्त के लिये तो पुष्य रामबाण के रूप में जाना जाता है -

सिंहो यथा सर्वचतुष्पदानां तथैव पुष्यो बलवानुडूनाम्
चन्द्रे विरूद्धेऽप्यथ गोचरे वा सिद्धयन्ति कार्याणि कृतानि पुष्ये॥
पापैर्विद्धे युते हीने चन्द्रताराबलेऽपि च।
पुष्ये सिद्धयन्ति सर्वाणि कार्याणि मंगलानि च। (मुहूर्तगणपति)

अपरं च -

ग्रहेण विद्धोप्यशुभान्वितोऽपि विलोमतारोऽपि विलोमगोऽपि।
करोत्यवश्यं सकलार्थिसद्धिं विहाय पाणिग्रहमेव पुष्य:॥

तात्पर्य यह हैं कि पुष्य नक्षत्र दोषकारक शक्ति को नि:स्तेज कर सकता है किन्तु पुष्य के द्वारा किया हुआ कार्य लोह की लकीर है।

तस्मादुक्तम् –

पुष्य: परकृतं हन्ति न तु पुष्यकृतं पर:।

दोषं यद्यष्टमोऽपीन्दुः पुष्यः सर्वार्थसाधकः ॥

अष्टम चन्द्रमा को भी पुष्य अकर्मान्वित कर देता है।

परं च पुष्य की बहुमुखी एवं अलौकिक प्रतिभा में एक ही व्यवधान है। ब्रह्मा ने पुष्य को ऐसा प्रगल्भ जानकर अपनी तनुजा शारदा का विवाह पुष्यनक्षत्र और गुरूवार की सन्निधी में करने का निश्चय किया था। तदवसर पर पुत्री के यौवन से झिलमिलाते सौन्दर्य के द्वारा आकर्षित ब्रह्मा के रोमकूपों से अंगुष्ठ परिमित देहधारी, साठ हजार बालखिल्य ऋषिव्यूह का प्रादूर्भाव हुआ । ये ऋषि उच्च कोटि के तपस्वी हुये। परन्तु इस घटना से कुपित होकर ब्रह्मा ने पुष्य नक्षत्र को शाप देकर संसार में पाणिग्रहण संस्कार और उसके प्रारम्भिक कार्यों में उसे अकर्मण्य कर दिया है। तदर्थ कालिदास ने कहा है –

॥ **समस्तकर्मोचितकालपुष्यो दूष्यो विवाहे मदमूर्च्छितत्वात्।**

सहस्रपत्रप्रसवेन तस्मादिहापि मुक्तौ भुवि लोकसंघैः ॥

विशेष – रविवार को पुष्य का संयोग यन्त्र – मन्त्र तन्त्र की सिद्धि और औषधि प्रयोग के लिये विशेष फलप्रद है।

जन्म नक्षत्र विचार – विभिन्न कर्मों के लिये मुहूर्त्त शोधन में जन्म नक्षत्र की ग्राह्या – ग्राह्यता भी यदा कदा भ्रामक हो जाती है। ज्ञातव्य है कि अन्नप्राशन, उपनयन, चूड़ाकरण, राज्याभिषेक आदि में यह प्रशस्त तथा यात्रा, सीमन्तोन्नयन तथा विवाह में अनिष्ट होता है, ऐसा वसिष्ठ कहते है – बालान्नभुक्तौ **व्रतबन्धनेऽपि राज्याभिषेके खलु जन्मधिष्ण्यम्।**

शुभंत्वनिष्टं सततं विवाहसीमन्तयात्रादिषु मंगलेषु ॥

परन्तु अन्यत्र केवल चूड़ाकरण क्षौर, औषध सेवन, विवाद, यात्रा और कर्णवेध में ही जन्मर्क्ष का निषेध कहते है –

जन्मनक्षत्रगश्चन्द्रः प्रशस्तः सर्वकर्मसु।

क्षौरभैषज्यवादाध्वकर्त्तनेषु विवर्जयत् ॥

पुनश्च जन्म नक्षत्र से 25 वॉ तथा 27 वॉ नक्षत्र शुभ कार्यों में त्याज्य है। उक्तं च –

सप्तविंश च नक्षत्रं पंचविंशं च शोभने।

वर्जनीये प्रयत्नेन यात्रायां तु विशेषतः ॥ (मुहूर्त्तदीपिका)

आकाश में नक्षत्र दर्शन – कृत्तिका, रोहिणी, पुष्य, चित्रा, आश्लेषा, रेवती, शतभिषा, धनिष्ठा व श्रवण ये नौ नक्षत्र आकाश के मध्य में दिखते है।

अश्विनी, भरणी, स्वाती, विशाखा, पूर्वा फाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, मघा, पूर्वा भाद्रपद, व उत्तराभाद्रपद आकाश में उत्तर की ओर व शेष नक्षत्र पुनर्वसु, मृगशिरा, आर्द्रा, ज्येष्ठा, अनुराधा, हस्त, पूर्वाषाढ़ा, उत्तराषाढ़ा, मूल आकाश में दक्षिण क ओर दिखलाई पड़ते है।

राशि नक्षत्र विभाग - सभी 12 राशियों को 27 नक्षत्रों में बॉटा गया है। एक नक्षत्र का मान 12 ×

$30^0 \div 27 = 13^0$ .20 अंशादि होता है। एक नक्षत्र में चार – चार चरण होने से एक चरण का मान 13^0 .20 ÷ 4 = 3^0 .20' अंशादि सिद्ध है। अत: एक राशि में सवा दो नक्षत्र या 9 चरण समाहित होते हैं।

प्रत्येक नक्षत्र चरण का शतपद चक्र के आधार पर एक – एक अक्षर नियत है। जिस नक्षत्र चरण में जन्म हो उसी नक्षत्र के अक्षर से जातक का नाम रखा जाता है। यह जन्म नाम कहलाता है। आजकल जन्म नाम से अतिरिक्त बोलता नाम भी स्वेच्छा से रखा जाता है। नक्षत्र चरण का अक्षर विन्यास इस प्रकार माना जाता है।

नक्षत्राक्षर ज्ञान –

अश्विनी – चू चे चो ला

भरणी – ली लू ले लो

कृत्तिका – अ इ उ ए

रोहिणी – ओ वा वि वू

मृगशिरा – वे वो का की

आर्द्रा – कु घ ड. छ

पुनर्वसु – के को हा ही

पुष्य – हू हे हो डा

आश्लेषा – डी डू डे डो

मघा – मा मी मू मे

पू0 फा0 – मो टा टी टू

उ0फा0 – टे टो पा पी

हस्त – पू ष ण ठ

चित्रा - पे पो रा री

स्वाती – रू रे रो ता

विशाखा - ती तू ते तो

अनुराधा – ना नी नू ने

ज्येष्ठा – नो या यी यू

मूल – ये यो भा भी

पू0षा0 – भू धा फा ढा

उ0षा0 – भे भो जा जी

श्रवण – खी खू खे खो

धनिष्ठा - गा गी गू गे

शतभिषा – गो सा सी सू

पू0भा0 – से सो दा दी

उ0भा0 – दू थ झ ञ

रेवती – दे दो चा ची

इन्ही अक्षरों के आधार पर क्रमश: 9 – 9 चरणाक्षरों की मेषादि बारह राशियॉ होती है। उदाहरणार्थ अश्विनी भरणी के 8 चरण व कृत्तिका का प्रथम चरण मिलकर कुल 9 चरण मेष राशि के हुये। इसे श्लोक के रूप में भी जाना जा सकता है।

1. अश्विनी भरणी कृत्तिका पादो **मेष:**
2. कृत्तिकानां त्रय: पादा: रोहिणी मृगार्धं **वृष:**
3. मृगार्धमार्द्रा पुनर्वसु पादत्रयं **मिथुन:**
4. पुनर्वसु चरमपाद: पुष्याश्लेषान्तं च **कर्क:**
5. मघा पूर्वोत्तफाल्गुनी पाद: **सिंह:**
6. उ0फा0 त्रय: पादा: हस्तचित्रार्धं **कन्या**
7. चित्रोत्तरार्धस्वाती विशाखापादत्रयं **तुला**
8. विशाखान्त्यानुराधाज्येष्ठान्तं **वृश्चिक:**
9. मूलं पूर्वोत्तराषाढपादो **धनु:**
10. उ0षाढायास्त्रय: श्रवणधनिष्ठार्धं **मकर:**
11. धनिष्ठोत्तरार्धं शतभिषा पू0भाद्रपदपादत्रयं **कुम्भ:**
12. पूर्वाभाद्रपदान्त्यपाद उत्तराभाद्रपदा रेवत्यन्तं **मीन:**

नक्षत्र जातक फल विचार – जातक फलादेशों में नक्षत्र का फलादेश सबसे सूक्ष्म है। अत: इसका विचार अवश्य करना चाहिये। एतदर्थ पहले मृदु तीक्ष्णादि नक्षत्र संज्ञायें बता चुके है । शौनक ऋषि का मत है कि ध्रव नक्षत्रों में जन्म लेने वाला जातक स्थिर विचारों वाला, आलसी व क्षमावान् होता है। चरसंज्ञक नक्षत्रोपन्न बालक चंचल स्वभाव, अपनी वाणी से सब को रूष्ट करने वाला, प्रबल आलोचक होता है। उग्र नक्षत्रोपन्न बालक उग्र स्वभाव वाला, हिंसक, बन्धन में रत रहता है। मिश्र नक्षत्रोत्पन्न जातक मिश्रित प्रकृति वाला व लघुसंज्ञक नक्षत्रों में उत्पन्न जातक अल्पभोगी, मृदु, दयालु व कलाप्रेमी तथा तीक्ष्ण नक्षत्र में जन्म लेने वाला दुर्वचन भाषी व कलहप्रिय होता है।

इसके अतिरिक्त यह बात भी ध्यातव्य है कि शतभिषा, आर्द्रा, अभिजित, मूल ये चार नक्षत्र कुलाकुल संज्ञक है। भरणी, रोहिणी, पुष्य, मघा, उ.फा., चित्रा, विशाखा, ज्येष्ठा, पू.षा., श्रवण व उत्तराभाद्रपद ये नक्षत्र कुलसंज्ञक हैं। अश्विनी, कृत्तिका, मृगशिरा, पुनर्वसु, श्लेषा, पू0फा0, हस्त,

स्वाती, अनुराधा, उ.षा., धनिष्ठा, पू.भा., रेवती ये अकुलसंज्ञक है।

वशिष्ठ संहिता में बताया गया है कि कुल नक्षत्रों में उत्पन्न जातक अपने कुल में श्रेष्ठ, मुख्य व धनी होते हैं। अकुलोत्पन्न जातक दूसरों की सम्पत्ति को भोगने वाले अर्थात् पराश्रित और कुलाकुल में दोनों प्रकार के गुणों से युक्त होते है।

इसमें व आगे बताये गये नक्षत्रफल में यह विशेषता है कि जन्म समय में जन्म नक्षत्र यिद पापयुक्त या पापग्रह से विद्ध हो तो सभी गुणों में न्यूनता व दोष में वृद्धि होती है तथा शुभयुक्त होने से दोष भी गुण हो जाते हैं। अत: किसी भी प्रकार के ग्रह से युक्त न रहने पर उक्त व बताये जा रहे सभी फल यथावत् मिलते है।

4.4.2 नक्षत्रों में उत्पन्न जातक का विचार -

अश्विनी – इस नक्षत्र में उत्पन्न जातक सुन्दर, सौभाग्ययुक्त, चतुर, भूषणप्रिय, स्त्रप्रिय व शूर होता है। वह बुद्धिमान, दृढनिश्चयी, नीरोग व राजपक्ष से लाभ कमाने वाला होता है।

भरणी - भरणी नक्षत्र में कामोपभोग में कुशल, सत्यवादी, वचन का धनी, नीरोग, सौभाग्ययुक्त व अल्पाहारी होता है। वह मद्य मॉस का प्रेमी, चंचल बुद्धि, हठी, दूसरों का धन लेने वाला होता है।

कृत्तिका – इस नक्षत्र में तेजस्वी, मतिमान, दानी, अधिक खाने वाला, स्त्री प्रिय, गम्भीर, कुशल व मानी होता है। धार्मिक बुद्धि, अच्छा कुलीन आचरण करने वाला, स्वाध्याय प्रेमी, खुले विचारों का होता है।

रोहिणी – रोहिणी नक्षत्र में सुन्दर, स्थिर बुद्धि वाला, मनस्वी, भोग भोगने वाला, रतिप्रिय, प्रियभाषी, चतुर व तेजस्वी होता है। साथ ही पुत्रवान्, यशस्वी, कम बोलने वाला, धैर्यशाली चरित्रवान व सुन्दर होता है।

मृगशिरा - इस नक्षत्र में उत्साही, चंचल, भीरू, धनी, शान्तिप्रिय, पवित्राचरण करने वाला, शास्त्रज्ञ, समर्थ, विद्वान व चतुर होता है।

आर्द्रा – इस नक्षत्र में अधिक खाने वाला, रूखे शरीर वाला, क्रोधी, बदला लेने की भावना से युक्त, वीर, व्यवहार कुशल, उग्र स्वभाव व निर्दय होता है।

पुनर्वसु – पुनर्वसु नक्षत्रोत्पन्न जातक दुर्गम बुद्धि, सुन्दर, सहनशील, अल्पतोषी, शीघ्र चलने वाला, अनेक मित्रों वाला, धनी, शौकीन, दानी, प्रतापी होता है।

पुष्य – पुष्य नक्षत्र में जातक सौभाग्यशाली, प्रसिद्ध, शूरवीर, कृपालु, धार्मिक, धनी, कलाविद, सत्याचारी, हल्के शरीर वाला वा विलासी, माता – पिता का भक्त, स्वधर्मपरायण, विनीत, मान्य प्रतिष्ठित व धनाढ्य होता है।

श्लेषा – इस नक्षत्र में बालक धूर्त, क्रूर कार्य करने वाला, परस्त्री कामुक, शठ, व्यसनी, सहनशील, सीधा तनकर चलने वाला, वृथा भ्रमण करने वाला, जन पीड़क, बेकार के कार्यों में अपना धन व्यय

करने वाला, अत्यन्त कामुक होता है।

मघा – इस नक्षत्र में जन्म लेने वाला व्यक्ति मोटा, टेढ़ी टुड्डी वाला, तोंद वाला, सहनशील, गुरूजनों की आज्ञा मानने वाला, तेजस्वी, कठोर मन वाला, शुद्ध विद्या युक्त, सन्मति, स्त्री पक्ष से द्वेष रखने वाला होता है।

पू0 फा0 – इस नक्षत्र में उत्पन्न व्यक्ति शोभायमान व्यक्तित्व वाला, भ्रमणशील, नृत्यप्रिय, सोच – विचार कर काम करने वाला, विद्यावान, साहसी, शूर, अनेक लोगों का भरण – पोषण करने वाला, कामार्त, गर्वीला, उभरी नसों वाला होता है।

उत्तरा फाल्गुनी – इस नक्षत्र में उत्पन्न जातक शत्रुओं को परास्त करने वाला, सुखी, भोगी, स्त्रियों में विशेष प्रिय, कलावान्, सत्यवादी, विद्वान्, दाता, दयालु, सुशील, प्रसिद्ध, राजपक्ष से विशेष परिचय रखने वाला, धैर्यशाली, कोमल स्वभाव वाला होता है।

हस्त – इस नक्षत्र में जातक मेधावी, उत्साही, दूसरों के काम आने वाला, योद्धा, परदेश में रत रहने वाला, शूर, स्त्रियों के प्रति चंचल भावनाओं वाला, मनस्वी, यशस्वी, विप्रों व विद्वानों का सत्कार करने वाला, समस्त सम्पत्तियों को हस्तगत करने वाला होता है।

चित्रा – इस नक्षत्र में उत्पन्न जातक विचित्र वस्त्राभूषण पहनने का शौकीन, कामशास्त्र में प्रवीण, द्युतिमान, धनी, भोगी, पण्डित, शत्रुओं को परास्त करने वाला, नीतिकुशल, विचित्र बुद्धि वाला, प्रेमी, सुन्दरता – प्रिय व स्त्री से पराजित होता है।

स्वाती - इस नक्षत्र में उत्पन्न होने वाला मनुष्य धर्मात्मा, मधुरभाषी, वीर, क्रय – विक्रय में निपुण, कामी, अत्यधिक सांसारिक ज्ञान रखने वाला, तपस्वी, विद्यावान, सुन्दर राजमान्य, अल्पशत्रु, धर्मार्थ काम का भोक्ता, अनेक लोगों को पालने वाला होता है।

विशाखा – इस नक्षत्र में जातक सब की निन्दा करने वाला, चिकने चुपड़े व्यक्तित्व वाला, वचनकुशल, शत्रुजित्, जितेन्द्रिय, धनी, लोभी, यज्ञकर्ता, धातु सम्बन्धित वस्तुओं का व्यवसायी, किसी का भी मित्र न होने वाला होता है।

अनुराधा – इसमें व्यक्ति राजकार्य करने वाला, वीर, परदेश वासी, स्त्रियों का प्रेमी, सुन्दर, गुप्त पापी, शत्रुजित्, कला प्रवीण, अति क्रोधी व सम्मानित होता है। वह सदैव उत्सव प्रिय व अनवसर पर भी उत्सव मनाने वाला होता है।

ज्येष्ठा – इस नक्षत्र में उत्पन्न व्यक्ति हिंसक, मानी, धनी, भोगयुक्त, परकार्य में सहायक, दूसरों की गुप्त बातों को प्रकट करने वाला, झूठ बोलने वाला, स्त्रियों का अनुरागी, शिथिलाचारी, सुखी, बलवान्, स्थिर विचारों वाला तथा अहिंसक होता हैं।

पूर्वाषाढ़ा – इसमें जन्म लेने वाला व्यक्ति अपनी स्त्री के साथ बहुत घूमने वाला, मनमानी करने वाला, कुशल, पक्की मित्रता रखने वाला, क्लेश उठाने वाला, वीर्यवान् , मानी सदा प्यास का अनुभव करने वाला, वाक्कुशल, सुशील, सम्पत्तिवान्, जलमार्ग से यात्रायें करने वाला होता है।

उत्तराषाढ़ा - इस नक्षत्र में उत्पन्न व्यक्ति कृतज्ञ, धार्मिक, शूरवीर, अनेक पुत्रों वाला, विनीत, सुन्दर स्त्री वाला, सुन्दर, दयालु, विजयी, प्रभुत्व सम्पन्न, सुरूचिपूर्ण वस्त्र पहनने वाला, अभिमानी, सर्वप्रिय व अनेक मित्रों वाला होता है।

श्रवण – इस नक्षत्र में उत्पन्न व्यक्ति उदार स्त्री वाला, ज्ञानी, श्रीमान् , कुशल वक्ता, धनी, काव्यकर्ता, सुरतोपचार में कुशल, धार्मिक, अनेक पुत्रों व मित्रों वाला, सब की सुनने वाला होता है।

धनिष्ठा – इस नक्षत्र में मनुष्य धार्मिक, धन का लोभी, नृत्य गीत व वाद्य का प्रेमी, शान्ति व प्रेम से वश में होने वाला, तेजस्वी, वीर्यवान् धनी, कृपालु, प्रतिष्ठित होता है।

शतभिषा – इस नक्षत्र में जन्म लेने वाला व्यक्ति दुराधर्ष व्यक्तित्व वाला, साहसी, वाणी प्रयोग में कुशल, क्रूर, हानि व लाभ दोनों ही पाने वाला, परस्त्री लोभी, शत्रुनाशक, कम खाने वाला व समय को विचार कर चलने वाला होता है।

पूर्वाभाद्रपद – इस नक्षत्र में जन्म लेने वाले प्रगल्भवादी अर्थात् खड़ी भाषा बोलने वाला, धूर्त, अन्दर से डरने वाला, कोमल भावनाओं वाला, उद्विग्न रहने वाला, स्त्री द्वारा वशीभूत रहने वाला, धन कमाने में चतुर, कंजूस, शत्रुआं को डराने वाला, दूसरों की आलोचना करने वाला वा दम्भी होता है।

उत्तराभाद्रपद – इस नक्षत्र में जन्म लेने वाला व्यक्ति अच्छी वक्तृता वाला, सन्ततियुक्त, शत्रुजित्, धार्मिक, सुखी व समर्थ होता है। ऐसा व्यक्ति राजपक्ष से सम्मान पाने वाला, पानी से डरने वाला, दानी, यज्ञ व अध्ययन प्रेमी, अपने कुल में सबसे अधिक उन्नति करने वाला होता है।

रेवती – रेवती नक्षत्र में उत्पन्न व्यक्ति सम्पूर्ण विकसित व्यक्तित्व वाला, सर्वप्रिय, शूरवीर, धनवान, कामुक, सुन्दर, मन्त्री तुल्य, पुत्रादि से युक्त, श्रीमान, जल प्रेमी वा परदेशी होता है।

जन्म नक्षत्र से जन्म ग्रह दशा का ज्ञान –

जन्म नक्षत्र	**विंशोत्तरी महादशा ग्रह**	**वर्षकाल समय**
कृ0 उ0फा0, उ0षा0	सूर्य	6 वर्ष
रो0 ह0 श्र0	चन्द्र	10 वर्ष
मृ0 चि0 ध0	मंगल	7 वर्ष
आ0 स्वा0 शत0	राहु	18 वर्ष
पु0 वि0 पू0भा0	गुरू	16 वर्ष
पुष्य0 अ0 उ0भा0	शनि	19 वर्ष
आश्लेषा, ज्येष्ठा, रेवती	बुध	17 वर्ष
मघा, मूल, अश्विनी	केतु	7 वर्ष
पू0फा0, पू0षा0 भरणी	शुक्र	20 वर्ष

दिन रात्रि जन्म का फल

दिन में जन्म लेने वाला जातक तेजस्वी, पिता के समान शील स्वभाव वाला, सुन्दर दृष्टिवाला, राजाओं से प्रीति करने वाला, बन्धुओं में पूज्य व धनवान होता है।

रात्रि में जन्म लेने वाला जातक अतिकामी, मन्द दृष्टिवाला, क्षयरोगी, गुप्त पाप करने वाला, दुष्टात्मा मैला शरीर वाला होता है।

ज्येष्ठा विचार – ज्येष्ठा नक्षत्र के प्रथम चरण में जन्म होने से बड़े भाई को, दूसरे चरण में छोटे भाई को, तीसरे चरण में माता को व चौथे चरण में स्वयं को विशेष कष्ट होता है। चौथे चरण में भी अन्तिम घडियॉ विशेष हानिकारक व भयप्रद होती हैं।

सम्पूर्ण नक्षत्र के मान को 6 -6 घडियों के समान दस भागों में बॉट लेना चाहिये। यह नक्षत्र प्रथम 6 घडियों के जन्म में नानी का, दूसरे भाग में नाना का, तीसरे में मामा का, चौथे में माता का, पॉचवें में स्वयं का, छठे में वंश के अन्य व्यक्ति का, सातवें में मातृ व पितृ कुल का, आठवें में बडे भाई का, नवें में ससुर का और दसवें भाग में सभी कुटुम्ब का नाशकर्ता होता है।

मूल शान्ति विचार – जिस नक्षत्र में जातक का जन्म हुआ हो, वही नक्षत्र जब 27 दिन बाद लौटकर आये तो उसी नक्षत्र में शान्ति करानी चाहिये, यह मत बहुत प्रचलित है, लेकिन उक्त समय का अतिक्रमण होने पर या अत्यावश्यकता में इस प्रकार शान्ति काल का निश्चय करें।

1. सूतकान्त समय में या बारहवें दिन
2. आठवें वर्ष में
3. जब कभी भी शुभ समय में अपना जन्म नक्षत्र हो
4. अत्यावश्यकता में किसी शुभ दिन व मुहूर्त्त में

मूलवास विचार –

यदि जन्मलग्न, व जन्ममास के अनुसार मूल का वास भूमि पर ही रहे तो विशेष कष्ट होता है। स्वर्ग या पाताल में वास आने पर साधारण अशुभ होता है।

मूलवास चक्रम्

	भूमि	**स्वर्ग**	**पाताल**
जन्ममास	चैत्र, श्रावण, कार्त्तिक, पौष	आषाढ़, भाद्रपद, आश्विन, माघ	वैशाख, ज्येष्ठ, मार्गशीर्ष, फाल्गुन
जन्मलग्न	3,6,9,12	1,4,7,10	2,5,8,11
फल	अशुभ	शुभ	शुभ

नक्षत्र गण्डान्त - रेवती के अन्त की दो घडियॉ व अश्विनी के आरम्भ की दो घडियॉ, इसी प्रकार आश्लेषा के अन्त की दो घडी व मघा की प्रथम दो घडी एवं ज्येष्ठा के अन्त की दो घडी व मूल के आदि की दो घडियॉ नक्षत्र गण्डान्त कहलाती है। यह काल नक्षत्र सन्धि के साथ – साथ राशि सन्धि

का भी होता है। अत: यात्रा, विवाह व जन्म में महान् अनिष्टकारी कहा गया है।

मूल नक्षत्र जन्म फल –

इस नक्षत्र में चतुर्थ चरण के शुभ मुहूर्त्त में जन्म लेने वाला जातक प्रतापी, सौभाग्यशाली, ऐश्वर्य , आयु व कुल की वृद्धि करने वाला होता है, किन्तु अशुभ मुहूर्त्त में उत्पन्न होने वाला जातक कुल का नाश करता है। जन्म लेने वाले जातक के लिये यद्यपि वह बहुत अच्छा कहलाता है तथापि कुटुम्ब के सदस्यों के लिये बहुत ही हानिकारक समझा गया है।

मूल चरण फल –

मूल नक्षत्र के चार चरणों में तीन चरणों में जन्म लेने वाला जातक क्रमश: पिता, माता और धन को अनिष्टकारक करने वाला होता है। अर्थात् पहले चरण में जन्म हो तो पिता को अशुभ, दूसरे चरण में हो तो माता को और तीसरे चरण में हो तो धन का नाश करता है। किन्तु चतुर्थ चरण उन सभी को शुभ फलदायक समझना चाहिये। वैसे ही आश्लेषा नक्षत्र का चतुर्थ चरण पिता को, तीसरा चरण माता को और दूसरा चरण धन के लिये अनिष्टदायक समझा गया है व प्रथम चरण सभी को शुभ जानना चाहिये।

मूल – तिथि वार फल

कृष्ण पक्ष तृतीया मंगलवार में तथा दशमी शनिवार में शुक्ल पक्ष चतुर्दशी बुधवार में हो तो ऐसे योग में मूल नक्षत्र में जन्म हुये जातक को कुल का नाश करने वाला समझना चाहिये।

मूल वेला में फल –

मूल नक्षत्र में जन्म का समय दिन में होता हो तो पिता को, सायंकाल में हो तो मामा को और रात्रि में हो तो पशुओं को व प्रात:काल में हो तो मित्रजनों को अनिष्ट फलदायी समझना चाहिये। परन्तु मूल नक्षत्र में जन्म लेने वाला जातक सुखी, धन व वाहन युक्त, हिंसा करने वाला, बलवान, स्थिर कर्म करने वाला, शत्रुनाशक और पुण्यात्मा होता है।

शरीर के अवयव पर जन्म नक्षत्र का प्रभाव –

मनुष्य पुरूषजाति के शारीरिक अवयवों पर जन्म समय के सूर्य नक्षत्र से जन्म नक्षत्र तक निम्नलिखित अनुसार परिणाम पड़ता है। जैसे : -

प्रथम तीन नक्षत्रों का प्रभाव मस्तक पर।

दूसरे तीन नक्षत्रों का प्रभाव मुख पर।

तीसरे दो नक्षत्रों का प्रभाव कन्धों पर।

चौथे दो नक्षत्रों का प्रभाव बाहु पर।

पॉचवें दो नक्षत्रों का प्रभाव नाभि पर।

छठवें पॉच नक्षत्रों का प्रभाव हृदय पर।

सातवें एक नक्षत्र का प्रभाव गुह्य भाग पर।

नवें दो नक्षत्र का प्रभाव जंघों पर।

दसवें छः नक्षत्रों का प्रभाव पैर पर।

इसके अतिरिक्त इन नक्षत्रों का प्रभाव स्त्री जाति के अवयवों पर नीचे लिखे अनुसार पड़ता है।

4.5 सारांशः –

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि न क्षरतीति नक्षत्रम् अर्थात् जो चलता नहीं वह नक्षत्र है। भचक्र का 27 वॉ भाग अर्थात् 13^0।20 अंशादि के बराबर एक नक्षत्र होता है। ज्यौतिषशास्त्र के अनुसार नक्षत्रों की संख्या 27 मानी गई है। प्रत्येक नक्षत्र के चार समान भाग (1 अंश = 3^0।20) होते है। ये भाग चरण या पाद कहलाते हैं। एक राशि में 9 चरण या सवा दो नक्षत्र होते है। अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा, मघा, पू0फा0, उ0फा0, हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पू0षा0, उ0षा0, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, पू0भा0, उ0भा0, रेवती। ये 27 नक्षत्र कहे गये है। उत्तराषाढा का चतुर्थ चरण और श्रवण के आरम्भ की 4 घटी अभिजित् नाम से 28 वॉ नक्षत्र माना गया है। जिसका कहीं - कहीं कार्य विशेष में ही प्रयोजन होता है। रोहिणी, अश्वनी, मृगशिरा, पुष्य, हस्त, चित्रा, तीनों उत्तरा, रेवती, श्रवण, धनिष्ठा, पुनर्वसु, अनुराधा, और स्वाती ये नक्षत्र शुभ कहे गये हैं, इनमें शुभ कर्म प्रशस्त हैं। तीनों पूर्वा, विशाखा, ज्येष्ठा, आर्द्रा, मूल तथा शततारा इनमें साधारण कृत्य शुभ हैं। भरणी, कृत्तिका, मघा, आश्लेषा, इनमें अति उग्र या दुष्टकर्म सिद्ध होते हैं। ज्योतिष शास्त्र में नक्षत्र विचार अति महत्वपूर्ण इकाई हैं। यदि देखा जाये तो ज्योतिष के अधिकाधिक भाग नक्षत्र विभाग पर आधारित है। नक्षत्रों का ज्ञान प्राप्त करने से आप त्रिस्कन्ध ज्योतिष में आसानी से प्रवेश पा सकते है।

4.6 पारिभाषिक शब्दावली

नक्षत्र – न क्षरतीति नक्षत्रम्। नक्षत्रों की संख्या 27 है।

नक्षत्र गण्डान्त – रेवती के अन्त की दो घडियॉ व अश्विनी के आरम्भ की दो घडियॉ, इसी प्रकार आश्लेषा के अन्त की दो घडी व मघा की प्रथम दो घडी एवं ज्येष्ठा के अन्त की दो घडी व मूल के आदि की दो घडियॉ **नक्षत्र गण्डान्त** कहलाती है।

मूल – अश्विनी, रेवती, मूल, आश्लेषा, मूल संज्ञक नक्षत्र है।

मृदु संज्ञक नक्षत्र - मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा और शुक्रवार ये मृदु तथा मैत्र संज्ञक हैं।

मधुरभाषी – मधुर बोलने वाला

धर्मार्थ – धर्म के लिये

नक्षत्रोत्पन्न – नक्षत्र में उत्पन्न

4.7 बोध प्रश्नों के उत्तर –

1. ग
2. घ
3. ग
4. ग
5. घ

4.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची –

1. वृहज्जयौतिसार
2. मुहूर्त्तपारिजात
3. वृहज्जातक
4. ज्योतिषसर्वस्व
5. होराशास्त्रम्

4.9 निबन्धात्मक प्रश्न -

1. नक्षत्र किसे कहते है। उसके स्वरूप का उल्लेख करते हुये सविस्तार वर्णन कीजिये।

2. अश्विन्यादि से रेवती पर्यन्त नक्षत्रों में उत्पन्न जातकों का विचार किस प्रकार किया जाता । वर्णन कीजिये।

इकाई – 5 योग, करण, भद्रा निर्णय

इकाई संरचना

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 योग, करण, भद्रा का परिचय
योग, करण, भद्रा की परिभाषा व स्वरूप
योग, करण एवं भद्रा का महत्व
5.4 बोध प्रश्न
5.5 सारांशः
5.6 पारिभाषिक शब्दावली
5.7 बोधप्रश्नों के उत्तर
5.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
5.9 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना -

प्रस्तुत इकाई प्रथम खण्ड के '**योग, करण एवं भद्रा' नामक** शीर्षक से संबंधित है। ज्योतिष शास्त्र में पंचांग ज्ञान के अन्तर्गत हम योग, करण और भद्रा का ज्ञान करते है।

योग की उत्पत्ति नक्षत्र से, करण की उत्पत्ति तिथि से तथा करण से भद्रा की उत्पत्ति होती है। इनमें से प्रत्येक पंचांग के आधारभूत तत्वों में से एक है।

इससे पूर्व की इकाईयों में आपने तिथि – वार विवेचन एवं नक्षत्र का ज्ञान प्राप्त किया हैं, यहॉ हम इस इकाई में योग करण एवं भद्रा सम्बन्धित विषयों का अध्ययन विस्तार पूर्वक करेंगे।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप-

1. योग करण एवं भद्रा को परिभाषित करने में समर्थ हो सकेंगे।
2. योग करण एवं भद्रा के महत्त्व को समझा सकेंगे।
3. योग करण एवं भद्रा की संख्या जान लेंगे।
4. योग करण एवं भद्रा का स्वरूप वर्णन करने में समर्थ होंगे।
5. योग करण एवं भद्रा के सम्बन्ध को निरूपित करने में समर्थ होंगे।

5.3 योग विचार

भूकेन्द्रीय दृष्टि से सूर्य – चन्द्रमा की गति का योग जब एक नक्षत्र भोगकला (800 कला) तुल्य होता है, तब एक योग की उत्पत्ति होती है। सामान्य रूप में योग का अर्थ होता है – जोड़। सूर्य व चन्द्रमा के स्पष्ट राश्यिादि के जोड़ को ही '**योग**' कहते है। इनकी संख्या 27 है –

विष्कुम्भः प्रीतिरायुष्मान् सौभाग्यः शोभनस्तथा।
अतिगण्डः सुकर्मा च धृतिः शूलस्तथैव च॥
गण्डो वृद्धिर्ध्रुवश्चैव व्याघातो हर्षणस्तथा।
वज्रसिद्धी व्यतीपातो वरीयान् परिघः शिवः॥
सिद्धसाध्यौ शुभः शुक्लो ब्रह्मैन्दो वैधृतिस्तथा।
सप्तविंशतियोगाः स्युः स्वनामसदृशं फलम्॥

विष्कुम्भ, प्रीति, आयुष्मान, सौभाग्य, शोभन, अतिगण्ड, सुकर्मा, धृति, शूल, गण्ड, वृद्धि, ध्रुव, व्याघात, हर्षण, वज्र, सिद्धि, व्यतीपात, वरीयान, परिघ, शिव, सिद्ध, साध्य, शुभ, शुक्ल, ब्रह्म, ऐन्द्र, वैधृति। ये 27 योग होते है। ये अपने – अपने नामानुसार शुभाशुभ फल देते हैं। अर्थात् इनमें –

विष्कुम्भ, वज्र, गण्ड, अतिगण्ड, व्याघात, शूल, वैधृति, व्यतीपात, परिघ ये 9 योग अशुभ और शेष योग शुभ हैं।

मुहूर्त्त जगत में योग को दो श्रेणियों में विभाजित किया गया है – नैसर्गिक व तात्कालिक। नैसर्गिक योगों का सदैव एक ही क्रम रहता है और एक के बाद एक आते रहते हैं। विष्कंभादि 27 योग नैसर्गिक श्रेणी गत हैं। परन्तु तात्कालिक योग - तिथि – वार- नक्षत्रादि के विशेष संगम से बनते है। आनन्द प्रभृति एवं क्रकच, उत्पात, सिद्धि, तथा मृत्यु आदि योग तात्कालिक है।

विष्कम्भादि योग – किसी भी दिन विष्कम्भादि वर्तमान योग ज्ञात करने के लिये पुष्य नक्षत्र से सूर्यर्क्ष तक तथा श्रवण नक्षत्र से दिन नक्षत्र तक गणना करके दोनों प्राप्त संख्याओं के योग में 27 का भाग देने पर अवशिष्टांकों के अनुसार विष्कम्भादि यथा क्रम योग जानना चाहिये। विष्कम्भादि 27 योगों को इस चक्र द्वारा भी समझा जा सकता है।

योग चक्र

यो. सं.	1	2	3	4	5	6	7	8	9
योग	विष्कंभ	प्रीति	आयु.	सौभा.	शोभन	अति.	सुकर्म .	धृति	शूल
स्वामी	यम	विष्णु	चन्द्र	ब्रह्मा	गुरू	चन्द्र	इन्द्र	जल	सर्प
फल	अशुभ	शुभ	शुभ	शुभ	शुभ	अशुभ	शुभ	शुभ	अशुभ
यो. सं.	10	11	12	13	14	15	16	17	18
योग	गण्ड	वृद्धि	ध्रुव	व्याघात	हर्षण	वज्र	सिद्धि	व्यती.	वरी.
स्वामी	अग्नि	सूर्य	भूमि	वायु	भग	वरूण	गणेश	रूद्र	कुबेर
फल	अशुभ	शुभ	शुभ	अशुभ	शुभ	अशुभ	शुभ	अशुभ	शुभ
यो. सं.	19	20	21	22	23	24	25	26	27
योग	परिघ	शिव	सिद्ध	साध्य	शुभ	शुक्ल	ब्रह्म	ऐन्द्र	वैधृति
स्वामी	विश्वकर्मा	मित्र	कार्तिकेय	सावित्री	लक्ष्मी	पार्वती	अश्विनी	पितर	दिति
फल	अशुभ	शुभ	शुभ	शुभ	शुभ	शुभ	शुभ	अशुभ	अशुभ

निन्द्य योग

व्यतीपात योग – यह एक महान उपद्रवकारी योग है। विष्कम्भादि योगों में तो यह 17 वॉ योग है ही, जो कि क्रम से आता रहता है। परन्तु यह तात्कालिक योग भी है, जो अमावस्या को रविवार या श्रवण, धनिष्ठा, आर्द्रा, आश्लेषा अथवा मृगशिरा नक्षत्र के सान्निध्य से उत्पन्न होता है। इस अमाजनित व्यतीपात में गंगा स्नान का बडा ही महत्व है। समस्त मांगलिक कार्यों एवं यात्रादि में इसका परित्याग ही हितकर है।

वैधृति – यह भी व्यतिपात के ही समकक्ष है । अत: इसे भी शुभजनक कृत्यों में पूर्णतया विवर्ज्य समझना चाहिये। शेष जघन्य योगों में परिघ का पूर्वार्द्ध, विष्कम्भ और वज्र की आदि 3 घटी

व्याघात की प्रारम्भिक 9 घटी, शूल की पहली 5 घटी तथा गंड – अतिगण्ड के शुरूआत की 6-6 घटियॉ विशेषत: त्याज्य है।

अन्तर्योग – विष्कम्भादि प्रत्येक योग में क्रमश: विष्कम्भादि 27 अन्तर्योग ठीक उसी प्रकार आते हैं जैसे किसी ग्रह की महादशा में सूर्यादि समस्त ग्रहों की अन्तर्दशाएँ आया करती है। प्रत्येक अन्तर्योग का भोग्यमान प्राय: 1 घटी 48 पल अर्थातद्य 43 मिनट 12 सेकेण्ड होता है। अन्तर्योगों का यह प्रयोजन है कि जो शुभाशुभ फल विष्कम्भादि विभिन्न प्रधान योगों के हैं वे ही फल किसी भी शुभाशुभ योग में आनेवाले अन्तर्योगों के भी जानना चाहिये। इनका विचार यथा सम्भव आवश्यक कर्मों में ही किया जाता है।

योगोत्पत्ति –

वाक्पतेरर्कनक्षत्रं श्रवणाच्चान्द्रमेव च।
गणयेत्तद्युतिं कुर्याद्योग: स्यादृक्षशेषत:॥

पुष्य नक्षत्र से वर्तमान सूर्याधिष्ठित नक्षत्र पर्यन्त की तथा श्रवण से चन्द्राधिष्ठित नक्षत्र पर्यन्त की संख्याओं का योग करके 27 से भाग देने पर जो शेष बचे, विष्कुम्भादि से उतने योग गणना कर समझना चाहिये।

उदाहरण – संवत 2015 वैशाख कृष्ण पक्ष अमावस्या शनिवार में योग ज्ञात करना है। उस दिन सूर्य अश्विनी और चन्द्रमा अश्विनी में हैं। अत: पुष्य से अश्विनी तक 21 संख्या और श्रवण से अश्विनी तक 7 संख्या हुई, दोनों का योग 21 + 7 = 28 ÷ 27 शेष 1 अर्थात् विष्कुम्भ योग हुआ।

आनन्दादि योग –

वार और नक्षत्र के समाहार से तात्कालिक आनन्दादि 28 योगों का प्रादुर्भाव होता है। इन योगों को ज्ञात करने के हेतु वार विशेष को निर्दिष्ट नक्षत्र से विद्यमान नक्षत्र तक साभिजित् गणना की जाती है रविवार को अश्विनी से, सोम को भरणी से, मंगल को आश्लेषा से, बुध को हस्त से, गुरू को अनुराधा से, शुक्र को उत्तराषाढ़ा से तथा शनिवार को शतभिषा से तद्दिन के चन्द्रर्क्ष तक गणना पर आप्त संख्या को ही उस दिन वर्तमान आनन्दादि योग का क्रमांक जानना चाहिये।

सुगमतापूर्वक योग और उनके फल जानने के लिये निम्न रूप में सारिणी चक्र दिया जा रहा है –

योग चक्र

क्रम	योग	रवि	सोम	मंगल	बुध	गुरू	शुक्र	शनि	फल
1	आनन्द	अश्विनी	मृग.	श्ले.	हस्त	अनु.	उ. षा.	शत.	अर्थसिद्धि
2	कालदण्ड	भरणी	आर्द्रा	मघा	चित्रा	ज्ये.	अभि.	पू0भा0	मृत्युभय
3	धूम्र	कृत्तिका	पुन.	पू. फा.	स्वाती	मूल	श्रवण	उ0भा0	दु:ख
4	प्रजापति(धा	रोहिणी	पुष्य	उ. फा.	विशा	पू0षा0	धनिष्ठा	रेवती	सौभाग्य

	ता)				खा				
5	सौम्य	मृगशिरा	आश्लेषा	हस्त	अनु.	उ0षा0	शतभिषा	अश्विनी	बहुसुख
6	ध्वांक्ष	आर्द्रा	मघा	चित्रा	ज्ये.	अभि.	पू0भा0	भरणी	अर्थनाश
7	ध्वजा	पुन.	पू. फा.	स्वाती	मूल	श्रवण	उ0भा0	कृत्तिका	सौभाग्य
8	श्रीवत्स	पुष्य	उ. फा.	विशाखा	पू0षा0	धनिष्ठा	रेवती	रोहिणी	ऐश्वर्य
9	वज्र	आश्लेषा	हस्त	अनु.	उ0षा0	शतभिषा	अश्विनी	मृगशिरा	धनक्षय
10	मुद्गर	मघा	चित्रा	ज्ये.	अभि.	पू0भा0	भरणी	आर्द्रा	धननाश
11	छत्र	पू. फा.	स्वाती	मूल	श्रवण	उ0भा0	कृत्तिका	पुन.	राजसम्मान
12	मित्र	उ. फा.	विशाखा	पू0षा0	धनिष्ठा	रेवती	रोहिणी	पुष्य	सौख्य
13	मानस	हस्त	अनु.	उ0षा0	शतभिषा	अश्विनी	मृग.	आश्लेषा	सौभाग्य
14	पद्म	चित्रा	ज्ये.	अभि.	पू0भा0	भरणी	आर्द्रा	मघा	धनागम
15	लुम्ब	स्वाती	मूल	श्रवण	उ0भा0	कृत्तिका	पुनर्वसु	पू. फा.	लक्ष्मीनाश
16	उत्पात	विशाखा	पू0षा0	धनिष्ठा	रेवती	रोहिणी	पुष्य	उ. फा.	प्राणनाश
17	मृतयु	अनु.	उ0षा0	शतभिषा	अश्विनी	मृगशिरा	आश्लेषा	हस्त	मरणभय
18	काण	ज्ये.	अभि.	पू0भा0	भरणी	आर्द्रा	मघा	चित्रा	क्लेशवृद्धि
19	सिद्धि	मूल	श्रवण	उ0भा0	कृत्तिका	पुन.	पू. फा.	स्वाती	अभीष्ट सिद्धि
20	शुभ	पू0षा0	धनिष्ठा	रेवती	रोहिणी	पुष्य	उ. फा.	विशाखा	कल्याण
21	अमृत	उ0षा0	शतभिषा	अश्विनी	मृग.	आश्लेषा	हस्त	अनु.	राजसम्मान
22	मुसल	अभि.	पू0भा0	भरणी	आर्द्रा	मघा	चित्रा	ज्ये.	अर्थक्षय
23	अन्तक गद	श्रवण	उ0भा0	कृत्तिका	पुनर्वसु	पू. फा.	स्वाती	मूल	रोग, बुद्धिनाश
24	कुंजर मातंग	धनिष्ठा	रेवती	रोहिणी	पुष्य	उ. फा.	विशाखा	पू0षा0	कुलवृद्धि
25	राक्षस	शतभिषा	अश्विनी	मृग.	आश्लेषा	हस्त	अनु.	उ0षा0	बहुपीड़ा
26	चर	पू0भा0	भरणी	आर्द्रा	मघा	चित्रा	ज्ये.	अभि.	कार्यलाभ

27	सुस्थिर	उ0भा0	कृत्तिका	पुनर्वसु	पू. फा.	स्वाती	मूल	श्रव.	गृहाग्नि
28	प्रवर्धमान	रेवती	रोहिणी	पुष्य	उ. फा.	विशा.	पूषा	धनि.	सुमंगल

दोष परिहार – पूर्वोक्त योग निकाय में साधारण श्रेणी के योगों की प्रारम्भिक घटियों का विवर्जन कर देने के अनन्तर उनकी अशुभता की दोषापत्ति नहीं करती है। परन्तु कालदण्ड, उत्पात, मृत्यु व राक्षस, ये चार योग तो समग्र रूप से त्याज्य है।

अन्य योगों की त्याज्य घटियॉ चक्र में प्रदिष्ट की गई हैं।

योग	**धूम्र**	**ध्वांक्ष**	**वज्र**	**मुद्गर**	**पद्म**	**लुम्ब**	**काण**	**मुसल**	**अन्तक**
त्याज्य घटी	1	5	5	5	4	4	2	2	7

विशेष – कुयोग के समय कोई अन्य सिद्धयादि सुयोग भी वर्तमान हो तो सुयोग की विजय होकर कुयोग अकर्मण्य हो जाता है -

अयोग: सिद्धियोगाश्च द्वातेतौ भवतो यदि।

अयोगो हन्यते तत्र, सिद्धियोग: प्रवर्त्तते ॥ (राजमार्तण्ड)

बोध प्रश्न -

1. योग की उत्पत्ति होती है।

क. करण से ख. नक्षत्र से ग. तिथि से घ. वार से

2. एक नक्षत्र कला का मान होता है।

क. 500 कला ख. 600 कला ग. 700 कला घ. 800 कला

3. विष्कम्भादि योगों की संख्या है।

क. 25 ख. 26 ग. 27 घ. 28

4. सामान्य रूप में योग शब्द का अर्थ होता है।

क. जोड़ ख. घटाव ग. भाग घ. कोई नही

5. आनन्दादि योग क्रम में धाता योग के बाद आता है।

क. ध्वांक्ष ख. आनन्द ग. सौम्य घ. कालदण्ड

क्रकचादि तात्कालिक योग – तिथि, वार तथा वार - नक्षत्र के विशिष्ट संगम से आविर्भूत योगों का मुहूर्त्तशोधन में महत्वपूर्ण स्थान है। अत: ऐसे ही कुल प्रचलित योगों का लाक्षणिक विवरण चक्रों में उल्लिखित है।

तिथिवार जनित योग –

वार	रवि	सोम	मंगल	बुध	गुरू	शुक्र	शनि
क्रकच योग	12	11	10	9	8	7	6
संवर्त योग	7	×	×	1	×	×	×
दग्ध योग	12	11	5	3	6	8	9
विष योग	4	6	7	2	8	9	7
अग्निजिह्वा योग	12	6	7	8	9	10	11
मृत्यु योग	1,6,11	2,7,12	1,6,11	3,8,13	4,9,14	2,7,12	5,10,15
सिद्धियोग	×	×	3,8,13	2,7,12	5,10,15,30	1,6,11	4,9,14
कुलिक योग	7	6	5	4	3	2	1
अमृत योग	5,10,15,30	5,10,15,30	2,7,12	1,6,11	3,8,13	4,9,14	1,6,11
रत्नांकुर	3,8,13	1,6	4,9,14	5,10,15,30	2,7,12	5,10,15,30	3,8,13

वार – नक्षत्र जनित योग

वार	**रवि**	**सोम**	**मंगल**	**बुध**	**गुरू**	**शुक्र**	**शनि**
यमघण्टक	मघा	विशाखा	आर्द्रा	मूल	कृत्तिका	रोहिणी	हस्त
दग्ध योग	भरणी	चित्रा	उ. षा.	धनिष्ठा	उ. फा.	ज्येष्ठा	रेवती
अमृतसिद्धि	हस्त	मृग.	अश्विनी	अनु.	पुष्य	रेवती	रोहिणी
उत्पात योग	विशाखा	पू. षा.	धनिष्ठा	रेवती	रोहिणी	पुष्य	उ. फा.
सर्वार्थ सिद्धियोग	अश्विनी पुष्य	रोहिणी मृग.	अश्विनी	कृत्तिका रोहिणी	अश्विनी	अश्विनी	रोहिणी
	तीनों उत्तरा	पुष्य	कृत्तिका आश्लेषा	मृगशिरा	पुनर्वसु पुष्य	पुनर्वसु अनुराधा	स्वाती
	हस्त, मूल	अनुराधा, श्रवण	उ. फा.	हस्त, अनुराधा	अनुराधा, रेवती	श्रवण रेवती	श्रवण
अमृतयोग	रोहिणी, तीनों	अश्विनी, रोहिणी,	कृत्तिका, पुष्य,	कृत्तिका, रोहिणी,	पुनर्वसु, पुष्य,	अश्विनी, अनु.,	रोहिणी स्वाती

	उत्तरा, पुष्य, हस्त, मूल, रेवती	मृगशिरा, पू. फा., उ. फा., हस्त, श्रवण, धनि. पू.भा., उ.	श्ले., स्वा., उ.भा., रेवती	अनुराधा, शतभिषा	स्वा., अनुराधा	श्रवण तीनों उत्तरा	
प्रशस्त योग	रेवती	हस्त	पुष्य	रोहिणी	स्वाती	उ. फा.	मूल

क्रकचादि योग प्रयोजन – क्रक्रच, संवर्त, दग्ध, विष, अग्निजिह्वा, मृत्यु, कुलिक, उत्पात, और यमघण्टकादि तिथि, वार, नक्षत्र से उद्गत समस्त योग मंगल कर्मों में अशुभ होने के कारण निषिद्ध हैं परन्तु सिद्धि, अमृत – सिद्धि, सर्वार्थसिद्धि, अमृत, रत्नांकुर एवं प्रशस्तादि योग यथा नाम तथा गुणा: उक्ति को चरितार्थ करते हुये, सर्वांगीण सिद्धि कारक है।

विशेष – शहद और घृत के सम्मिश्रण से जिस प्रकार विषोत्पत्ति होती है तद्वतद्य अमृत तथा सिद्धि योगों का एक ही दिन समागम विषयोग का निर्माण करता है -

अमृतं सिद्धियोगश्च, यद्येकस्मिन्दिने भवेत्।
तद्दिनं तु भवेद् दुष्टं, मधुसर्पिर्यथा विषम्॥ (ज्योतिस्तत्व)

सर्वत्र त्याज्ययोग -

1. प्रतिपदा को उत्तराषाढ़ा, द्वितीया को अनुराधा, तृतीया को तीनों उत्तरा में से अन्यतम, पंचमी को मघा, षष्ठी को रोहिणी, स्पतमी को हस्त और मूल, अष्टमी को पूर्वाभाद्रपद, नवमी को कृत्तिका, एकादशी को रोहिणी, द्वादशी को आश्लेषा और त्रयोदशी को स्वाती व चित्रा का संसर्ग सर्व शुभजनक कर्मों में परित्याज्य है।
2. पंचमी को हस्त व रविवार, षष्ठी को मृगशिरा व सोमवार, सप्तमी को अश्विनी व मंगलवार, अष्टमी को अनुराधा और बुधवार, नवमी को गुरूवार और पुष्य, दशमी को रेवती व शुक्रवार तथा एकादशी को रोहिणी व शनिवार का संगम पूर्वाचार्यों ने वर्ज्य कहा है –

आदित्ये पंचमी हस्तौ, सोमे षष्ठी च चन्द्रभम्।
भौमाश्विन्यौ च सप्तम्यामनुराधां बुधाष्टमीम्॥
गुरूपुष्यं नवम्यां च दशम्यां भृगुरेवतीम्।
एकादश्यां शनि ब्राह्यो विषयोगा: प्रकीर्तिता: ॥

अमृतसिद्धि योग –

निम्नलिखित परिस्थितियों में अमृतसिद्धि योग होता है -

1. रविवार को हस्त नक्षत्र हो।
2. सोमवार को मृगशिरा नक्षत्र हो।
3. मंगलवार को अश्विनी नक्षत्र हो।
4. बुधवार को अनुराधा नक्षत्र हो।
5. गुरूवार को पुष्य नक्षत्र हो।
6. शुक्रवार को रेवती नक्षत्र हो।
7. शनिवार को रोहिणी नक्षत्र हो।

उपर्युक्त योगों में तिथि का भी विचार करना आवश्यक है। यथा रविवार को पंचमी तिथि हो, सोमवार को षष्ठी, मंगलवार को सप्तमी, बुधवार को अष्टमी, गुरूवार को नवमी तिथि हो, शुक्रवार को दशमी तिथि हो, शनिवार को एकादशी तिथि हो तो उपर लिखे हुये अमृतसिद्धि योग होते हुये भी अशुभ फल मिलता है, अत: अमृतसिद्धि योग में इन बातों का ध्यान रखना आवश्यक है।

मृत्यु योग –

निम्नलिखत वारों में यदि अमुक – अमुक नक्षत्र हो तो उसे मृत्यु योग समझना चाहिये -

1. रविवार को अनुराधा नक्षत्र हो।
2. सोमवार को उत्तराषाढ़ा नक्षत्र हो।
3. मंगलवार को शततारका नक्षत्र हो।
4. बुधवार को अश्विनी नक्षत्र हो।
5. गुरूवार को मृगशीर्ष नक्षत्र हो।
6. शुक्रवार को आश्लेषा नक्षत्र हो।
7. शनिवार को हस्त नक्षत्र हो।

दग्ध योग -

रविवार को द्वादशी तिथि हो।

सोमवार को एकादशी तिथि हो।

मंगलवार को पंचमी तिथि हो।

बुधवार को तृतीया तिथि हो।

गुरूवार को षष्ठी तिथि हो।

शुक्रवार को अष्टमी तिथि हो।

शनिवार को नवमी तिथि हो।

यह दिन और तिथि दग्ध योग कहलाते है। इन योगों पर कोई भी शुभ कार्य करना अशुभ माना जाता है।

यमघण्ट योग –

नीचे लिखे हुये नक्षत्र उन वारों के समक्ष यदि हों तो यमघण्ट योग कहते है। इन योगों में नीचे दिये हुये कार्य करना अनुचित समझा जाता है। जैसे –

1. रविवार को मघा नक्षत्र हो।
2. सोमवार को विशाखा नक्षत्र हो।
3. मंगलवार को आर्द्रा नक्षत्र हो।
4. बुधवार को मूल नक्षत्र हो।
5. गुरूवार को कृत्तिका नक्षत्र हो।
6. शुक्रवार को रोहिणी नक्षत्र हो।
7. शनिवार को हस्त नक्षत्र हो।

उपर्युक्त योगों में देवस्थापना, गृहप्रवेश, प्रयाण करना मना है व किया तो संकट मिलता है। यदि किसी जातक का जन्म हो तो दोष के शान्ति करने से दोष का निवारण हो जाता है।

योगफल –

योग काल का मुख्य अंगों में एक है। अत: प्रत्येक योग में जन्म लेने वाले जातक का शुभाशुभ फल का विवेचन इस प्रकार से है –

1. **विष्कुम्भ योग** - निरन्तर स्त्रियों के बीच रहने वाला, पुत्र, मित्र आदि के सुख से युक्त, सब कार्य अपने मन से करने वाला, चंचल स्वभाव, शारीरिक सुख पाने वाला होता है।
2. **प्रीति योग** - सुन्दर स्वरूप वाला, प्रसन्न चित्त, भोग विलासी जीवन व्यतीत करने वाला, धर्म में प्रीति रखने वाला, अतिदानी, वक्ता, चंचल मन का होता है।
3. **आयुष्यमान योग** – साहसी, धनी, अनेक स्थान व उद्यान में प्रवास करनेवाला, बहुत आयु वाला व मानी स्वभाव का होता है।
4. **सौभाग्य योग** – ज्ञानवान, गुणवान, सत्यवादी, श्रेष्ठ आचार युक्त, विवेकशील, बलवान, प्रशंसा करने योग्य, ऐश्वर्यमान व महाअभिमानी होता है।
5. **शोभन योग -** महाचतुर, शीघ्र कार्य करने वाला, योग्य उत्तर देने वाला, सतत मंगल कार्यों को करने वाला, बहुत बड़ाई पाने वाला, उत्तम मति वाला व दर्शनीय होता है।
6. **अतिगण्ड योग** – सदा अहंकार युक्त, क्रोधी, बड़ा धूर्त, कलहप्रिय, कण्ठरोग वाला व पाखण्डी होता है।
7. **सुकर्मा योग** – सभी कलाओं में प्रवीण, सदा प्रसन्नचित्त, उत्साहयुक्त, साहसी, परोपकारी, हमेशा सुकर्म करने वाला होता है।
8. **धृति योग** – सदा नियम का पालन करने वाला, धीरज वाला, वक्ता, पण्डित, प्रसन्नचित्त, दानी सुशील व विनययुक्त होता है।

9. **शूल योग** – दरिद्र, रोगी, सत्कर्म, विद्या व विनयरहित, उदर में कभी – कभी शूलरोग वाला होता है।
10. **गण्ड योग** – रूखा स्वभाव वाला, महाक्रोधी, धूर्त, मित्रों के कार्य में विमुख रहने वाला होता है।
11. **वृद्धि योग – चतुर, क्रय** – विक्रय से धन प्राप्त करने वाला, उत्तम वस्तुओं में प्रीति रखने वाला, संग्रही वा सदा भाग्य की वृद्धि वाला होता है।
12. **ध्रुव योग** – मुख में सदा सरस्वती देवी का वास, घर में निरन्तर लक्ष्मी निवास करे व जगत में उसकी निर्मल कीर्ति बनी रहेगी।
13. **व्याघात योग** – मिथ्या बोलने में प्रीति करने वाला, मन्ददृष्टि, क्रूर स्वभाव पराये दोष में तत्पर और घात करने वाला होता है।
14. **हर्षण योग** – शास्त्रों का पठन करने वाला, रक्त वर्ण, आभूषण व वस्त्र धारण करने वाला, शत्रुओं का नाश करने वाला होता है।
15. **वज्र योग** – श्रेष्ठ बुद्धि व उत्तम बन्धु वाला, गुणवान, बड़ा पराक्रमी, सत्यवादी, रत्नों का पारखी, व हीरा व जड़े हुये आभूषणों से युक्त होता है।
16. **सिद्ध योग -** शास्त्र का मर्म जानने वाला, चतुर, सुशील, उदारचित्त, भाग्य की सदा वृद्धि वाला होता है।
17. **व्यतिपात योग** – मातृ – पितृ भक्त व आज्ञा पालन करने वाला, उदार वृद्धि वाला, रोगपीडित शरीर वाला, कठोर चित्त व दूसरों के कार्य में विघ्न करने वाला होता है।
18. **वरीयान योग** – परिश्रम से धन प्राप्त कर उसका भोग करने वाला, नम्र स्वभाव वाला, उत्तम कार्य में धन का व्यय करने वाला, अच्छे कर्म कर जनता में श्रेष्ठ पद पाने वाला होता है।
19. **परिघ योग** – असत्य साक्षी देने वाला, दयाहीन, चतुर, शत्रु पर विजय प्राप्त करने वाला, अनेकों से शत्रुता से रखने वाला होता है।
20. **शिव योग** – मन्त्र विद्या में निपुण, कोमल देह, जितेन्द्रिय, ईश्वर की कृपा से सदा कल्याण प्राप्त करने वाला होता है।
21. **सिद्धि योग** – गौरवर्ण वाला, सत्यवादी, जितेन्द्रिय, सभी प्रकार के कार्य करने में बड़ा कुशल व प्रत्येक कार्य में सिद्धि पाने वाला।
22. **साध्य योग** – नम्र स्वभाव व प्रसन्न चित्त वाला, चतुर, अपने कार्य में निपुण, शत्रुओं को जीतने वाला, श्रेष्ठमन्त्रों से सब कार्य सिद्ध करने वाला, बुद्धिमान होता है।
23. **शुभ योग** – शुभ कर्म करने वाला व शुभ कर्म प्रचारक, सुन्दर वचन बोलने वाला, शुभ लक्षण वाला व शुभ उपदेश देने वाला होता है।

24. **शुक्ल योग** – महाबलशाली, जितेन्द्रिय, सत्यवादी, विवाद व संग्राम में विजय पाने वाला व ऐश्वर्यवान होता है।
25. **ब्रह्म योग** – शान्त स्वभाव, विद्याभ्यास में सदा प्रीति, सदाचारी, सदा सभा में विद्वानों के द्वारा आदर पाने वाला होता है।
26. **ऐन्द्र योग** – सरस्वती व लक्ष्मीपुत्र, सुन्दर शरीर, तेजस्वी, अपने वंश में प्रभावी व राजा समान सुख पाने वाला होता है।
27. **वैधृति योग** – कुटिल, चंचल, दुष्टों का मित्र, धीरजरहित, दुष्टविचार, भ्रमिष्ट स्वभाव, शास्त्र व धर्म भक्तिरहित होता है।

इन सताईस योगों में व्यतिपात व वैधृति योग अशुभ व शेष 25 योग शुभ माने गये है। यह 25 योग में कतिपय के आरम्भ की कुछ घटी को छोड़कर वे दोष से मुक्त समझे जाते है। इन योगों का फल इनके नाम से ही स्पष्ट व्यक्त होता है तथा इनका प्रभाव जन्म समय या कार्य आरम्भ करते समय यदि मनुष्य पर पड़ता है तो काई आश्चर्य नहीं। अत: फलादेशादि कर्त्तव्य करते समय इनका विचार ध्यान में रखना अत्यन्त आवश्यक है। जन्म जिस योग में होता है उसके अनुसार मनुष्य के स्वभाव उसका पूर्ण या आंशिक प्रमाण में प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है यह बात ध्यान में रखना आवश्यक होता है।

करण प्रशाखा –

करणानयन – तिथि का आधा भाग करण कहलाता है। कृष्णपक्ष में तिथि संख्या को सात से विभाजित करने पर प्राप्त अवशिष्ट संख्यक करण तिथि के पूर्वार्द्ध में तथा शुक्लपक्ष में दुगुनी तिथि संख्या में से 2 घटा कर सात का भाग देने पर शेषांक क्रमसंख्या वाला करण उस तिथि के पूर्वार्द्ध में अवस्थित होता है। उससे अग्रिम क्रमप्राप्त 'करण' तिथि के उत्तरार्द्ध में होता है।

प्रत्येक तिथि में दो – दो करण होते हैं, अर्थात् तिथि के आधे को करण कहते है। करणों की कुल संख्या 11 है। जिसमें बवादि 7 करण तथा किंस्तुघ्न आदि 4 करण होते है। बवादि करण चलायमान होते है, तथा किंस्तुघ्नादि 4 करण स्थिर होते है। विष्टि करण को ही भद्रा कहते है, जो सभी शुभ कार्यों में त्याज्य कहा गया है।

करण नाम –

बवं च बालवं चैवं कौलवं तैतिलं गरम्।
वणिजं विष्टिमित्याहु: करणानि महर्षय:॥
अन्ते कृष्णचतुर्दश्या: शकुनिर्दर्शभागयो:।
भवेच्चतुष्पदं नागं किंस्तुघ्नं प्रतिपद्दले॥

अथवा

बवाह्वं बालव कौलवाख्ये ततो भवेततैतिलनामधेयम् ।

गराभिधानं वणिजं च विष्टि रीत्याहुरार्या: करणानि सप्त ॥

स्पष्टार्थ चक्रम्

तिथि	पूर्वार्द्ध	उत्तरार्ध	तिथि	पूर्वार्द्ध	उत्तरार्द्ध
कृष्ण 1	बालव	कौलव	**शु. 1**	किंस्तुघ्न	बव
2	तैतिल	गर	2	बालव	कौलव
3	वणिज	विष्टि	3	तैतिल	गर
4	बव	बालव	4	वणिज	विष्टि
5	कौलव	तैतिल	5	बव	बालव
6	गर	वणिज	6	कौलव	तैतिल
7	विष्टि	बव	7	गर	वणिज
8	बालव	कौलव	8	विष्टि	बव
9	तैतिल	गर	9	बालव	कौलव
10	वणिज	विष्टि	10	तैतिल	गर
11	बव	बालव	11	वणिज	विष्टि
12	कौलव	तैतिल	12	बव	बालव
13	गर	वणिज	13	कौलव	तैतिल
14	विष्टि	शकुनि	14	गर	वणिज
30	चतुष्पद	नाग	15	विष्टि	बव

करणों की शुभाशुभता –

बवादि प्रथम करण सप्तक चर एवं शेष शकुन्यादि चतुष्टय स्थिर संज्ञक है । बवादि छः करणों में मांगलिक कर्म शुभ, भद्रा सर्वथा त्याज्य है तथा अन्तिम चार करणों में पितृ कर्म प्रशस्त है ।

मतान्तरेण – बव करण में बलवीर्य वर्धक – पौष्टिक कर्म, बालव में ब्राह्मणों के षट्कर्म (पढ़ना, पढ़ाना, यज्ञ करना - यज्ञ कराना, तथा दान का आदान - प्रदान) कौलव में स्त्रीकर्म एवं मैत्रीकरण, तैतिल में सौभाग्यवती स्त्री के प्रियकर्म, गर में बीजारोपण और हल प्रवहण, वणिज में व्यापार कर्म, भद्रा में अग्नि लगाना, विष देना, युद्धारम्भ, दण्ड देना तथा समस्त दुष्टकर्म मात्र , शकुनि में औषध निर्माण व सेवन, मन्त्र साधन तथा पौष्टिक कर्म, चतुष्पद में राज्य कर्म व गो ब्राह्मण – विषयक कर्म तथा किंस्तुघ्न करण में मंगल – जनक कर्म करना शास्त्र सम्मत है ।

करण फल –

निम्नलिखित रूप से आप करणों में उत्पन्न जातक का फल जान सकते है –

1. **बव करण** – इस करण में उत्पन्न जातक दयालु, सुशील, पण्डित, बलवान, कामी व बड़ा भाग्यवाला होता है।
2. **बालव करण** – बलशाली, शूरवीर, हास्य सहित विलास करने वाला, प्रेम से दान देने वाला, निर्मल मति और कला में तेज होता है।
3. **कौलव करण** – गम्भीर बुद्धि व मधुर वाणी वाला, मित्रों के सुख से युक्त व अनेक जनों को मान्य व कुल में श्रेष्ठ होता है।
4. **तैतिल करण** – चंचल दृष्टि, निर्मल बुद्धि, सुशील स्वभाव वाला, वार्तालाप में निपुण, कोमल व सुन्दर शरीर वाला व कला का ज्ञानी होता है।
5. **गर करण -** दूसरों के उपकार को आदर करने वाला, सूक्ष्मविचारी, शूरवीर, शत्रुओं को जीतने वाला, उदारचित्त, सुन्दर शरीर।
6. **वणिज करण -** कलाओं में निपुण, सदा हास्यमुख व विलासी, पण्डित, सबसे मान सम्मान पाने वाला और व्यापार से धन प्राप्ति करने वाला होता है।
7. **विष्टि** – सुन्दर शरीर वाला, चपल स्वभाव, दुष्टमति व निद्रावाला, अपने बुद्धि से शत्रु का नाश करने वाला होता है।
8. **शकुनि** – उत्तम बुद्धि, सम्पूर्ण गुणों से युक्त, सावधान चित्त, सब के साथ मित्रता का भाव रखने वाला अर्थात् मैत्री का भाव रखने वाला, सर्वसौभाग्य युक्त, मन्त्रविद्या में निपुण होता है।
9. **चतुष्पद करण -** दुर्बल शरीर, पशुबल व धनवाला होता है।
10. नागकरण – दुष्ट स्वभाव, उल्टा वर्तन, दुष्टात्मा, कुल का नाश करने वाला, कुलद्रोही होता है।
11. किंस्तुघ्न करण – धर्म व अधर्म समान समझने वाला, शरीर व काम में निर्बल, दुनिया में मित्र – शत्रु कायम न रहने वाला होता है।

भद्रा विचार –

मुहूर्त्त प्रकरण में विचारणीय अंगों की प्रतिभा पर भद्रा का अतीव तथा अद्वितीय अनिष्ट प्रभाव देखा गया है। अत: इसका विवेचन करना परमावश्यक है –

भद्रा व्युत्पत्ति – देवासुर संग्राम के अवसर पर महादेव की रोद्र रस सम्पन्न ऑंखों ने उनके शरीर पर दृष्टिपात किया। तत्काल उनकी देह से गर्दभ – मुख, तीन चरण, सप्तभुजा, कृष्णवर्ण, सुविकसित दॉंत, प्रेतवाहनवाली तथा मुख से अग्नि उगलती हुई देवी का प्रादुर्भाव हुआ। प्रस्तुत देवी ने राक्षसों का शमन करके देवताओं को निश्चिन्त कर दिया। अत: सुरगणों ने प्रसन्न होकर उसे सम्मान देने के उद्देश्य से, विष्टि भद्रादि संज्ञाओं से विभूषित करके करणों में स्थापित किया। पाठकों

को भद्रा लोकवास को समझने के लिये निम्नलिखित चक्र को देखना चाहिये -

भद्रा लोकवास: -

मृत्यु	**स्वर्ग**	**पाताल**	**लोक वास**
4,5,11,12	1,2,3,8	6,7,9,10	चन्द्रराशि
सम्मुख	उर्ध्वमुख	अधोमुख	भद्रा – सुख

भद्रा का जिस दिन जहॉं वास होता है, वहॉं उस दिन उस स्थान के लिये उसका फल अशुभ होता है। मृत्यु लोक में स्थित, तथा सम्मुख भद्रा में शुभ कृत्य व प्रयाण परिवर्ज्य है।

भ्रदा दिग्वास – तिथि भेद से भद्रा का दिशा विशेष में वास –

तिथि	3	4	7	8	10	11	14	15
दिग्वास	ईशान	पश्चिम	दक्षिण	आग्नेय	वायव्य	उत्तर	पूर्व	नैऋत्य

भद्रा निर्णय –

शुक्ले पूर्वाधेऽष्टमी पंचदश्योर्भद्रैकाश्यां चतुर्थ्यां परार्धे।

कृष्णेऽन्त्यार्धे स्यात्तृतीया दशम्यो: पूर्वे भागे सप्तमी शम्भुतिथ्यो: ॥

शुक्लपक्ष में अष्टमी और पंचदशी के पूर्वार्ध में, एकादशी और चतुर्थी के परार्द्ध में एवं कृष्णपक्ष में तृतीया और दशमी के परार्द्ध में, सप्तमी और चतुर्दशी के पूर्वार्द्ध में भद्रा होती है।

भद्रा के मुख – पुच्छ संज्ञा –

पंचद्वयद्रिकृताष्टरामरसभूयामादिघटय: शरा

विष्टेरास्यमसद्गजेन्दुरसरामाद्रयश्विबाणाब्धिषु।

यामेष्वन्त्यघटीत्रयं शुभकरं पुच्छं तथा वासरे

विष्टिस्तिथ्यपरार्धजा शुभकरी रात्रौ तु पूर्वार्द्धजा ॥

शुक्लपक्ष की चतुर्थी तिथि में 5 प्रहर, अष्टमी में 2 प्रहर, एकादशी में 7 प्रहर, पूर्णिमा में 4 प्रहर की और कृष्णपक्ष की तृतीया में 8 प्रहर, सप्तमी में 3 प्रहर, दशमी में 6 प्रहर, चतुर्दशी में 1 प्रहर की आरम्भ की पॉच घटी भद्रा का मुख है, जो अशुभ है। तथा शुक्लपक्ष की चतुर्थी में 8 प्रहर, अष्टमी में 1 प्रहर, एकादशी में 6 प्रहर, पूर्णिमा में 3 प्रहर की और कृष्णपक्ष की तृतीया में 7 प्रहर, सप्तमी में 2 प्रहर, दशमी में 5 प्रहर, चतुर्दशी में 4 प्रहर की तीन घटी पुच्छ है, जो शुभ है।

परार्द्ध की भद्रा दिन में आ जाये और पूर्वार्द्ध की रात्रि में चली जाये तो भद्रा दोष नहीं लगता। यह भद्रा सुख को देने वाली होती है। यथा –

दिवाभद्रा यदा रात्रौ रात्रिभद्रा यदा दिने।

तदा विष्टिकृतो दोषो न भवेत्सर्व सौख्यदा ॥

भद्रा में कृत्य –

विवादे शत्रुसंहारे भयार्ते राजदर्शने।

रोगार्ते वैद्यगमने भद्रा श्रेष्ठतमा स्मृता ।।

भद्राज्ञान चक्र

3	10	कृष्णपक्ष	परार्द्ध	भद्रानिवास	स्थान
7	14	कृष्णपक्ष	पूर्वार्द्ध	मे. वृ. मि. वृ.	स्वर्ग
4	11	शुक्लपक्ष	परार्द्ध	क.ध. तु. म.	पाताल
8	15	शुक्लपक्ष	पूर्वार्द्ध	कु.मी. क. सि	पृथ्वी

शुक्लपक्ष तिथि **कृष्णपक्ष तिथि**

तिथि	4	8	11	15	3	7	10	14
भद्रा	परार्द्ध	पूर्वार्द्ध	परार्द्ध	पूर्वार्द्ध	परार्द्ध	पूर्वार्द्ध	परार्द्ध	पूर्वार्द्ध
प्रहर	5	2	7	4	8	3	6	1
मुख घ.	5	5	5	5	5	5	5	5
प्रहर	8	1	6	3	7	2	5	4
पु. घ .	3	3	3	3	3	3	3	3

भद्रा अंग विभाग –

प्राय: एक तिथि का अर्धभाग 30 घटी परिमित होता है। अत: तदनुसार भद्रा के विभिन्न अंगों में यथा प्रदिष्ट घटियों का न्यास और तज्जनित फल –

घटी	5	1	11	4	6	3
भद्रांग	मुख	गर्दन	वक्ष:स्थल	नाभि	कमर	पुच्छ
फल	कार्यनाश	मृत्यु	द्रव्यनाश	कलह	बुद्धिनाश	कार्यसिद्धि

अत: तात्पर्य हैं कि प्रत्येक भद्रा की अन्तिम तीन घटियों में शुभ कार्य किये जा सकते है।

भद्रा की विशेष संज्ञायें –

विभिन्न तिथियों में विद्यमान भद्रा को पक्ष – भेद के अनुसार संज्ञायें प्रदान की गई है। कृष्ण पक्ष की भद्रा को पक्ष भेद के अनुसार संज्ञायें प्रदान की गई है। कृष्ण पक्ष की भ्रदा को वृश्चिकी तथा शुक्ल पक्ष की भद्रा को सर्पिणी के रूप में बतलाया गया है। बिच्छू का विष डंक में तथा सर्प का विष मुख में होने के कारण वृश्चिकी भद्रा की पुच्छ और सर्पिणी भद्रा का मुख विशेषत: त्याज्य है।

भद्रा में कार्याकार्य – विष्टि काल में किसी को बॉधना या कैद करना, विष देना, अग्नि लगाना, अस्त्र - शस्त्र का प्रयोग, किसी वस्तु को काटना, भैंस, घोड़ा और उँट सम्बन्धी अखिल कर्म तथा उच्चाटनादि कर्म प्रशस्त हैं। परं च, विवाहादि मांगलिक कृत्य, यात्रा और गेहारम्भ व गृहप्रवेश भद्रा में जघन्य कहे गये है।

भद्रापवाद –

1. यदि दिन की भद्रा रात्रि को और रात्रि की भद्रा दिन को आ जाये तो भद्रा निर्दोष हो जाती है **यथा** –

   रात्रिभद्रा यदह्नि स्याद् दिवा भद्रा यदा निशि । न तत्र भद्रादोषः स्यात् सा भद्रा भद्रदायिनी ॥ (मुहूर्त्त चिन्तामणि पीयूषधारा)

2. शास्त्रों की यह सम्मति है कि भौमवार, भद्रा, व्यतीपात, वैधृति तथा प्रत्यरि, जन्म तारादि **मध्याह्न** के उपरान्त शुभ होते है। **(योग प्रशाखा)**

3. मीन संक्रान्ति में महादेव व गणेश की आराधना - अर्चना में, देवी पूजा हवनादिक में **तथा** विष्णु सूर्य साधन में भद्रा सर्वदा शुभकारक होती है।

   स्यातु भद्राय भद्रा न शंभोर्जपे मीनराशिर्न यागस्तथाप्यर्चने।

   होमकाले शिवायास्तमा तद्ध्रुवः साधने सर्वकालोऽथ मेशेनयोः ॥

विशेष – तिथि का मध्यम मान 60 घटी भोग मानकर मुख – पुच्छ की घटी कही गयी है। इसीलिये 60 घटी में 5 घटी मुख और 3 घटी पुच्छ है तो स्पष्ट तिथि भोग घटी में क्या ? इस प्रकार त्रैराशिक से स्पष्ट मुख पुच्छ घटी मान समझना, अर्थात् स्पष्टतिथि का 12 वॉ भाग मुख और 20 वॉ भाग पुच्छ घटी होती है। तथा इसी प्रकार तिथि का अष्टमांश प्रहर समझना चाहिये।

शुभकार्य परमावश्यक हो और उस दिन अन्य कोई कुयोग न हो तभी भद्रा का त्याग करना ही महर्षियों ने श्रेयस्कर कहा है।

5.5 सारांशः

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि भूकेन्द्रीय दृष्टि से सूर्य – चन्द्रमा की गति का योग जब एक नक्षत्र भोगकला (800 कला) तुल्य होता है, तब एक योग की उत्पत्ति होती है। सामान्य रूप में योग का अर्थ होता है – जोड़। सूर्य व चन्द्रमा के स्पष्ट राश्यिादि के जोड़ को ही 'योग' कहते है। इनकी संख्या 27 है – विष्कुम्भ, प्रीति, आयुष्मान, सौभाग्य, शोभन, अतिगण्ड, सुकर्मा, धृति, शूल, गण्ड, वृद्धि, ध्रुव, व्याघात, हर्षण, वज्र, सिद्धि, व्यतीपात, वरीयान, परिघ, शिव, सिद्ध, साध्य, शुभ, शुक्ल, ब्रह्म, ऐन्द्र, वैधृति। ये 27 योग होते है। ये अपने – अपने नामानुसार शुभाशुभ फल देते हैं। अर्थात् इनमें – विष्कुम्भ, वज्र, गण्ड, अतिगण्ड, व्याघात, शूल, वैधृति, व्यतीपात, परिघ ये 9 योग अशुभ और शेष योग शुभ हैं। मुहूर्त्त जगत में योग को दो श्रेणियों में विभाजित किया गया है – नैसर्गिक व तात्कालिक। नैसर्गिक योगों का सदैव एक ही क्रम रहता है और एक के बाद एक आते रहते हैं। विष्कंभादि 27 योग नैसर्गिक श्रेणी गत हैं। परन्तु तात्कालिक योग - तिथि – वार- नक्षत्रादि के विशेष संगम से बनते है। आनन्द प्रभृति एवं क्रकच, उत्पात, सिद्धि, तथा मृत्यु आदि योग तात्कालिक है। विष्कम्भादि योग – किसी भी दिन विष्कम्भादि वर्तमान योग ज्ञात करने के लिये पुष्य नक्षत्र से सूर्यर्क्ष तक तथा श्रवण नक्षत्र से दिन नक्षत्र तक गणना करके दोनों प्राप्त संख्याओं के योग में 27 का भाग देने पर अवशिष्टांकों के अनुसार विष्कम्भादि यथा क्रम योग

जानना चाहिये। विष्कम्भादि 27 योगों को इस चक्र द्वारा भी समझा जा सकता है। प्रस्तुत इकाई में योग, करण एवं भद्रा से सम्बन्धित विषयों का उल्लेख किया गया है। जिसका ज्ञान ज्योतिष के आधारभूत सिद्धान्त को समझने के लिये परमावश्यक है। पंचांग ज्ञान में भी योग करण एवं भद्रा का ज्ञान किया जाता है। अत: इसके ज्ञान से आप पंचांग का ज्ञान भी प्राप्त कर सकते है।

5.6 पारिभाषिक शब्दावली

योग – योग दो प्रकार के होते है – एक आनन्दादि योग एवं दूसरा विष्कम्भादि योग। इनकी संख्या 27 होती है।

करण – करण 11 प्रकार के होते है। जिनमें 7 चलायमान तथा 4 स्थिर करण होते है।

भद्रा – विष्टि नामक करण भद्रा कहलाती है।

सर्वार्थसिद्धि – सभी प्रकार के सिद्धि को देने वाला।

निवारण – उपाय

तात्कालिक – वर्तमान समय का

वार्तालाप- बातचीत

सर्वत्र – सभी जगह

त्याज्य – जो ग्रहण करने योग्य न हो

5.7 बोधप्रश्नों के उत्तर

1. ख
2. घ
3. ग
4. क
5. ग

5.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. ज्योतिष सर्वस्व
2. मुहूर्त्तपारिजात
3. वृहज्ज्यौतिषसार
4. वृहत्पराशरहोराशास्त्र
5. अवकहड़ाचक्रम्

5.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. योग, करण, एवं भद्रा को परिभाषित करते हुये सविस्तार उल्लेख कीजिये ।
2. योग एवं करण के प्रकार को बतलाते हुये उसका विस्तृत वर्णन कीजिये।

खण्ड – 2

संस्कार मुहूर्त्त

इकाई – 1 संस्कार परिचय

इकाई की संरचना

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 संस्कारों का परिचय
1.3.1 संस्कार : परिभाषा व स्वरूप
बोध प्रश्न
1.4. संस्कारों का महत्व
1.5 सारांशः
1.6 पारिभाषिक शब्दावली
1.7 बोधप्रश्नों के उत्तर
1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना -

प्रस्तुत इकाई प्रथम खण्ड के '**संस्कार परिचय' नामक** शीर्षक से संबंधित है। **संस्कार** त्रिस्कन्ध ज्योतिष में जातक स्कन्ध के एक महत्वूर्ण विषय के रूप में जाना जाता है। भारतीय सनातन धर्म की संस्कृति संस्कारों पर ही आधारित है। हमारे ऋषि-मुनियों ने मानव जीवन को पवित्र एवं मर्यादित बनाने के लिये संस्कारों का अविष्कार किया। धार्मिक ही नहीं वैज्ञानिक दृष्टि से भी इन संस्कारों का हमारे जीवन में विशेष महत्व है। भारतीय संस्कृति की महानता में इन संस्कारों का महती योगदान है।

मानव जीवन को विशुद्ध और उन्नत बनाने के उद्देश्य से प्राचीन आचार्यों द्वारा संचालित व्यवस्था का नाम '**संस्कार**' है।

इससे पूर्व की इकाईयों में आपने मुहूर्त्त, तिथि, वार, योग, करण एवं भद्रादि विषयों का सम्यक् अध्ययन कर लिया है, अब इस इकाई में यहॉ संस्कारों का विधिवत् अध्ययन प्राप्त करेंगे। आशा है पाठकगण भारतीय संस्कृति का मूल संस्कार के बारें में अध्ययन कर लाभान्वित होंगे।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप-

1. संस्कार को परिभाषित करने में समर्थ हो सकेंगे।
2. संस्कार के महत्त्व को समझा सकेंगे।
3. संस्कार के विभेद का निरूपण करने में समर्थ होंगे।
4. संस्कार का स्वरूप वर्णन करने में समर्थ होंगे।
5. संस्कार के सम्बन्ध को निरूपित करने में समर्थ होंगे।

1.3 संस्कारों का परिचय

प्राचीन काल में हमारा प्रत्येक कार्य संस्कार से आरम्भ होता था। उस समय संस्कारों की संख्या भी लगभग चालीस थी। जैसे-जैसे समय बदलता गया तथा व्यस्तता बढती गई तो कुछ संस्कार स्वत: विलुप्त हो गये। इस प्रकार समयानुसार संशोधित होकर संस्कारों की संख्या निर्धारित होती गई। गौतम स्मृति में चालीस प्रकार के संस्कारों का उल्लेख है। महर्षि अंगिरा ने इनका अंतर्भाव पच्चीस संस्कारों में किया। व्यास स्मृति में सोलह संस्कारों का वर्णन हुआ है। हमारे धर्मशास्त्रों में भी मुख्य रूप से सोलह संस्कारों की व्याख्या की गई है। इनमें पहला गर्भाधान संस्कार और मृत्यु के उपरांत अंत्येष्टि अंतिम संस्कार है। गर्भाधान के बाद पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण ये सभी संस्कार नवजात का दैवी जगत् से संबंध स्थापना के लिये किये जाते हैं।

नामकरण के बाद चूडाकर्म और यज्ञोपवीत संस्कार होता है। इसके बाद विवाह संस्कार होता है। यह गृहस्थ जीवन का सर्वाधिक महत्वपूर्ण संस्कार है। हिन्दू धर्म में स्त्री और पुरुष दोनों के लिये यह

सबसे बडा संस्कार है, जो जन्म-जन्मान्तर का होता है।

विभिन्न धर्मग्रंथों में संस्कारों के क्रम में थोडा-बहुत अन्तर है, लेकिन प्रचलित संस्कारों के क्रम में गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूडाकर्म, विद्यारंभ, कर्णवेध, यज्ञोपवीत, वेदारम्भ, केशान्त, समावर्तन, विवाह तथा अन्त्येष्टि ही मान्य है।

गर्भाधान से विद्यारंभ तक के संस्कारों को गर्भ संस्कार भी कहते हैं। इनमें पहले तीन (गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन) को अन्तर्गर्भ संस्कार तथा इसके बाद के छह संस्कारों को बहिर्गर्भ संस्कार कहते हैं। गर्भ संस्कार को दोष मार्जन अथवा शोधक संस्कार भी कहा जाता है। दोष मार्जन संस्कार का तात्पर्य यह है कि शिशु के पूर्व जन्मों से आये धर्म एवं कर्म से सम्बन्धित दोषों तथा गर्भ में आई विकृतियों के मार्जन के लिये संस्कार किये जाते हैं। बाद वाले छह संस्कारों को गुणाधान संस्कार कहा जाता है। दोष मार्जन के बाद मनुष्य के सुप्त गुणों की अभिवृद्धि के लिये ये संस्कार किये जाते हैं। हमारे मनीषियों ने हमें सुसंस्कृत तथा सामाजिक बनाने के लिये अपने अथक प्रयासों और शोधों के बल पर ये संस्कार स्थापित किये हैं। इन्हीं संस्कारों के कारण भारतीय संस्कृति अद्वितीय है। हालांकि हाल के कुछ वर्षो में आपाधापी की जिंदगी और अतिव्यस्तता के कारण सनातन धर्मावलम्बी अब इन मूल्यों को भुलाने लगे हैं और इसके परिणाम भी चारित्रिक गिरावट, संवेदनहीनता, असामाजिकता और गुरुजनों की अवज्ञा या अनुशासनहीनता के रूप में हमारे सामने आने लगे हैं। समय के अनुसार बदलाव जरूरी है लेकिन हमारे मनीषियों द्वारा स्थापित मूलभूत सिद्धांतों की उपेक्षा करना कभी श्रेयस्कर नहीं हो सकता । जब जब मानवों द्वारा उसके मूल सिद्धान्तों की उपेक्षा किया गया तब तब परिणाम भयंकर एवं विनाशकारी हुआ है, इतिहास से हमें प्राप्त होता रहा है । अत: अपनी मूल संस्कृति एवं संस्कार की त्याग मानव को कभी नहीं करना चाहिये ।

1.3.1 संस्कार परिभाषा व स्वरूप

सम उपसर्ग पूर्वक कृ धातु से संस्कार शब्द का निर्माण करण अर्थ में हुआ है । जिसका अर्थ है – विधिपूर्वक करना । भारतीय सनातन परम्परा में संस्कार का अर्थ है – शुद्धिकरण । मन, वाणी एवं शरीर तीनों प्रकार से विशुद्ध होने वाली शुद्धिकरण की प्रक्रिया का नाम **'संस्कार'** है । ये हमें हमारे ऋषि एवं मुनियों से विरासत में मिली है । प्राचीन भारतीय ग्रन्थों में व्यक्ति निर्माण की बात कही गई है । इस कार्य में संस्कार का मुख्य प्रयोजन है । संस्कार के बिना व्यक्ति निर्माण की बात सम्भव ही नहीं । व्यक्ति निर्माण से तात्पर्य ऐसे व्यक्ति से है जो अपने परिवार का, समाज का, स्वदेश का कुशल नेतृत्व करते हुये धर्म और आदर्श की मर्यादा स्थापित करे । प्रतिकूल परिस्थितियों में भी अपना व अपने देश की रक्षा करने में पूर्ण समर्थ हो । ऐसे आदर्श व्यक्तित्व का निर्माण संस्कार के बिना असम्भव है ।

प्राचीन स्वरूप –

ऋग्वेद में संस्कारों का उल्लेख नहीं है, किन्तु इस ग्रंथ के कुछ सूक्तों में विवाह, गर्भाधान और

अन्त्येष्टि से संबंधित कुछ धार्मिक कृत्यों का वर्णन मिलता है। यजुर्वेद में केवल श्रौत यज्ञों का उल्लेख है, इसलिए इस ग्रंथ के संस्कारों की विशेष जानकारी नहीं मिलती। अथर्ववेद में विवाह, अंत्येष्टि और गर्भाधान संस्कारों का पहले से अधिक विस्तृत वर्णन मिलता है। गोपथ और शतपथ ब्राह्मणों में उपनयन, गोदान संस्कारों के धार्मिक कृत्यों का उल्लेख मिलता है। तैतिरीय उपनिषद् में शिक्षा समाप्ति पर आचार्य की दीक्षान्त शिक्षा मिलती है।

इस प्रकार गृह्यसूत्रों से पूर्व हमें संस्कारों के पूरे नियम नहीं मिलते। ऐसा प्रतीत होता है कि गृहसूत्रों से पूर्व पारंपरिक प्रथाओं के आधार पर ही संस्कार होते थे। सबसे पहले गृहसूत्रों में ही संस्कारों की पूरी पद्धति का वर्णन मिलता है। गृह्यसूत्रों में संस्कारों के वर्णन में सबसे पहले विवाह संस्कार का उल्लेख है। इसके बादगर्भाधान,पुंसवनं, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूड़ाकर्म, उपनयन और समावर्तन संस्कारों का वर्णन किया गया है। अधिकतर गृह्यसूत्रों में अंत्येष्टि संस्कार का वर्णन नहीं मिलता, क्योंकि ऐसा करना अशुभ समझा जाता था। स्मृतियों के आचार प्रकरणों में संस्कारों का उल्लेख है और तत्संबंधी नियम दिए गए हैं। इनमें उपनयन और विवाह संस्कारों का वर्णन विस्तार के साथ दिया गया है, क्योंकि उपनयन संस्कार के द्वारा व्यक्ति ब्रह्मचर्य आश्रम में और विवाह संस्कार के द्वारा गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करता था।

संस्कार का अभिप्राय उन धार्मिक कृत्यों से था जो किसी व्यक्ति को अपने समुदाय का पूर्ण रुप से योग्य सदस्य बनाने के उद्देश्य से उसके शरीर, मन और मस्तिष्क को पवित्र करने के लिए किए जाते थे, किंतु हिंदू संस्कारों का उद्देश्य व्यक्ति में अभीष्ट गुणों को जन्म देना भी था। वैदिक साहित्य में "संस्कार' शब्द का प्रयोग नहीं मिलता। संस्कारों का विवेचन मुख्य रुप से गृह्यसूत्रों में ही मिलता है, किंतु इनमें भी संस्कार शब्द का प्रयोग यज्ञ सामग्री के पवित्रीकरण के अर्थ में किया गया है। वैखानस स्मृति सूत्र (200 से 500 ई.) में सबसे पहले शरीर संबंधी संस्कारों और यज्ञों में स्पष्ट अंतर मिलता है।मनु और याज्ञवल्क्य के अनुसार संस्कारों से द्विजों के गर्भ और बीज के दोषादि की शुद्धि होती है। कुमारिल (ई. आठवीं सदी) ने तंत्रवार्तिक ग्रंथ में इसके कुछ भिन्न विचार प्रकट किए हैं। उनके अनुसार मनुष्य दो प्रकार से योग्य बनता है - पूर्व- कर्म के दोषों को दूर करने से और नए गुणों के उत्पादन से। संस्कार ये दोनों ही काम करते हैं। इस प्रकार प्राचीन भारत में संस्कारों का मनुष्य के जीवन में विशेष महत्व था। संस्कारों के द्वारा मनुष्य अपनी सहज प्रवृतियों का पूर्ण विकास करके अपना और समाज दोनों का कल्याण करता था। ये संस्कार इस जीवन में ही मनुष्य को पवित्र नहीं करते थे, उसके पारलौकिक जीवन को भी पवित्र बनाते थे। प्रत्येक संस्कार से पूर्व होम किया जाता था, किंतु व्यक्ति जिस गृह्यसूत्र का अनुकरण करता हो, उसी के अनुसार आहुतियों की संख्या, हव्यपदार्थों और मन्त्रों के प्रयोग में अलग- अलग परिवारों में भिन्नता होती थी।

आधुनिक स्वरूप – वर्तमान वैज्ञानिक युग में संस्कार लुप्तप्राय: होते जा रहे है। इस अर्थप्रधान युग में अब संस्कार और धर्म की बात न होकर अर्थ और अनर्थ की बातें होने लगी है। अब लोग पाश्चात्य संस्कृति और संस्कारों से जुड़ते जा रहे है। उन्हें हिन्दी बोलने में शर्म महसूस होती है, संस्कार क्या करेंगे। उन्हें बर्थडे मनाना अच्छा लगता है। पार्टीज अटैन्ड करना, पाश्चात्य रहन – सहन को जीने में वे गर्व महसूस करते है। भारतीय संस्कार और संस्कृति उन्हें अच्छी नहीं लगती है। यह विडम्बना नहीं तो और क्या है। अभी भी जो पुरानी पीढ़ीया हमारे साथ है, वे प्राचीन भारतीय

संस्कृति और संस्कारों का ही पालन करती है, एवं उसे पालन करने के लिये अपने व अपने जुड़े तत्वों को प्रेरित करती है।

गौतम धर्मसूत्र में संस्कारों की संख्या **चालीस** लिखी है। ये चालीस संस्कार निम्नलिखित हैं:-

1. गर्भाधान
2. पुंसवन
3. सीमंतोन्नयन
4. जातकर्म
5. नामकरण
6. अन्न प्राशन
7 चौल,
8. उपनयन

9-12. वेदों के चार व्रत,

13. स्नान,
14. विवाह

15-19 पंच दैनिक महायज्ञ,

20-26 सात पाकयज्ञ,

27-33 सात हविर्यज्ञ,

34-40 सात सोमयज्ञ।

किंतु अधिकतर धर्मशास्त्रों ने वेदों के चार व्रतों, पंच दैनिक महा यज्ञों, सात पाक यज्ञों, सात हवि र्यज्ञों और सात सोम यज्ञों का वर्णन संस्कारों में नहीं किया है।

मनु के अनुसार संस्कार –

मनु ने गर्भाधान, पुंसवन, सीमंतोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूड़ाकर्म, उपनयन, केशांत, समावर्तन, विवाह और श्मशान, इन तेरह संस्कारों का उल्लेख किया है। **याज्ञवल्क्य** ने भी इन्हीं संस्कारों का वर्णन किया है। केवल केशांत का वर्णन उसमें नहीं मिलता है, क्योंकि इस काल तक वैदिक ग्रंथों के अध्ययन का प्रचलन बंद हो गया था। बाद में रची गई पद्धतियों में संस्कारों की संख्या सोलह दी है, किंतु गौतम धर्मसूत्र और गृह्यसूत्रों में अंत्येष्टि संस्कार का उल्लेख नहीं है, क्योंकि अंत्येष्टि संस्कार का वर्णन करना अशुभ माना जाता था। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अपनी संस्कार विधि तथा **पंडित भीमसेन शर्मा** ने अपनी षोडश संस्कार विधि में **सोलह संस्कारों** का ही वर्णन किया है। इन दोनों लेखकों ने अंत्येष्टि को सोलह संस्कारों में सम्मिलित किया है। गर्भावस्था में गर्भाधान, पुंसवन और सीमंतोन्नयन तीन संस्कार होते हैं। इन तीनों का उद्देश्य माता- पिता की जीवन- चर्या इस प्रकार की बनाना है कि बालक अच्छे संस्कारों को लेकर जन्म ले। जात- कर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, मुंडन, कर्ण बेध, ये छः संस्कार पाँच वर्ष की आयु में समाप्त हो जाते हैं। बाल्यकाल में ही मनुष्य की आदतें बनती हैं, अतः ये संस्कार बहुत जल्दी- जल्दी रखे गये हैं। उपनयन और वेदारंभ संस्कार ब्रह्मचर्याश्रम के प्रारंभ में प्रायः साथ- साथ होते थे। समावर्तन और विवाह संस्कार गृहस्थाश्रम के पूर्व होते हैं। उन्हें भी साथ- साथ समझना

चाहिए। वानप्रस्थ और संन्यास संस्कार इन दोनों आश्रमों की भूमिका मात्र हैं। अंत्येष्टि, संस्कार का मृतक की आत्मा से संबंध नहीं होता। उसका उद्देश्य तो मृत पुरुष के शरीर को सुगंधित पदार्थों सहित जलाकर वायु मण्डल में फैलाना है, जिससे दुर्गंध आदि न फैले।

इन संस्कारोंका उद्देश्य इस प्रकार है : १. बीजदोष न्यून करने हेतु संस्कार किए जाते हैं। २. गर्भदोष न्यून करने हेतु संस्कार किए जाते हैं।

जीवात्मा जब एक शरीर को त्याग कर दूसरे शरीर में जन्म लेना है, तो उसके पूर्व जन्म के प्रभाव उसके साथ जाते हैं। इन प्रभावों का वाहक सूक्ष्म शरीर होता है, जो जीवात्मा के साथ एक स्थूल शरीर से दूसरे स्थूल शरीर में जाता है। इन प्रभावों में कुछ बुरे होते हैं और कुछ भले। बच्चा भले और बुरे प्रभावों को लेकर नए जीवन में प्रवेश करता है। संस्कारों का उद्देश्य है कि पूर्व जन्म के बुरे प्रभावों का धीरे- धीरे अंत हो जाए और अच्छे प्रभावों की उन्नति हो। संस्कार के दो रुप होते हैं - एक आंतरिक रुप और दूसरा बाह्य रुप। बाह्य रुप का नाम रीतिरिवाज है। यह आंतरिक रुप की रक्षा करता है। हमारा इस जीवन में प्रवेश करने का मुख्य प्रयोजन यह है कि पूर्व जन्म में जिस अवस्था तक हम आत्मिक उन्नति कर चुके हैं, इस जन्म में उससे अधिक उन्नति करें। आंतरिक रुप हमारी जीवन- चर्या है। यह कुछ नियमों पर आधारित हो तभी मनुष्य आत्मिक उन्नति कर सकता है।

बोध प्रश्न –

1. संस्कार शब्द का निर्माण किस धातु से हुआ है।

क. क्री ख. सम ग. कृ घ. क्रो

2. महर्षि गौतम के मत में संस्कारों की संख्या है।

क. 30 ख. 40 ग. 50 घ. 16

3. महर्षि मनु के मत में संस्कारों की संख्या है।

क. 16 ख. 15 ग. 13 घ. 40

4. संस्कार का अर्थ है –

क. ग्रहण ख. शुद्धिकरण ग. करण घ. कोई नही

5. पण्डित भीमसेन शर्मा के मत में संस्कारों की संख्या है।

क. 15 ख. 16 ग. 17 घ. 18

1.4 संस्कारों का महत्व

हमारे ऋषि-मुनियों ने मानव जीवन को पवित्र एवं मर्यादित बनाने के लिये संस्कारों का अविष्कार किया। धार्मिक ही नहीं वैज्ञानिक दृष्टि से भी इन संस्कारों का हमारे जीवन में विशेष महत्व है। भारतीय संस्कृति की महानता में इन संस्कारों का महती योगदान है।

हमारे मनीषियों ने हमें सुसंस्कृत तथा सामाजिक बनाने के लिये अपने अथक प्रयासों और शोधों के बल पर ये संस्कार स्थापित किये हैं। इन्हीं संस्कारों के कारण भारतीय संस्कृति अद्वितीय है। हालांकि

हाल के कुछ वर्षो में आपाधापी की जिंदगी और अतिव्यस्तता के कारण सनातन धर्मावलम्बी अब इन मूल्यों को भुलाने लगे हैं और इसके परिणाम भी चारित्रिक गिरावट, संवेदनहीनता, असामाजिकता और गुरुजनों की अवज्ञा या अनुशासनहीनता के रूप में हमारे सामने आने लगे हैं। संस्कारों के अध्ययन से पता चलता है कि उनका सम्बन्ध संपूर्ण मानव जीवन से रहा है। मानव जीवन एक महान रहस्य है। संस्कार इसके उद्भव, विकास और ह्रास होने की समस्याओं का समाधान करते थे। जीवन भी संसार की अन्य कलाओं के समान कला माना जाता है। उस कला की जानकारी तथा परिष्करण संस्कारों द्वारा होता था। संस्कार पशुता को भी मनुष्यता में परिणत कर देते थे।

जीवन एक चक्र माना गया है। यह वहीं आरम्भ होता है, जहाँ उसका अंत होता है। जन्म से मृत्यु पर्यंत जीवित रहने, विषय भोग तथा सुख प्राप्त करने, चिंतन करने तथा अंत में इस संसार से प्रस्थान करने की अनेक घटनाओं की श्रृंखला ही जीवन है। संस्कारों का सम्बन्ध जीवन की इन सभी घटनाओं से था।

हिंदू धर्म में संस्कारों का स्थान- संस्कारों का हिंदू धर्म में महत्वपूर्ण स्थान था। प्राचीन समय में जीवन विभिन्न खंडों में विभाजन नहीं, बल्कि सादा था। सामाजिक विश्वास कला और विज्ञान एक-दूसरे से सम्बंधित थे। संस्कारों का महत्व हिंदू धर्म में इस कारण था कि उनके द्वारा ऐसा वातावरण पैदा किया जाता था, जिससे व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास हो सके। हिंदुओं ने जीवन के तीन निश्चित मार्गों को मान्यता प्रदान की - 1. कर्म- मार्ग, 2. उपासना- मार्ग तथा 3. ज्ञान- मार्ग। यद्यपि मूलतः संस्कार अपने क्षेत्र की दृष्टि से अत्यंत व्यापक थे, किंतु आगे चलकर उनका समावेश कर्म- मार्ग में किया जाने लगा। वे एक प्रकार से उपासना- मार्ग तथा ज्ञान- मार्ग के लिए भी तैयारी के साधन थे। कुछ मनीषियों ने संस्कारों का उपहास किया है, क्योंकि उनका सम्बन्ध सांसारिक कार्यों से था। उनके अनुसार संस्कारों द्वारा इस संसार सागर को पार नहीं किया जा सकता। साथ में हिंदू विचारकों ने यह भी अनुभव किया कि बिना संस्कारों के लोग नहीं रह सकते। आधार- शिला के रुप में स्वतंत्र विधि- विधान एवं परम्परा के न होने से चार्वाक् मत का अंत हो गया। यही कारण था, जिससे जैनों और बौद्धों को भी अपने स्वतंत्र कर्मकाण्ड विकसित करने पड़े। पौराणिक हिंदू धर्म के साथ वैदिक धर्म का ह्रास हुआ। इसके परिणाम- स्वरुप, जो संस्कार घर पर होते थे, वे अब मंदिरों और तीर्थस्थानों पर किये जाने लगे। यद्यपि दीर्घ तथा विस्तृत यज्ञ प्रचलित नहीं रहे, किंतु संस्कार जैसे यज्ञोपवीत तथा चूड़ाकरण, कुछ परिवर्तण के साथ वर्तमान समय में भी जारी हैं। प्राचीन समय में संस्कार बड़े उपयोगी सिद्ध हुए। उनसे व्यक्तित्व के विकास में बड़ी सहायता मिली। मानव जीवन को संस्कारों ने परिष्कृत और शुद्ध किया तथा उसकी भौतिक तथा आध्यात्मिक आकांक्षाओं को पूर्ण किया। अनेक सामाजिक समस्याओं का समाधान भी इन संस्कारों द्वारा हुआ। गर्भाधान तथा अन्य प्राक्- जन्म संस्कार, यौनविज्ञान और प्रजनन- शास्त्र का कार्य करते थे। इसी प्रकार विद्यारम्भ तथा उपनयन से समावर्तन पर्यंत सभी संस्कार शिक्षा की दृष्टि से अत्यंत महत्व के थे। विवाह संस्कार अनेक यौन तथा सामाजिक समस्याओं का ठीक हल थे। अंतिम संस्कार, अंत्येष्टि, मृतक तथा जीवित के प्रति गृहस्थ के कर्तव्यों में सामंजस्य स्थापित करता था। वह तथा पारिवारिक और सामाजिक स्वास्थ्य विज्ञान का एक विस्मयजनक समन्वय था तथा जीवित सम्बन्धियों को सांत्वना

प्रदान करता था।

संस्कारों का ह्रास –

आंतरिक दुर्बलताओं तथा बाह्य विषय परिस्थितियों के कारण कालक्रम से संस्कारों का भी ह्रास हुआ। उनसे लचीलापन तथा परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तन की क्षमता नहीं रही, इनमें स्थायित्व आ गया। नवीन सामाजिक व धार्मिक शक्तियाँ समाज में क्रियाशील थी। बौद्ध धर्म, जैन धर्म तथा भक्ति मार्ग ने जनसाधारण का ध्यान कर्मकाण्ड से हटा कर भक्ति की ओर आकर्षित किया। भाषागत कठिनता भी संस्कारों के ह्रास के लिए उत्तरदायी थी। समाज का आदिम स्थिति से विकास और मानवीय क्रियाओं की विविध शाखाओं का विशेषीकरण भी संस्कारों के ह्रास का कारण सिद्ध हुआ। इस्लाम के उदय के पश्चात् संस्कारों की विभिन्न क्रियाओं को स्वतंत्रता पूर्वक करना सम्भव नहीं था। पाश्चात्य शिक्षा- पद्धति और भौतिक विचारधारा से भी इनको बड़ा धक्का लगा।

1.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन से आपने जाना कि प्राचीन काल में हमारा प्रत्येक कार्य संस्कार से आरम्भ होता था। उस समय संस्कारों की संख्या भी लगभग चालीस थी। जैसे-जैसे समय बदलता गया तथा व्यस्तता बढती गई तो कुछ संस्कार स्वत: विलुप्त हो गये । इस प्रकार समयानुसार संशोधित होकर संस्कारों की संख्या निर्धारित होती गई। गौतम स्मृति में चालीस प्रकार के संस्कारों का उल्लेख है। महर्षि अंगिरा ने इनका अंतर्भाव पच्चीस संस्कारों में किया। व्यास स्मृति में सोलह संस्कारों का वर्णन हुआ है। हमारे धर्मशास्त्रों में भी मुख्य रूप से सोलह संस्कारों की व्याख्या की गई है। इनमें पहला गर्भाधान संस्कार और मृत्यु के उपरांत अंत्येष्टि अंतिम संस्कार है। गर्भाधान के बाद पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण ये सभी संस्कार नवजात का दैवी जगत् से संबंध स्थापना के लिये किये जाते हैं। नामकरण के बाद चूडाकर्म और यज्ञोपवीत संस्कार होता है। इसके बाद विवाह संस्कार होता है। यह गृहस्थ जीवन का सर्वाधिक महत्वपूर्ण संस्कार है। हिन्दू धर्म में स्त्री और पुरुष दोनों के लिये यह सबसे बडा संस्कार है, जो जन्म-जन्मान्तर का होता है। मानव जीवन को विशुद्ध और उन्नत बनाने के उद्देश्य से संचालित संस्कार व्यवस्था प्राचीनकाल से अनवरत चली आ रही है। यद्यपि संस्कार संज्ञक क्रियाकलाप प्रत्येक वर्णों के लिये बनाया गया था। मानवमात्र इसका लाभ ले सके। कालान्तर में केवल ब्राह्मणों के लिये ही करणीय समझा जाने लगा है। संस्कार की आवश्यकता मानवमात्र को हैकरण की शुद्धि कर अपना एवं अपने से जुड़े :जिससे वह अपने अन्त , की विकास करने में सक्षम हो सके। इस इकाईतत्वों के अध्ययन के पश्चात् आशा है कि आप संस्कार को समझेंगे और लाभान्वित होंगे।

1.6 पारिभाषिक शब्दावली

संस्कार – मानव को संतुलित व संयमित करने हेतु किया जाने वाला कार्य

गर्भाधान – प्रथम बार सन्तानोत्तपति हेतु पत्नी के साथ किया जाने वाला संस्कार

पुंसवनं – गर्भ से तीसरे मास में किये जाने वाला संस्कार

सीमन्तोन्नयन – गर्भ से दूसरे और तीसरे मास में किये जाने वाला संस्कार

1.7 बोधप्रश्नों के उत्तर

1. ग
2. ख
3. ग
4. ख
5. ख

1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. मुहूर्त्त पारिजात
2. ज्योतिष सर्वस्व
3. मुहूर्त्तचिन्तामणि
4. जातकपारिजात

1.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. संस्कार को परिभाषित करते हुये उनका विस्तार से उल्लेख करिये।
2. विभिन्न मतों में संस्कारों के प्रकार का उल्लेख कीजिये।

इकाई – 2 षोडश संस्कार

इकाई की संरचना

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 षोडश संस्कार का परिचय
2.4 षोडश संस्कारों का नाम व उल्लेख
बोध प्रश्न
2.5 सारांशः
2.6 पारिभाषिक शब्दावली
2.7 बोधप्रश्नों के उत्तर
2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

संस्कार शब्द का अर्थ है - शुद्धिकरण । भारतीय सनातन परम्परा में प्राचीन आचार्यों ने जातक के सर्वतोमुखी विकासार्थ संस्कारों की बात कही है। प्राचीन समय में संस्कारों की संख्या चालीस थी। कालान्तर में इनकी संख्या में कमी आई और वह षोडश संस्कार के रूप में व्यवहार में रह गया। वर्तमान में तो षोडश संस्कारों में भी कमी आ रही है। प्रस्तुत इकाई में यहॉ आचार्यों द्वारा प्रतिपादित षोडश संस्कार की चर्चा की गई है।

षोडश संस्कार का अर्थ है – सोलह संस्कार। गर्भाधान से लेकर अन्त्येष्टि संस्कार तक महत्वपूर्ण षोडश संस्कार होते है।

इससे पूर्व की इकाईयों में आपने संस्कार क्या है। उसके विभिन्न स्वरूपों का अध्ययन किया है। यहॉ अब इस इकाई में महत्वपूर्ण षोडश संस्कार का अध्ययन करेंगे।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप-

1. षोडश संस्कार को परिभाषित करने में समर्थ हो सकेंगे।
2. षोडश संस्कार के महत्त्व को समझा सकेंगे।
3. षोडश संस्कार के विभेद का निरूपण करने में समर्थ होंगे।
4. षोडश संस्कार का स्वरूप वर्णन करने में समर्थ होंगे।
5. षोडश संस्कार के सम्बन्ध को निरूपित करने में समर्थ होंगे।

2.3 षोडश संस्कारों का परिचय

संस्कार शब्द सम् पूर्वक कृ-धातु से घञ् प्रत्यय करके निष्पन्न होता है। संस्कार शब्द का प्रयोग अनेक अर्थों में किया जाता है। संस्कृत वाङ्मय में इसका प्रयोग शिक्षा, संस्कृति, प्रशिक्षण, सौजन्य पूर्णता, व्याकरण संबंधी शुद्धि, संस्करण, परिष्करण, शोभा आभूषण, प्रभाव, स्वरूप, स्वभाव, क्रिया, फलशक्ति, शुद्धि क्रिया, धार्मिक विधि विधान, अभिषेक, विचार भावना, धारणा, कार्य का परिणाम, क्रिया की विशेषता आदि व्यापक अर्थों में किया जाता है। अतः संस्कार शब्द अपने विशिष्ट अर्थ समूह को व्यक्त करता और उक्त सम्पूर्ण अर्थ इस शब्द में समाहित हो गये हैं। अतः संस्कार, शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक शुद्धि के लिए किये जाने वाले अनुष्ठानों का श्रेष्ठ आचार है। इस अनुष्ठान प्रक्रिया से मनुष्य की बाह्याभ्यन्तर शुद्धि होती है जिससे वह समाज का श्रेष्ठ आचारवान नागरिक बन सके।

संस्कार के दो रुप होते हैं - एक आंतरिक रुप और दूसरा बाह्य रुप। बाह्य रुप का नाम रीतिरिवाज है। यह आंतरिक रुप की रक्षा करता है। हमारा इस जीवन में प्रवेश करने का मुख्य प्रयोजन यह है कि

पूर्व जन्म में जिस अवस्था तक हम आत्मिक उन्नति कर चुके हैं, इस जन्म में उससे अधिक उन्नति करें। आंतरिक रुप हमारी जीवन- चर्या है। यह कुछ नियमों पर आधारित हो तभी मनुष्य आत्मिक उन्नति कर सकता है।

हिन्दू संस्कारों में अनेक वैचारिक और धार्मिक विधियां सन्निविष्ट कर दी गयी हैं जिससे बाह्य परिष्कार के साथ ही व्यक्ति में सदाचार की पूर्णता का भी विकास हो सके। सविधि संस्कारों के अनुष्ठान से संस्कृत व्यक्ति में विलक्षण तथा अवर्णनीय गुणों का प्रादुर्भाव हो जाता है।

आत्मशरीरान्यतरनिष्ठो विहित क्रियाजन्योऽतिशय विशेषः संस्कारः।

वीर मित्रोदय पृ. 191

कार्यः शरीरसंस्कारः पावनः प्रेत्यचेहच - म. स्मृ. 2/26

संस्कारों की संखया-संस्कारों के शास्त्रीय प्रयोग के सम्बन्ध में गृह्यसूत्रों को ही प्रमाण माना गया है। प्राचीन गृह्य सूत्रों में पारस्कर गृह्य सूत्र, अश्वलायन गृह्य सूत्र,बोधायन गृह्य सूत्र विशेष रूप से प्रामाणिक रूप से संस्कारों के अनुष्ठानों का विवरण, महत्त्व और मंत्रों का विवरण प्रस्तुत करते हैं। इनके अतिरिक्त पुराण सहित्य और विभिन्न स्मृतियां भी संस्कारों के आचार के संबंध तथा उनके महत्त्व का प्रतिपादन करती हैं। धर्म सूत्रों और धर्मशास्त्रों में भी इनके समन्वित रूपों का प्रतिपादन किया गया है। विभिन्न गृह्यसूत्रों एवं स्मृतियों में संस्कारों की संखया में मतैक्य नहीं हैं तदपि परवर्ती काल में संस्कारों की संखया का निर्धारण कर दिया गया। इन संस्कारों में जन्मपूर्व सलेकर बाल्यकाल के 10 संस्कार और शेष 6 शैक्षणिक तथा अन्त्येष्टि पर्यन्त के संस्कार परिगणित हैं।

2.3.1 षोडश संस्कारों का नाम व उल्लेख -

षोडश संस्कारों का क्रम निम्नलिखित रूप से है -

1.	गर्भाधान	2.	पुंसवन
3.	सीमन्तोन्नयन	4.	जात कर्म
5.	नामकरण	6.	निष्क्रमण
7.	अन्नप्राशन	8.	चूड़ाकरण
9.	कर्णवेध	10.	विद्यारम्भ
11.	उपनयन	12.	वेदारंभ
13.	केशान्त	14.	समावर्तन
15.	विवाह	16.	अन्त्येष्टि

कालक्रमानुसार प्राप्तभेद से अनुष्ठान पद्धतियों की रचना हो गई है। श्री दयानन्द सरस्वती के अनुयायियों एवं अन्य मतावलम्बियों ने भी अपने सम्प्रदायानुसार पद्धतियां बना ली हैं किन्तु देशज प्रक्रिया में भिन्नता रहते हुए भी शास्त्रीय विधि और मंत्रा प्रयोग यथावत् मिलते हैं। अनेक संस्कार काल वाह्य भी हो गये हैं तदपि उनकी कौल परम्परा अभी जीवित है। अतः इन संस्कारों का संक्षिप्त रूप से विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है। हिन्दू संस्कारों के समय मुहूर्त निर्धारण में ज्योतिष की भी मुख्य भूमिका रहती है अतः प्रत्येक संस्कार के लिए नक्षत्र - योग के अनुसार ज्योतिष शास्त्रों में मुहूर्तों का निर्धारण कर दिया है प्रचलित पंचाङ्गों में चक्रानुक्रम से उसका विवरण उपलब्ध रहता है।

ज्योतिष के संक्षिप्त संकलन ग्रंथ भी इसमें सहायक हैं। संस्कारों के मुहूर्तों से सम्बन्धित सारिणी भी संलग्न कर दी जा रही है जिसमें संक्षेप में मुहूर्तों का विवरण है। मनु ने 'जन्मना जायते शूद्रः संस्काराद्द्विज उच्यते' कहकर संस्कार की महत्ता का प्रतिपादन कर दिया है। संस्कार से ही द्विजत्व प्राप्त होता है। इसी वाक्य को आधार मानकर आर्य समाज के अधिष्ठाता स्वामी दयानन्द सरस्वती ने सम्पूर्ण आर्य जाति को संस्कार से द्विजत्व प्राप्ति का सिद्धान्त प्रतिपादित किया।

षोडश संस्कारों का उल्लेख क्रमश: निम्नलिखित रूप में दिया जा रहा है –

1. गर्भाधान संस्कार

गृह्यसूत्र गर्भाधान के साथ ही संस्कारों का प्रारंभ करते हैं क्योंकि जीवन का प्रारम्भ इसी संस्कार से शुरू होता है –

निषिक्तो यत्प्रयोगेण गर्भ: संधार्यते स्त्रिया तद्गर्भालम्भनंनाम कर्म प्रोक्तं मनीषिभि:।

वीर मित्रोदय

स्त्री-पुरुष के संयोग रूप इस संस्कार की विस्तृत विवेचना शास्त्रों में मिलती है जिसमें अनेक विधि-निषेधों की चर्चा है जो मानव जीवन के लिए और आगे आने वाले संतति परम्परा की शुद्धि के लिए अत्यावश्यक है। दिव्य सन्तति की प्राप्ति के लिए बताये गये शास्त्रीय प्रयोग सफल होते हैं सन्तति-निग्रह भी होता है।

2.पुंसवनं संस्कार -

गर्भधारण का निश्चय हो जाने के पश्चात् शिशु को पुंसवन नामक संस्कार के द्वारा अभिषिक्त किया जाता था। इसका अभिप्राय-पुं-पुमान् (पुरुष) का सवन (जन्म हो)।

पुमान् प्रसूयते येन कर्मणा तत् पुंसवनमीरितम् - बीरमित्रोदय

गर्भधारण का निश्चय हो जाने के तीसरे मास से चतुर्थ मास तक इस संस्कार का विधान बताया जाता है। अधिकांश स्मृतिकारों ने तीसरा माह ही गृहीत किया है।

तृतीये मासि कर्तव्यं गृष्टेरन्यत्रा शोभनम्।
गृष्टे चतुर्थमासे तु षष्ठे मासेऽथवाष्टये। -वीरमित्रोदय

यह संस्कार चन्द्रमा के पुरुष नक्षत्रा में स्थित होने पर करना चाहिए। सामान्य गणेशार्चनादि करने के बाद गर्भिणी स्त्री की नासिका के दाहिने छिद्र मे गर्भ-पोषण संरक्षण के लिए लक्ष्मणा, बटशुङ्ग, सहदेवी आदि औषधियों का रस छोड़ना चाहिए। सुश्रत नें सूत्र स्थान में कहा है -

''सुलक्ष्मणा-वटशुङ्रग, सहदेवी विश्वदेवानाभिमन्यतमम् क्षीरेणाभिद्युष्टय त्रिचतुरो वा विन्दून दद्यात् दक्षिणे-नासापुटे''-सुश्रत संहिता।

उपर्युक्त प्रक्रिया से जाहिर है कि इस संस्कार में वैज्ञानिक विधि का आश्रय है जिससे शिशु की पूर्णता प्राप्त हो और उसकी सर्वाङ्ग रक्षा हो।

(3) सीमन्तोन्नयन संस्कार -

गर्भ का तृतीय संस्कार सीमतोन्नयन है। इस संस्कार में गर्भिणी स्त्री के केशों (सीमन्त) को ऊपर करना" **सीमन्त उन्नीयते यस्मिन् कर्मणि तत् सीमन्तोन्नयनम्** - वी.मि.

विधि- किसी पुरुष नक्षत्र में चन्द्रमा के स्थित होने पर स्त्री-पुरुष को उस दिन फलाहार करके इस विधि को सम्पन्न किया जाता है। गणेशार्चन, नान्दी, प्राजापत्य आहुति देना चाहिए। पत्नी अग्नि के पश्चिम आसन पर आसीन होती है और पति गूलरके कच्चे फलों का गुच्छ, कुशा, साही के कांटे लेकर उससे पत्नी के केश संवारता है -महाव्याहृतियों का उच्चारण करते हुए।

अयभूर्ज्ज स्वतो वृक्ष ऊर्ज्ज्वेव फलिनी भव - पा.गृ. सूत्र

इस अवसर पर मंगल गान, ब्राह्मण भोजन आदि कराने की प्रथा थी।

बाल्यावस्था के संस्कार

(4) जातकर्म संस्कार

जातक के जन्मग्रहण के पश्चात् पिता पुत्र मुख का दर्शन करे और तत्पश्चात् नान्दी श्राद्धावसान जातकर्म विधि को सम्पन्न करे-

जातं कुमारं स्वं दृष्ट्वा स्नात्वाऽनीय गुरुम् पिता।
नान्दी श्राद्धावसाने तु जातकर्म समाचरेत्।।

विधि- पिता स्वर्णशलाका या अपनी चौथी अंगुली से जातक को जीभ पर मधु और घृत महाव्याहृतियों के उच्चारण के साथ चटावें। गायत्री मन्त्र के साथ ही घृत बिन्दु छोड़ा जाय। आयुर्वेद के ग्रंथों में जातकर्म-विधि का विधान चर्चित है कि पिता बच्चे के कान में दीर्घायुष्य मंत्रों का जाप करे। इस अवसर पर लग्नपत्र बनाने और जातक के ग्रह नक्षत्रा की स्थिति की जानकारी भी प्राप्त करने की प्रथा है और तदनुसार बच्चे के भावी संस्कारों को भी निश्चित किया जाता है।

(5) नामकरण संस्कार

नामकरण एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण संस्कार है जीवन में व्यवहार का सम्पूर्ण आधार नाम पर ही निर्भर होता है

नामाखिलस्य व्यवहारहेतुः शुभावहं कर्मसु भाग्यहेतुः
नाम्नैव कीर्तिं लभेत मनुष्यस्ततः प्रशस्तं खलु नामकर्म।-बी.मि.भा. 1

उपर्युक्त स्मृतिकार बृहस्पति के वचन से प्रमाणित है कि व्यक्ति संज्ञा का जीवन में सर्वोपरि महत्त्व है अतः नामकरण संस्कार हिन्दू जीवन में बड़ा महत्त्व रखता है।

शतपथ ब्राह्मण में उल्लेख है कि

तस्माद् पुत्रस्य जातस्य नाम कुर्यात्
पिता नाम करोति एकाक्षरं द्वक्षरंत्रयक्षरम् अपरिमिताक्षरम् वेति -वी.मि.
द्वक्षरं प्रतिष्ठाकामश्चतुरक्षरं ब्रह्मवर्चसकामः ।।

प्रायः बालकों के नाम सम अक्षरों में रखना चाहिए। महाभाष्यकार ने व्याकरण के महत्व का प्रतिपादन करते हुए नामकरण संस्कार का उल्लेख किया है -

याज्ञिकाः पठन्ति-''दशम्युतरकालं जातस्य नाम विदध्यात्
घोष बदाद्यन्तरन्तस्थमवृद्धं त्रिापुरुषानुकम नरिप्रतिष्ठितम्।
तद्धि प्रतिष्ठितमं भवति। द्वक्षरं चतुरक्षरं वा नाम कुर्यात् न तद्धितम् इति। न चान्तरेण

व्याकरणकृतस्तद्धिता वा शक्या विज्ञातुम्। - महाभाष्य

उपर्युक्त कथन में तीन महत्त्वपूर्ण बातों का उल्लेख है-

(1) शब्द रचना (2) तीन पुस्त के पुरखों के अक्षरों का योग (3) तद्धितान्त नहीं होना चाहिए अर्थात् विशेषणादि नहीं कृत् प्रत्यान्त होना चाहिए।

विधि- विधान-गृह्य सूत्रों के सामान्य नियम के अनुसार नामकरण संस्कार शिशु के जन्म के पश्चात् दसवें या बारहवें दिन सम्पन्न करना चाहिए -

द्वादशाहे दशाहे वा जन्मतोऽपि त्रायोदशे।

षोडशैकोनविंशे वा द्वात्रिंशेवर्षतः क्रमात्॥

संक्रान्ति, ग्रहण, और श्राद्धकाल में संस्कार मंगलमय नही माना जाता। गणेशार्चन करके संक्षिप्त व्याहृतियों से हवन सम्पन्न कराकर कांस्य पात्रा में चावल फैलाकर पांच पीपल के पत्तों पर पांच नामों का उल्लेख करते हुए उनका पद्द्रचोपचार पूजन करे। पुनः माता की गोद में पूर्वाभिमुख बालक के दक्षिण कर्ण में घरके बड़े पुरुष द्वारा पूजित नामों में से निर्धारित नाम सुनावे। हे शिशो ! तव नाम अमुक शर्म-वर्म गुप्त दासाद्यस्ति" आशीर्वचन निम्न ऋचाओं का पाठ -

"वेदोऽसि येन त्वं देव वेद देवेभ्यो वेदोभवस्तेन मह्यां वेदो भूयाः। अङ्गादङ्गात्संभवसि हृदयादधिजायते आत्मा वै पुत्रा नामासि सद्द्रजीव शरदः शतम्'। गोदान-छाया दान आदि कराना चाहिये। लोकाचार के अनुसार अन्य आचार सम्पादित किये जायें।

बालिकाओं के नामकरण के लिए तद्धितान्त नामकरणकी विधि है। बालिकाओं के नाम विषमाक्षर में किये जायें और वे आकारान्त या ईकारान्त हों। उच्चारण में सुखकर, सरल, मनोहर मङ्गलसूचक आशीर्वादात्मक होने चाहिए।

स्त्रीणां च सुखम्क्रूरं विस्पष्टार्थं मनोहरम्।

मत्त्यं दीर्घवर्णान्तमाशीर्वादाभिधानवत्। - वी.मि.

2.4 बोध प्रश्न -

1. संस्कार शब्द का अर्थ है।

क. अशुद्धिकरण ख. शुद्धिकरण ग. निजीकरण घ. करण

2. संस्कार शब्द में कौन सा प्रत्यय है।

क. घञ प्रत्यय ख. मतुप प्रत्यय ग. सम प्रत्यय घ. उरट प्रत्यय

3. प्राचीन समय में संस्कारों की संख्या थी।

क. 30 ख. 40 ग. 50 घ. 16

4. षोडश संस्कारों में प्रथम संस्कार है।

क. पुंसवनं संस्कार ख. जातकर्म संस्कार ग. गर्भाधान संस्कार घ. सीमन्तोन्नयन

5. षोडश का अर्थ है।

क. 14 ख. 15 ग. 16 घ. 17

(6) निष्क्रमण संस्कार -

प्रथम बार शिशु के सूर्य दर्शन कराने के संस्कार को निष्क्रमण कहा गया है।

ततस्तृतीये कर्तव्यं मासि सूर्यस्य दर्शनम्।
चतुर्थे मासि कर्तव्य शिशोश्चन्द्रस्य दर्शनम्।।

अनेक स्मृतिकारों ने चतुर्थ मास स्वीकार किया है। इस संस्कार के बाद बालक को निरन्तर बाहर लाने का क्रम प्रारंभ किया जाता है।

विधि-भलीभांति अलंकृत बालक को माता गोद में लेकर बाहर आये और कुल देवता के समक्ष देवार्चन करे। पिता पुत्र को-तच्चक्षुर्देव .....आदि मंत्र का जाप करके सूर्य का दर्शन करावे -

ततस्त्वलंकृता धात्री बालकादाय पूजितम्।
बहिर्निष्कासयेद् गेहात् शङ्ख पुण्याहनिः स्वनैः। - विष्णुधर्मोत्तर

आशीर्वाद - **अप्रमत्तं प्रमत्तं वा दिवारात्रावथापि वा।**
रक्षन्तु सततं सर्वे देवाः शक्र पुरोगमाः॥

गीत, मंगलाचरण और बालक के मातुल द्वारा भी आशीर्वाद दिलाया जाय।

(7) अन्नप्राशन -

विधिपूर्वक बालक को प्रथम भोजन कराने की प्रथा अत्यन्त प्राचीन है। वेदों और उपनिषदों में भी एतत् सम्बन्धी मंत्र उपलब्ध होते हैं। माता के दूध से पोषित होने वाले बालक को प्रथम बार अन्नप्राशन कराने का प्रचलन प्रायः प्राचीन काल से ही है जो एक विशेष उत्सव के रूप में सम्पन्न किया जाता है।

जन्मतो मासि षष्ठे स्यात सौरेणोत्तममन्नदम्
तदभावेऽष्टमे मासे नवमे दशमेऽपि वा।
द्वादशे वापि कुर्वीत प्रथमान्नाशनं परम्
संवत्सरे वा सम्पूर्णे केचिदिच्छन्ति पण्डिताः॥ - नारद, वी.मि.

षण्मासद्द्रचैनमन्नं प्राशयेल्लघु हितञ्च - सुश्रुत (शं. स्थान)

विधि- अन्नप्राशन संस्कार के दिन सर्वप्रथम यज्ञीय भोजन के पदार्थ वैदिक मन्त्रों के उच्चारण के साथ पकाये जायें। भोजन विविध प्रकार के हों तथा सुस्वादु हों। मधु-घृत-पायस से बालक को प्रथम कवर (ग्रास) दिया जाय। पद्धतियों में एतत् संबंधी मंत्रा उपलब्ध हैं। गणेशार्चन करके व्याहृतियों से आहुति देकर एतत् संबंधी ऋचाओं से हवन करके तत्पश्चात् बालक को मंत्रापाठ के साथ अन्नप्राशन कराया जाय पुनः यथा लोकाचार उत्सव सम्पन्न किया जाय।

(8) चूड़ाकरण (मुण्डन) संस्कार -

मुण्डन संस्कार के संदर्भ में वैदिक ऋचाओं, गृह्यसूत्रों एवं स्मृतियों में मंत्रा, विधि प्रयोग, समय निर्धारण के सम्बन्ध में व्यापक चर्चा मिलती है। पद्धतियों में इसका समावेश किया गया है। तदपि लोकाचार कुलाचार से अनेक भेद दिखाई देते हैं। अनेक

कुलों में मनौती के आधार पर मुण्डन किये जाते हैं किन्तु मुहूर्त निर्णय के लिए सभी ज्योतिष का आधार प्रायः स्वीकार करते हैं। मुण्डन में विधि पूर्वक शास्त्रीय आचार केवल उपनयन कराने वाले कुलों में उसी समय किया जाता है जबकि शास्त्रीय विधान दूसरे वर्ष से बताया गया है यथा -

प्राङ्वासवे सप्तमे वा सहोपनयनेन वा। (अश्वलायन)
तृतीये वर्षे चौलं तु सर्वकामार्थसाधनम्।
सम्बत्सरे तु चौलेन आयुष्यं ब्रह्मवर्चसम्। - वी. मि.
पद्द्रचमे पशुकामस्य युग्मे वर्षे तु गर्हितम् ।।

निषिद्ध काल-गर्भिण्यां मातरि शिशोः क्षौर कर्म न कारयेत्-इसके अतिरिक्त भी मुहूर्त निर्णय के समय-निषिद्ध काल को त्यागना चाहिए।

शिखा की व्यवस्था

मुण्डन संस्कार के कौल और शास्त्रीय आचार तो किये जाते हैं किन्तु शिखा रखने की प्रथा का प्रायः उच्चाटन होता जा रहा है। जबकि शिखा का वैज्ञानिक महत्त्व है और शास्त्रों में शिखाहीन होना गंभीर प्रायश्चित्त कोटि में आता है ।

शिखा छिन्दन्ति ये मोहात् द्वेषादज्ञानतोऽपि वा।
तप्तकृच्छ्रेण शुध्यन्ति त्रायो वर्णा द्विजातयः- लघुहारित

चूड़ाकरण का शास्त्रीय आधार था दीर्घायुष्य की प्राप्ति। सुश्रुत ने (जो विश्व के प्रथम शीर्षशल्य चिकित्सक थे) इस सम्बन्ध में बताया है कि -

(11) मस्तक के भीतर ऊपर की ओर शिरा तथा सन्धि का सन्निपात है वहीं रोमावर्त में अधिपति है। यहां पर तीव्र प्रहार होने पर तत्काल मृत्यु संभावित है। शिखा रखने से इस कोमलांग की रक्षा होती है।

मस्तकाभ्यन्तरोपरिष्टात् शिरासम्बन्धिसन्निपातो
रोमावर्त्तोऽधिपतिस्तत्रापि सद्यो मरणम् - सुश्रुत श. स्थान

विधि-विधान-गणेशार्चन अग्निस्थापन-पद्द्रचवारूणीहवन-नन्दी के बाद पिता केशों का संस्कार यथाविधि करके स्वयं मंत्रा पाठ करता हुआ केश कर्त्तन करता है और उनका गोमयपिन्ड में उत्सर्ग करता है पुनः दही उष्णोदक शीतोदक से केशों को भिगोता और छुरे को अभिमन्त्रित करके नापित को वपन (मुण्डन) का आदेश देता है। क्रमशः

(9) कर्णवेध संस्कार

आभूषण पहनने के लिए विभिन्न अंगों के छेदन की प्रथा संपूर्ण संसार की असभ्य तथा अर्द्धसभ्य जातियों में प्रचलित है। अतः इसका उद्भव अति प्राचीन काल में ही हुआ होगा ।

आभूषण धारण और वैज्ञानिक रूप से कर्ण छेदन का महत्त्व होने के कारण इस प्रक्रिया को संस्कार रूप में स्वीकारा गया होगा। कात्यायन सूत्रों में ही इसका सर्वप्रथम उल्लेख मिलता है। सुश्रुत ने इसके वैज्ञानिक पक्ष में कहा है कि कर्ण छेद करने से अण्डकोष वृद्धि, अन्त्रा वृद्धि आदि का निरोध होता है अतः जीवन के आरंभ में ही इस क्रिया को वैद्य द्वारा सम्पादित किया जाना चाहिए।

शङ्खो परि च कर्णान्ते त्यक्त्वा यत्नेन सेवनीयम्
व्यत्यासाद्वा शिरां विध्येद् अन्त्राबृद्धि निवृत्तये - सुश्रुत चि. स्थान

भिषग् वामहस्तेन-विध्येत्-सुश्रुत संहिता में षष्ठ अथवा सप्तम मास में शुक्ल पक्ष में शुभ दिन में वैद्य द्वारा माता की गोद में मधुर खाते बालक का अत्यन्त निपुणता से कर्ण वेध करना चाहिए। जब कि वृहस्पति जन्म से 10-12-16वें दिन करने को कहते है।

विधि - वर्तमान बालिकाओं का कर्णवेध तो आभूषण धारण के लिए अनिवार्यतः होता है किन्तु पुरुष वर्ग के वेध का प्रतीकात्मक ही संस्कार हो पाता है।

गणेशार्चन, हवन आदि करके निम्न मंत्रों से क्रमशः दक्षिण-वाम कर्णों की वेध की प्रक्रिया सम्पन्न की जाती है - भद्रं कर्णेभिः.....आदि मंत्रों से सम्पन्न किया जाय।

(10) विद्यारम्भ एवं अक्षराम्भ

इस महत्त्वपूर्ण संस्कार के संबंध में गृह्य सूत्रों में काफी स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता और न ही किसी विशेष विधि-विधान की चर्चा ही मिलती है। किन्तु अनेक आकर ग्रंथों, प्राचीन काव्य नाटकों में इसका स्पष्ट उल्लेख आता है। कौटिल्य का अर्थशास्त्र रघुवंश, उत्तररामचरित आदि में इसकी चर्चा है इससे स्पष्ट है कि

उपनयन और वेदारंभ

के पूर्व अक्षरों का सम्यक् ज्ञान अपेक्षित था और अक्षर ज्ञान के समय कुलाचार के अनुसार विधि-विधान किये जाते थे। विधि-परवर्ती संग्रह ग्रंथों में इसकी विधि व्यवस्था प्राप्त है।

उत्तरायण सूर्य होने पर ही शुभ मुहूर्त में गणेश-सरस्वती-गृह देवता का अर्चन करके गुरु के द्वारा अक्षरारंभ कराया जाय। द्वितीय जन्मतः पूर्वामारभेदक्षरान् सुधीः। -बी.मि. (बृहस्पति)

"पद्द्रचमे सप्तमेवाद्वे"-संस्कारप्रकाश-भीमसेन

तण्डुल प्रसारित पट्टिका पर-

श्री गणेशाय नमः, श्री सरस्वत्यै नमः, गृह देवताभ्योनमः श्री लक्ष्मीनारायणाभ्यां नमः लिखकर उसका पूजन कराया जाय और गुरु पूजन किया जाय और गुरु स्वयं बालक का दाहिना हाथ पकड़कर पट्टिका पर अक्षरारंभ करा दे। गुरु को दक्षिणा दान किया जाय।

(11) उपनयन संस्कार -

भारतीय मनीषियों ने जीवन की समग्र रचना के लिए जिस आश्रम व्यवस्था की स्थापना की जिससे मनुष्य को सहज ही पुरुषार्थ चतुष्टय की प्राप्ति हो, किया गया प्रतीत होता है। ब्रह्मचर्य काल में धर्म का अर्जन एवं गृहस्थ जीवन में अर्थ-काम का उपभोग गीता के शब्दों में 'धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ" धर्म-नियंत्रित अर्थ और काम तभी संभव था जब प्रारंभ में ही धर्म-तत्वों से

मनुष्य दीक्षित हो जाय। इसके बाद जीवन के चरम लक्ष्य मोक्ष प्राप्त करने के लिए भी यौवन काल में अभ्यस्त धर्म ही सहायक होता है। इस प्रकार पुरुषार्थ चतुष्टय और आश्रम चतुष्टय में अन्योन्याश्रय प्रतीत होता है या दोनों आधाराधेय भाव से जुड़े है ।

वर्तमान युग में उपनयन संस्कार प्रतीकात्मक रूप धारण करता जा रहा है। विरल परिवारों में यथाकाल विधि-व्यवस्था के अनुरूप उपनयन संस्कार हो पाते हैं। एक ही दिन कुछ घण्टों में चूड़ाकरण, कर्णवेध, उपनयन, वेदारंभ और केशान्त कर्म के साथ समावर्तन संस्कार की खानापूरी करदी जाती है। बहुसंखय परिवारों में विवाह से पूर्व उपनयन संस्कार कराकर वैवाहिक संस्कार करा दिया जाता है जबकि गृह्यसूत्रों के अनुसार विभिन्न वर्णों के लिए आयु की सीमा का निर्धारण किया गया है -

ब्रह्मवर्चसकामस्य कार्यं विप्रस्य पद्द्रचमे
राज्ञो बलार्थिन: षष्ठे वैश्यस्येहार्थिनोऽष्टमे। -मनुस्मृति 2 अ. 37

सत्राहवीं शताब्दी के निबन्धकारों ने परिस्थितियों के अनुरूप ब्राह्मण का 24 क्षत्रिय का 33 और वैश्य का 36 तक भी उपनयन स्वीकार कर लेते हैं। - बी.मि.भा. 1 (347)

यौवन के पदार्पण करने के पूर्व किशोरावस्था में संस्कारित और दीक्षित करने का अनुष्ठान सार्वकालिक और विश्वजनीन है। सभी सम्प्रदायों में किसी न किसी रूप में दीक्षा की पद्धति चलती है और उसके लिए विशेष प्रकार के विधि विधानों के कर्मकाण्ड आयोजित किये जाते हैं। इन विधि-विधानों के माध्यम से संस्कारित व्यक्ति ही समाज में श्रेष्ठ नागरिक की स्थिति प्राप्त कर सकता है। इसी उद्देश्य से उपनयन संस्कार की परम्परा भारतीय मनीषा में स्थापित की थी।

'हिन्दू संस्कार'-वास्तव में उपनयन संस्कार आचार्य के समीप दीक्षा के लिए अभिभावक द्वारा पहुंचना ही इस संस्कार का उद्देश्य था। इसी लिए इसके कर्मकाण्ड में कौपीन; मौञ्जी, मृगचर्म और दण्ड धारण करने का मंत्रों के साथ संयोजन है। सावित्री मंत्रा धारण द्विज को अपने ब्रह्मचारी वेष में अपनी माता से पहली भिक्षा और फिर समाज के सभी वर्ग से भिक्षाटन करने का अभ्यास इस संस्कार का वैशिष्ट्य है। इस व्यवस्था से ब्रह्मचारी को व्यष्टि से समष्टि और परिवार से बृहत् समाज से जोड़ा जाता था जिससे व्यक्ति अपनी सत्ता को समष्टि में समाहित करें और अपनी विद्या बुद्धि शक्ति का प्रयोग समाज की सेवा के लिए करें।

वास्तव में यज्ञोपवीत के सूत्र धारण करने को ब्रतवंध कहते हैं जिससे ब्रह्मचारी की पहचान और उसको धारण करने वाले को अपनी दीक्षा संकल्प का सदा स्मरण रहे। सूत्र धारण कराकर उत्तरीय रखने की अनिवार्यता बताई गई है।

विधि - उपनयन संस्कार से संबंधित प्रान्तीय और विभिन्न सम्प्रदायों के स्तर पर उपनयन पद्धतियां प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं तदनुसार उनका आश्रय लेकर संस्कारों का संयोजन सम्पादन करना चाहिए

(12) वेदारम्भ -

वेदारंभ उपनयन संस्कार के बाद किया जाता है जो अब प्रतीकात्मक ही रह गया है । वास्तव में यह संस्कार मुख्य रूप से वेद की विभिन्न शाखाओं की रक्षा के लिए उसके अभ्यास की परम्परा

से जुड़ा है। अपनी कुल परम्परा के अनुसार वेद, शाखा सूत्र आदि के स्वाध्याय की पद्धति थी। जिसे अनिवार्य रूप से द्विजातियों को उसका अभ्यास करना पड़ता था। कालान्तर में मात्रा पुरोहितों के कुलों में सीमित हो गई और अब उसका प्रायः लोप हो गया है। यही कारण है कि वेद की बहुत सी शाखायें उपलब्ध नहीं हैं क्योंकि श्रुति परम्परा से ही इसकी रक्षा की जाती थी। महर्षि पतद्द्रजलि ने भी महाभाष्य में इसकी चर्चा करते हुए कहा है कि अनेक शाखा-सूत्रों का लोप हो गया है।

वर्तमान पद्धतियों में चतुर्वेदों के मंत्रों का संग्रह कर दिया गया है जिसे उपनयन के बाद सावित्री सरस्वती-लक्ष्मी गणेश की अर्चना के बाद उपनीत बटु से उसका औपचारिक उच्चारण मात्रा करा दिया जाता है। अतः अब यह संस्कार उपनयन का अंगभूत भाग रह गया है।

(13) केशान्त संस्कार

केशान्त का अर्थ लम्बी अवधि तक केशधारण करने वाले युवा ब्रह्मचारी का केश वपन। विधि पूर्वक मंत्रोच्चारण के साथ यह गोदान के साथ सम्पन्न होता था। इस संस्कार के बाद ही 'युवक' को गृहस्थ जीवन के योग्य शारीरिक और व्यावहारिक योग्यता की दीक्षा दी जाती थी। आगोदानकर्मणः-ब्रह्मचर्यम्-भा.यू.सू.।

(14) समावर्तन संस्कार

समावर्त्तन का अर्थ है विद्याध्ययन प्राप्त कर ब्रह्मचारी युवक का गुरुकुल से घर की ओर प्रत्यावर्त्तन।

तत्र समावर्त्तनं नाम वेदाध्यनानन्तरं गुरुकुलात् स्वगृहागमनम् - वीर मित्रोदय

विष्णुस्मृति के अनुसार-कुब्ज, वामन, जन्मान्ध, बधिर, पंगु तथा रोगियों को यावज्जीवन ब्रह्मचर्य में रहने की व्यवस्था है-

कुब्जवामनजात्यन्धक्लीब पङ्वार्त रोगिणाम्
ब्रतचर्या भवेत्तेषां यावज्जीवमनंशतः।

समावर्त्तन संस्कार गृहस्थ जीवन में प्रवेश की अनुमति देता है। उपनयन संस्कार से प्रारंभ होने वाली शिक्षा की पूर्णता के बाद ब्रह्मचर्य का कठोर जीवन व्यतीत करने वाले संस्कारित युवक को इस संस्कार के माध्यम से गार्हस्थ्य जीवन जीने की शिक्षा दी जाती थी। ऐसे संस्कारित युवक की स्नातक संज्ञा थी। स्नातक तीन प्रकार के होते थे (1) विद्या स्नातक (2) व्रत स्नातक (3) विद्याव्रत स्नातक। इनमें तीसरे प्रकार के स्नातक को ही गृहस्थ जीवन में प्रवेश का अधिकार मिलता था। क्योंकि ऐसा ही ब्रह्मचारी विद्या की पूर्णता के साथ ब्रह्मचर्य्य व्रत की भी पूर्णता प्राप्त कर लेता था। वर्तमान काल में भले 10-12 वर्ष के बालक का उपनयन संस्कार के तत्काल समावर्त्तन का अधिकारी बना दिया जाता है। आश्रमहीन रहना दोषपूर्ण होता है अतः समावर्त्तन के बाद गृहस्थ बनना अथ च दारपरिग्रह अपरिहार्य है, अन्यथा प्रायश्चित्त होता है।

अनाश्रमी न तिष्ठेच्च क्षणमेकमपि द्विजः।
आश्रमेण विना तिष्ठन् प्रायश्चित्तीयते हि सः॥ दक्षस्मृति (10)

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि समावर्त्तन संस्कार अति महत्वपूर्ण आचार प्रक्रिया थी जिससे

संस्कारित और दीक्षित होकर युवक एक श्रेष्ठ गृहस्थ की योग्यता प्राप्त करता था। वर्तमान काल में उपनयन संस्कार के साथ ही कुछ घंटों में इसकी भी खानापूरी कर दी जाती है। इसके विधि विधान का विवरण उपनयन पद्धतियों से यथा प्राप्त सम्पन्न कराना चाहिए।

(15) विवाह संस्कार -

विवाह संस्कार हिन्दू संस्कार पद्धति का अत्यन्त महत्वपूर्ण संस्कार है । प्रायः सभी सम्प्रदायों में इसका महत्वपूर्ण स्थान है। विवाह शब्द का तात्पर्य मात्र स्त्री-पुरुष के मैथुन सम्बन्ध तक ही सीमित नहीं है अपितु सन्तानोत्पादन के साथ-साथ सन्तान को सक्षम आत्मनिर्भर होने तक के दायित्व का निर्वाह और सन्तति परम्परा को योग्य लोक शिक्षण देना भी इसी संस्कार का अंग है । शास्त्रों में अविवाहित व्यक्ति को अयज्ञीय कहा गया है और उसे सभी प्रकार के अधिकारों के अयोग्य माना गया है -

अयज्ञियो वा एष योऽपत्नीक:-वै.प्रा.

मनुष्य जन्म ग्रहण करते ही तीन ऋणों से युक्त हो जाता है, ऋषि ऋण, देव ऋण, पितृऋण और तीनों ऋणों से क्रमशः ब्रह्मचर्य, यज्ञ, सन्तानोत्पादन करके मुक्त हो पाता है-जायमानो ह वै ब्राहणस्त्रिर्ऋणवान् जायते-ब्रह्मचर्येण ऋषिभ्यो, यज्ञेन देवेभ्यः प्रजया पितृभ्यः-तै. सं. 6-3

गृहस्थाश्रम सभी आश्रमों का आश्रम है। जैसे वायु प्राणिमात्रा के जीवन का आश्रय है, उसी प्रकार गार्हस्थ्य सभी आश्रमों का आश्रम है -

यथा वायुं समाश्रित्य वर्त्तन्ते सर्वजन्तव:
तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्तन्ते सर्व आश्रमा:।
यस्मात् त्रायोऽप्याश्रमिणो ज्ञानेनान्नेन चान्वहम्
गृहस्थेनैव धार्यन्ते तस्मा ज्येष्ठाश्रमो गृही। -मनुस्मृति (3)

विवाह अनुलोम रीति से ही करना चाहिए-प्रातिलोम्य विवाह सुखद नहीं होता अपितु परिणाम में कष्टकारी होता है -

त्रायाण्यमानुलोम्यं स्यात् प्रातिलोम्यं न विद्यते
प्रातिलौम्येन यो याति न तस्मात् पापकृत्तर:। द. स्म्. (9)
अपत्नीको नरो भूप कर्मयोग्यो न जायते।
ब्राह्मण: क्षत्रियो वापि वैश्य: शूद्रोऽपि वा नर:।

विवाह के प्रकार

प्राचीन काल से ही यौन सम्बन्धों में विविधता के वृत्त प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं अतः स्मृतियों ने इस प्रकार के विवाहों को आठ भागों में विभक्त किया है -

(1) ब्राह्म (2) दैव (3) आर्ष (4) प्राजापत्य (5) आसुर (6) गान्धर्व (7) राक्षस (8) पैचाश।

इनमें प्रथम चार प्रशस्त और चार अप्रशस्त की श्रेणी में रखे गये हैं। प्रथम चार में भी ब्राह्म विवाह सर्वोत्तम और समाज में प्रशंसनीय था शेष तरतम भाव से ग्राह्य थे। किन्तु दो सर्वथा अग्राह्य थे।

आच्छाद्य चार्चयित्वा च श्रुतिशीलवते स्वयम्

आहूय दानं कन्याया ब्राह्मो धर्मः प्रकीर्तितः। मनु. (3)

सक्षेप में विवाह संस्था के उद्देश्य और उसके प्रकार का विवरण दिया गया है। विवाह के विविध-विधान के लिए देश-काल-प्रान्तभेद से पद्धतियां उपलब्ध हैं तदनुसार वैवाहिक संस्कार सम्पन्न किया जाना चाहिए।

(16) अन्त्येष्टि संस्कार -

हिन्दू जीवन के संस्कारों में अन्त्येष्टि ऐहिक जीवन का अन्तिम अध्याय है। आत्मा की अमरता एवं लोक परलोक का विश्वासी हिन्दू जीवन इस लोक की अपेक्षा पारलौकिक कल्याण की सतत कामना करता है। मरणोत्तर संस्कार से ही पारलौकिक विजय प्राप्त होती है -

जात संस्कारेणेमं लोकमभिजयति

मृतसंस्कारेणामुं लोकम् - वी.मि. 3-1

विधि-विधान आतुरकालिक दान, वैतरणीदान, मृत्युकाल में भू शयनव्यवस्था मृत्युकालिक स्नान, मरणोत्तर स्नान, पिण्डदान, (मलिन षोडशी) के 6 पिण्ड दशगात्रायावत् तिलाञ्जलि, घटस्थापन दीपदान, दशाह के दिन मलिन षोडशी के शेष पिण्डदान एकादशाह के षोडश श्राद्ध, विष्णुपूजन शैय्यादान आदि। सपिण्डीकरण, शय्यादान एवं लोक व्यवस्था के अनुसार उत्तर कर्म आयोजित कराने चाहिए। इन सभी कर्मों के लिए प्रान्त देशकाल के अनुसार पद्धतियां उपलब्ध हैं तदनुसार उन कर्मों का आयोजन किया जाना चाहिए।

2.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि संस्कार शब्द सम् पूर्वक कृ-धातु से घञ् प्रत्यय करके निष्पन्न होता है। संस्कार शब्द का प्रयोग अनेक अर्थों में किया जाता है। संस्कृत वाङ्मय में इसका प्रयोग शिक्षा, संस्कृति, प्रशिक्षण, सौजन्य पूर्णता, व्याकरण संबंधी शुद्धि, संस्करण, परिष्करण, शोभा आभूषण, प्रभाव, स्वरूप, स्वभाव, क्रिया, फलशक्ति, शुद्धि क्रिया, धार्मिक विधि विधान, अभिषेक, विचार भावना, धारणा, कार्य का परिणाम, क्रिया की विशेषता आदि व्यापक अर्थों में किया जाता है। अतः संस्कार शब्द अपने विशिष्ट अर्थ समूह को व्यक्त करता और उक्त सम्पूर्ण अर्थ इस शब्द में समाहित हो गये हैं। अतः संस्कार, शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक शुद्धि के लिए किये जाने वाले अनुष्ठानों का श्रेष्ठ आचार है। इस अनुष्ठान प्रक्रिया से मनुष्य की बाह्याभ्यन्तर शुद्धि होती है जिससे वह समाज का श्रेष्ठ आचारवान नागरिक बन सके। संस्कार के दो रुप होते हैं एक आंतरिक रुप और दूसरा बाह्य रुप -। बाह्य रुप का नाम रीतिरिवाज है। यह आंतरिक रुप की रक्षा करता है। हमारा इस जीवन में प्रवेश करने का मुख्य प्रयोजन यह है कि पूर्व जन्म में जिस अवस्था तक हम आत्मिक उन्नति कर चुके हैं, इस जन्म में उससे अधिक उन्नति करें। आंतरिक रुप हमारी जीवन चर्या है -। यह कुछ नियमों पर आधारित हो तभी मनुष्य आत्मिक उन्नति कर सकता है। जीवात्मा जब एक शरीर को त्याग कर दूसरे शरीर में जन्म लेना है, तो उसके पूर्व जन्म के प्रभाव उसके साथ जाते हैं। इन प्रभावों का वाहक सूक्ष्म शरीर होता है, जो जीवात्मा के साथ एक

स्थूल शरीर से दूसरे स्थूल शरीर में जाता है। इन प्रभावों में कुछ बुरे होते हैं और कुछ भले। बच्चा भले और बुरे प्रभावों को लेकर नए जीवन में प्रवेश करता है। संस्कारों का उद्देश्य है कि पूर्व जन्म के बुरे प्रभावों का धीरेधीरे अंत हो जाए और अच्छे प्रभावों की उन्नति - हो। इसी बात को ध्यान में रखते हुये आचार्यों ने षोडश संस्कार की चर्चा की है षोडश संस्कार अर्थात् गर्भाधान से लेकर अन्त्येष्टि क्रिया संस्कार तक के प्रमुख सोलह संस्कार।

2.6 पारिभाषिक शब्दावली

संस्कार - सनातन परम्परा में मानवमात्र का उसके जीवन को संयमित व संतुलित रखने हेतु आद्योपान्त किया जाने वाला कार्य।

षोडश संस्कार - 16 संस्कार

गर्भाधान – प्रथम संस्कार। इस संस्कार में जातक गर्भ में आता है।

सीमन्तोन्नयन – यह गर्भस्थ शिशु के रक्षार्थ किया जाने वाला संस्कार है।

पुंसवनं - यह भी गर्भस्थ शिशु के रक्षार्थ किया जाने वाला संस्कार है।

नामकरण – जन्म से एकादश वा द्वादश दिन में जातक का नाम रखा जाने वाला संस्कार

चूड़ाकरण – मुण्डन

दोलारोहण – प्रथम बार झुले पर झुलाये जाना वाला संस्कार

विद्यारम्भ – विद्या आरंभ किया जाने वाला संस्कार

विवाह – इसमें जातक गृहस्थ आश्रम में प्रवेशार्थ एक बन्धन में बंधता है।

2.7 बोधप्रश्नों के उत्तर

1. ख

2. क

3. ख

4. ग

5. ग

2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. वीरमित्रोदय
2. मुहूर्त्त पारिजात
3. मुहूर्त्त चिन्तामणि
4. ज्योतिष सर्वस्व
5. वृहज्ज्योतिष सार

2.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1. षोडश संस्कार से आप क्या समझते है। विस्तार से वर्णन कीजिये।
2. गर्भाधान, सीमन्तोन्नयन, पुंसवनं एवं विवाह संस्कार का उल्लेख कीजिये।

इकाई – 3 गर्भाधान, सीमन्तोन्नयन, पुंसवनं, नामकरण

इकाई संरचना

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 गर्भाधान, सीमन्तोन्नयन, पुंसवनं एवं नामकरण परिचय
बोध प्रश्न
3.3.1 गर्भाधान, सीमन्तोन्नयन, पुंसवनं एवं नामकरण स्वरूप
3.4 संस्कारों का महत्व
3.5 सारांशः
3.6 पारिभाषिक शब्दावली
3.7 बोधप्रश्नों के उत्तर
3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

गर्भाधान, सीमन्तोन्नयन, पुंसवनं एवं नामकरण संस्कार सनातन अथवा हिन्दू धर्म की संस्कृति संस्कारों पर ही आधारित है। हमारे ऋषिमुनियों ने मानव जीवन- को पवित्र एवं मर्यादित बनाने के लिये संस्कारों का अविष्कार किया। धार्मिक ही नहीं वैज्ञानिक दृष्टि से भी इन संस्कारों का हमारे जीवन में विशेष महत्व है। भारतीय संस्कृति की महानता में इन संस्कारों का महती योगदान है ।

गर्भाधान किसी जातक के उसकी उत्तपत्ति के आधार रूप में उसके माता के गर्भ में आगमनार्थ किया जाने वाला प्रथम संस्कार है । उसी क्रम में गर्भाधान के पश्चात् गर्भ में शिशु के रक्षार्थ सीमन्तोन्नयन एवं पुंसवन संस्कार किया जाता है। तत् पश्चात् जब शिशु का जन्म हो जाता है तब जन्म दिन से दसवें दिन उसका नामकरण संस्कार किया जाता है।

इससे पूर्व की इकाईयों में आपने संस्कार और उसके षोडश भेदों का अध्ययन कर लिया है, यहॉ इस इकाई में अब आप **गर्भाधान, सीमन्तोन्नयन, पुंसवनं एवं नामकरण** संस्कारों का विस्तृत अध्ययन करेंगे।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप-

1. गर्भाधान, सीमन्तोन्नयन, पुंसवनं एवं नामकरण संस्कार को परिभाषित करने में समर्थ हो सकेंगे।
2. गर्भाधान, सीमन्तोन्नयन, पुंसवनं एवं नामकरण संस्कार के महत्त्व को समझा सकेंगे।
3. गर्भाधान, सीमन्तोन्नयन, पुंसवनं एवं नामकरण संस्कार के विभेद का निरूपण करने में समर्थ होंगे।
4. गर्भाधान, सीमन्तोन्नयन, पुंसवनं एवं नामकरण संस्कार का स्वरूप वर्णन करने में समर्थ होंगे
5. गर्भाधान, सीमन्तोन्नयन, पुंसवनं एवं नामकरण संस्कार के सम्बन्ध को निरूपित करने में समर्थ होंगे।

3.3 गर्भाधान, सीमन्तोन्नयन, पुंसवनं एवं नामकरण परिचय

प्राचीन काल में हमारा प्रत्येक कार्य संस्कार से आरम्भ होता था। उस समय संस्कारों की संख्या भी लगभग चालीस थी । जैसे-जैसे समय बदलता गया तथा व्यस्तता बढती गई तो कुछ संस्कार स्वत: विलुप्त हो गये। इस प्रकार समयानुसार संशोधित होकर संस्कारों की संख्या निर्धारित होती गई। गौतम स्मृति में चालीस प्रकार के संस्कारों का उल्लेख है। महर्षि अंगिरा ने इनका अंतर्भाव पच्चीस संस्कारों में किया। व्यास स्मृति में सोलह संस्कारों का वर्णन हुआ है। हमारे धर्मशास्त्रों में भी मुख्य रूप से सोलह संस्कारों की व्याख्या की गई है। इनमें पहला गर्भाधान संस्कार और मृत्यु के उपरांत अंत्येष्टि अंतिम संस्कार है। गर्भाधान के बाद पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण ये सभी संस्कार नवजात का दैवी जगत् से संबंध स्थापना के लिये किये जाते हैं। दैवी जगत् से शिशु की

प्रगाढ़ता बढ़े तथा ब्रह्माजी की सृष्टि से वह अच्छी तरह परिचित होकर दीर्घकाल तक धर्म और मर्यादा की रक्षा करते हुए इस लोक का भोग करे यही इस संस्कार का मुख्य उद्देश्य है।

हमारे शास्त्रों में मान्य सोलह संस्कारों में **गर्भाधान प्रथम** संस्कार है। गृहस्थ जीवन में प्रवेश के उपरान्त प्रथम कर्त्तव्य के रूप में इस संस्कार को मान्यता दी गई है। गार्हस्थ्य जीवन का प्रमुख उद्देश्य श्रेष्ठ सन्तानोत्पत्ति है। उत्तम संतति की इच्छा रखनेवाले माता-पिता को गर्भाधान से पूर्व अपने तन और मन की पवित्रता के लिये यह संस्कार करना चाहिए। वैदिक काल में यह संस्कार अति महत्वपूर्ण समझा जाता था।

सीमन्तोन्नयन को सीमन्तकरण अथवा **सीमन्त संस्कार** भी कहते हैं। सीमन्तोन्नयन का अभिप्राय है सौभाग्य संपन्न होना। गर्भपात रोकने के साथ-साथ गर्भस्थ शिशु एवं उसकी माता की रक्षा करना भी इस संस्कार का मुख्य उद्देश्य है। इस संस्कार के माध्यम से गर्भिणी स्त्री का मन प्रसन्न रखने के लिये सौभाग्यवती स्त्रियां गर्भवती की मांग भरती हैं। यह संस्कार गर्भ धारण के छठे अथवा आठवें महीने में होता है।

हिन्दू धर्म में, संस्कार परम्परा के अंतर्गत भावी माता-पिता को यह तथ्य समझाए जाते हैं कि शारीरिक, मानसिक दृष्टि से परिपक्व हो जाने के बाद, समाज को श्रेष्ठ, तेजस्वी नई पीढ़ी देने के संकल्प के साथ ही संतान पैदा करने की पहल करें। गर्भ ठहर जाने पर भावी माता के आहार, आचार, व्यवहार, चिंतन, भाव सभी को उत्तम और संतुलित बनाने का प्रयास किया जाय। उसके लिए अनुकूल वातवरण भी निर्मित किया जाय। गर्भ के तीसरे माह में विधिवत **पुंसवन संस्कार** सम्पन्न कराया जाय, क्योंकि इस समय तक गर्भस्थ शिशु के विचार तंत्र का विकास प्रारंभ हो जाता है। वेद मंत्रों, यज्ञीय वातावरण एवं संस्कार सूत्रों की प्रेरणाओं से शिशु के मानस पर तो श्रेष्ठ प्रभाव पड़ता ही है, अभिभावकों और परिजनों को भी यह प्रेरणा मिलती है कि भावी माँ के लिए श्रेष्ठ मनःस्थिति और परिस्थितियाँ कैसे विकसित की जाए। यह संस्कार गर्भस्थ शिशु के समुचित विकास के लिए गर्भिणी का किया जाता है। कहना न होगा कि बालक को संस्कारवान् बनाने के लिए सर्वप्रथम जन्मदाता माता-पिता को सुसंस्कारी होना चाहिए। उन्हें बालकों के प्रजनन तक ही दक्ष नहीं रहना चाहिए, वरन् सन्तान को सुयोग्य बनाने योग्य ज्ञान तथा अनुभव भी एकत्रित कर लेना चाहिए। जिस प्रकार रथ चलाने से पूर्व उसके कल-पुर्जों की आवश्यक जानकारी प्राप्त कर ली जाती है, उसी प्रकार गृहस्थ जीवन आरम्भ करने से पूर्व इस सम्बन्ध में आवश्यक जानकारी इकट्ठी कर लेनी चाहिए। यह अच्छा होता, अन्य विषयों की तरह आधुनिक शिक्षा व्यवस्था में दाम्पत्य जीवन एवं शिशु निर्माण के सम्बन्ध में शास्त्रीय प्रशिक्षण दिये जाने की व्यवस्था रही होती। इस महत्त्वपूर्ण आवश्यकता की पूर्ति संस्कारों के शिक्षणात्मक पक्ष से भली प्रकार पूरी हो जाती है। यों तो षोडश संस्कारों में सर्वप्रथम गर्भाधान संस्कार का विधान है, जिसका अर्थ यह है कि दम्पती अपनी प्रजनन प्रवृत्ति से समाज को सूचित करते हैं। विचारशील लोग यदि उन्हें इसके लिए अनुपयुक्त समझें, तो मना भी कर सकते हैं। प्रजनन वैयक्तिक मनोरंजन नहीं, वरन् सामाजिक उत्तरदायित्व है। इसलिए समाज के विचारशील लोगों को निमंत्रित कर उनकी सहमति लेनी पड़ती है। यही गर्भाधान संस्कार है। पूर्वकाल में यही सब होता था। आधुनिक भारतीय समाज के अन्धाधुन्ध पाश्चात्य सन्स्कृती के अनुसरण के वजह और विवेक की कमी के कारण;वह सन्तानोत्पत्ति को भी वैयक्तिक मनोरंजन का

रुप मान लिया गया हैं| इस कारण गर्भाधान संस्कार का महत्त्व कम हो गया। इतने पर भी उसकी मूल भावना को भुलाया न जाए, उस परम्परा को किसी न किसी रूप में जीवित रखना चाहिए। ग्रहस्थ एकान्त मिलन के साथ वासनात्मक मनोभाव न रखें, मन ही मन आदर्शवादी उद्देश्य की पूर्ति के लिए ईश्वर से प्रार्थना करते रहें, तो उसकी मानसिक छाप बच्चे की मनोभूमि पर अङ्कित होगी। लुक-छिपकर पाप कर्म करते हुए भयभीत और आशंकाग्रसित अनैतिक समागम-व्यभिचार के फलस्वरूप जन्मे बालक अपना दोष-दुर्गुण साथ लाते हैं। इसी प्रकार उस समय दोनों की मनोभूमि यदि आदर्शवादी मान्यताओं से भरी हुई हो, तो मदालसा, अर्जुन आदि की तरह मनचाहे स्तर के बालक उत्पन्न किये जा सकते हैं। गर्भ सुनिश्चित हो जाने पर तीन माह पूरे हो जाने तक **पुंसवन संस्कार** कर देना चाहिए। विलम्ब से भी किया तो दोष नहीं, किन्तु समय पर कर देने का लाभ विशेष होता है। तीसरे माह से गर्भ में आकार और संस्कार दोनों अपना स्वरूप पकड़ने लगते हैं। अस्तु, उनके लिए आध्यात्मिक उपचार समय पर ही कर दिया जाना चाहिए। इस संस्कार के नीचे लिखे प्रयोजनों को ध्यान में रखा जाए। गर्भ का महत्त्व समझें, वह विकासशील शिशु, माता-पिता, कुल परिवार तथा समाज के लिए विडम्बना न बने, सौभाग्य और गौरव का कारण बने। गर्भस्थ शिशु के शारीरिक, बौद्धिक तथा भावनात्मक विकास के लिए क्या किया जाना चाहिए, इन बातों को समझा-समझाया जाए। गर्भिणी के लिए अनुकूल वातावरण खान-पान, आचार-विचार आदि का निर्धारण किया जाए। गर्भ के माध्यम से अवतरित होने वाले जीव के पहले वाले कुसंस्कारों के निवारण तथा सुसंस्कारों के विकास के लिए, नये सुसंस्कारों की स्थापना के लिए अपने सङ्कल्प, पुरुषार्थ एवं देव अनुग्रह के संयोग का प्रयास किया जाए।

बालक का नाम उसकी पहचान के लिए नहीं रखा जाता। मनोविज्ञान एवं अक्षर-विज्ञान के जानकारों का मत है कि नाम का प्रभाव व्यक्ति के स्थूल-सूक्ष्म व्यक्तित्व पर गहराई से पड़ता रहता है। नाम सोच-समझकर तो रखा ही जाय, उसके साथ नाम रोशन करने वाले गुणों के विकास के प्रति जागरूक रहा जाय, यह जरूरी है। भारतीय सनातन परम्परा में **नामकरण संस्कार** में इस उद्देश्य का बोध कराने वाले श्रेष्ठ सूत्र समाहित रहते हैं। नामकरण शिशु जन्म के बाद पहला संस्कार कहा जा सकता है। यों तो जन्म के तुरन्त बाद ही जातकर्म संस्कार का विधान है, किन्तु वर्तमान परिस्थितियों में वह व्यवहार में नहीं दीखता। अपनी पद्धति में उसके तत्त्व को भी नामकरण के साथ समाहित कर लिया गया है। इस संस्कार के माध्यम से शिशु रूप में अवतरित जीवात्मा को कल्याणकारी यज्ञीय वातावरण का लाभ पहुँचाने का सत्प्रयास किया जाता है। जीव के पूर्व संचित संस्कारों में जो हीन हों, उनसे मुक्त कराना, जो श्रेष्ठ हों, उनका आभार मानना-अभीष्ट होता है। नामकरण संस्कार के समय शिशु के अन्दर मौलिक कल्याणकारी प्रवृत्तियों, आकांक्षाओं के स्थापन, जागरण के सूत्रों पर विचार करते हुए उनके अनुरूप वातावरण बनाना चाहिए। शिशु कन्या है या पुत्र, इसके भेदभाव को स्थान नहीं देना चाहिए। भारतीय संस्कृति में कहीं भी इस प्रकार का भेद नहीं है। शीलवती कन्या को सौ पुत्रों के बराबर कहा गया है। **'शत पुत्र-समा कन्या यस्य शीलवती सुता।'** इसके विपरीत पुत्र भी कुल धर्म को नष्ट करने वाला हो सकता है। **'जिमि कपूत के ऊपजे कुल सद्धर्म नसाहिं।'** इसलिए पुत्र या कन्या जो भी हो, उसके भीतर के अवांछनीय संस्कारों का निवारण करके श्रेष्ठतम की दिशा में प्रवाह पैदा करने की दृष्टि से नामकरण संस्कार कराया जाना चाहिए। यह संस्कार कराते

समय शिशु के अभिभावकों और उपस्थित व्यक्तियों के मन में शिशु को जन्म देने के अतिरिक्त उन्हें श्रेष्ठ व्यक्तित्व सम्पन्न बनाने के महत्त्व का बोध होता है । भाव भरे वातावरण में प्राप्त सूत्रों को क्रियान्वित करने का उत्साह जागता है। आमतौर से यह संस्कार जन्म के दसवें दिन किया जाता है। उस दिन जन्म सूतिका का निवारण-शुद्धिकरण भी किया जाता है। यह प्रसूति कार्य घर में ही हुआ हो, तो उस कक्ष को लीप-पोतकर, धोकर स्वच्छ करना चाहिए। शिशु तथा माता को भी स्नान कराके नये स्वच्छ वस्त्र पहनाये जाते हैं। उसी के साथ यज्ञ एवं संस्कार का क्रम वातावरण में दिव्यता घोलकर अभिष्ट उद्देश्य की पूर्ति करता है। यदि दसवें दिन किसी कारण नामकरण संस्कार न किया जा सके। तो अन्य किसी दिन, बाद में भी उसे सम्पन्न करा लेना चाहिए। घर पर, प्रज्ञा संस्थानों अथवा यज्ञ स्थलों पर भी यह संस्कार कराया जाना उचित है।

बोध प्रश्न -

1. संस्कारों में प्रथम संस्कार है।

क. सीमन्तोन्नयन ख. पुंसवन ग. गर्भाधान घ.नामकरण

2. महर्षि गौतम के मत में संस्कारों की संख्या है।

क. 30 ख.40 ग. 50 घ. 16

3. प्राचीनकाल में संस्कारों की संख्या थी।

क. 16 ख. 30 ग. 40 घ. 50

4. सीमन्त का अर्थ है –

क. गर्भ ख. केश ग. सीमा घ. नाम

5. गर्भाधान के पश्चात् होने वाला संस्कार है।

क. पुंसवनं ख. सीमन्तोन्नयन ग. नामकरण घ. कर्णवेध

3.3.1 गर्भाधान, सीमन्तोन्नयन, पुंसवनं एवं नामकरण स्वरूप

गर्भाधान संस्कार –

यह प्रथम संस्कार है जो ऋतु स्नान के पश्चात् कर्त्तव्य है। भार्या के स्त्री – धर्म में होने के 16 दिन तक वह गर्भ – धारण के योग्य रहती है, तदनन्तर रमण निष्फल जाता है। ज्योतिष शास्त्र के अनुसार रजोदर्शन के दिन से 6,8,10,12,14 तथा 16 वें दिनों में क्रियमाण गर्भाधान पुत्रदायक व विषम दिनों 5,7,9,11,13,15 वें दिनों में कन्याप्रद होता है। इस द्वादश दिनात्मक काल में विचारणीय मुहूर्त्त शुद्धि तिथि उभय पक्षों में – 2,3,5,7,10,11,12,13 शु.।

वार – चन्द्रवार, बुधवार, गुरूवार एवं शुक्रवार।

नक्षत्र – रोहिणी, मृगशिरा, तीनों उत्तरा, हस्त, स्वाती, अनुराधा , श्रवण, धनिष्ठा एवं शतभिषा।

लग्न – पुत्रार्थी विषम राशि तथा विषम नवांशगत लग्न में तथा कन्यांकाक्षी तद् विलोम लग्न में स्त्रीसंग करना चाहिये । लग्न, केन्द्र, त्रिकोण में शुभग्रह और 3,6,11 वें पापग्रह हो, लग्न को सूर्य,

मंगल और गुरू देख रहे हो तथा चन्द्रमा विषम नवमांश और शुभ ग्रहों की सन्निधि में हो तो गर्भाधान से पुत्रोत्पत्ति अवश्यंभावी होती है। मुहूर्त्तचिन्तामणि में आचार्य रामदैवज्ञ ने संस्कार प्रकरण में गर्भाधान संस्कार के बारें में लिखा है कि –

भद्राषष्ठीपर्वरिक्ताश्च सन्ध्याभौमार्काकीनाद्यरात्रीश्चतस्रः।

गर्भाधानं त्र्युत्तरेन्द्रर्क मैत्रब्राह्मस्वातीविष्णुवस्वम्बुपे सत् ॥

अर्थ – भद्रा, षष्ठी, पर्व (अष्टमी, चतुर्दशी, अमावस्या, पूर्णिमा) एवं रिक्ता (4,9,14) तिथियॉं, सन्ध्या काल, भौम, रवि और शनिवार तथा ऋतुकाल की प्रारम्भिक 4 चार राशियॉं गर्भाधान के त्याज्य है।

तीनों उत्तरा (उ0 फा0, उ0षा0, उ0भा0), मृगशिरा, हस्त, अनुराधा, रोहिणी, स्वाती, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, इन नक्षत्रों में गर्भाधान होता है।

विशेष – ऋतुस्नाता वनिता से सहवास न करने वाला व्यक्ति भ्रूणघ्न होता है, और वह गर्भस्थ शिशु की हत्या के समकक्ष पाप का भागी होता है –

ऋतुस्नातां तु यो भार्या सन्निधै नोपगच्छति।

घोरायां भ्रूणहत्यायांयुज्यतेनात्र संशयः॥ स्वायंभुवः।

परन्तु पुरूष रोगी, विदेश – वासी, कैदी हो अथवा पत्नी वृद्धा, वन्ध्या, दुराचारिणी, मृत्वत्सा, रज से वंचित तथा अतीव संततिवाली हो अथवा पर्व तिथियों में भोग नहीं करने से भ्रूणहत्या का दोष नहीं लगता है।

यद्यपि गर्भधारण के दिन स्त्री - पुरूष दोनों का चन्द्र बल वांछनीय है तथापि स्त्री – चन्द्र बल विशेषावश्यक है। तद्दिन तीनों गण्डान्त, श्राद्ध का पूर्व दिन या मूल, मघा, रेवती नक्षत्र संक्रान्ति, व्यतिपात, वैधृति, ग्रहण सन्ध्या तथा दिन का समय सर्वथा त्याज्य है।

परं च पुरूष को चाहिये कि नव परिणता पत्नी के साथ रजोदर्शन के पूव संसर्ग न करें। उक्तं च –

प्रग्रजोदर्शनात्पत्नीं नेयाद् गत्वा पतत्यधः।

व्यर्थीकारेण शुक्रस्य ब्रह्महत्यामवांप्नुयात्।। - विष्णुधर्मोत्तर।

गर्भाधान की निष्पत्ति के अनन्तर निद्रावस्थित होते समय पुरूष को मुख में से ताम्बूल, पलंग से पत्नी तथा मस्तक से माला, पुष्प तथा तिलक प्रभृति का परित्यागकर देना चाहिये।

पुंसवनं संस्कार – यह प्रथम गर्भ स्थिति में ही निम्न कालशुद्धि में करना चाहिये। ज्योतिष शास्त्र के अनुसार निम्न मुहूर्त्तों में पुंसवनं संस्कार करना चाहिये -

मास – गर्भधारण से तृतीय मास

तिथि - 1 कृष्णपक्ष, 2,3,5,7,10,11,12,13 शु.।

वार – सूर्यवार, मंगलवार एवं गुरूवार

नक्षत्र – अश्विनी, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, मघा, तीनों पूर्वा, तीनों उत्तरा, हस्त, मूल, अनुराधा, पूर्वाभाद्रपद, श्रवण एवं रेवती।

लग्न – सामान्य लग्न शुद्धि उपलब्ध होने पर 2,5,6,8,9,11,12 आदि अन्यतम राशि लग्न।

मुहूर्त्तचिन्तामणि में आचार्य रामदैवज्ञ ने संस्कार प्रकरण में पुंसवनं संस्कार के बारें में लिखते है –

पूर्वोदितैः पुंसवनं विधेयं मासे तृतीये त्वथ विष्णुपूजा।

मासेऽष्टमें विष्णुविधातृजीवैर्लग्ने शुभे मृत्युगृहे च शुद्धे ।।

अर्थ – गुरू, रवि और भौमवासरों, मृगशिरा, पुष्य, मूल, श्रवण, पुनर्वसु तथा हस्त नक्षत्रों में रिक्ता 4,9,14 अमावस्या, द्वादशी षष्टी और अष्टमी तिथियों को छोड़कर शेष तिथियों में गर्भमासपति के बलवान रहने पर आठवें अथवा छठें मास में शुभग्रहों के केन्द्र 1,4,7,10 एवं त्रिकोण 5,9 भावों में स्थित रहने पर तथा पापग्रहों के 3,6,11 भावों में जाने पर पुंसवनं संस्कार तीसरे मास में करना चाहिये। इसके अनन्तर आठवें मास में श्रवण, रोहिणी और पुष्य नक्षत्रों में शुभलग्न में अष्टम भाव के शुद्ध रहने पर गर्भिणी को भगवान विष्णु का पूजन करना चाहिये।

विशेष - पुंसवन संस्कार सीमन्तोन्नयन से पूर्व होता है इसका मुख्य उद्देश्य है गर्भ में पुरूष जातक हेतु संस्कार करना । पुंसवन का व्युत्पत्ति लभ्य अर्थ भी यही है । **पुमान सूयतेऽनेन कर्मणेति पुंसवनम्**। गर्भस्थ शिशु का पुत्र अथवा पुत्री सम्बन्धी विभाजन तीसरे मास में हो जाता है। अत: पुंसवन संस्कार तीसरे मास में ही युक्तिसंगत भी है।

सीमन्तोन्नयन संस्कार –

यह तृतीय संस्कार है, जो विवाहानन्तर प्रथम गर्भ स्थिति के अवसर पर ही करणीय है। ज्योतिष शास्त्र के अनुसार सीमन्तोन्नयन संस्कार

मास – गर्भधारण से 6,8 वें मास में जब मासेश्वर निर्बल, अस्त या नीचस्थ न हो।

तिथि – शुक्ल 2,3,5,7,10,11,13।

वार – सूर्यवार, मंगलवार एवं गुरूवार।

नक्षत्र – मृगशिरा, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, मूल, श्रवण।

लग्न – 1,3,5,7,9,11 आदि राशि लग्न या राशि नवांश लग्न। पाप ग्रहों की लग्न पर दृष्टि हो और सामान्य लग्नशुद्धि प्राप्त हो।

मुहूर्त्तचिन्तामणि में सीमन्तसंस्कार –

जीवार्कारदिने मृगेज्यनिर्ऋतिश्रोत्रादितिब्रघ्नभै: ।
रिक्तामार्करसाष्टवर्ज्यतिथिभिर्मासाधिपे पीवरे ।।
सीमन्तोऽष्टमषष्ठमासि शुभदै: केन्द्रत्रिकोणे खलै –
र्लाभरित्रिषु वा ध्रुवान्त्यसदहे लग्ने च पुंभाशके ।।

अर्थ - गुरू, रवि और भौमवासरों, मृगशिरा, पुष्य, मूल, श्रवण, पुनर्वसु तथा हस्त नक्षत्रों में रिक्ता 4,9,14 अमावस्या, द्वादशी षष्टी और अष्टमी तिथियों को छोड़कर शेष तिथियों में गर्भमासपति के बलवान रहने पर आठवें अथवा छठें मास में शुभग्रहों के केन्द्र 1,4,7,10 एवं त्रिकोण 5,9 भावों में स्थित रहने पर तथा पापग्रहों के 3,6,11 भावों में जाने पर सीमन्त संस्कार शुभ होता है।

विमर्श – सीमन्त संस्कार गर्भ का संस्कार है। गर्भ में शिशु की स्थिति एवं विकास में किसी प्रकार का व्यवधान उपस्थित न हो इसी उद्देश्य से यह संस्कार किया जाता है। क्योंकि गर्भस्थ शिशु के शिर एवं शरीर में रोम की उत्पत्ति गर्भ से छठें मास में होती है। सीमन्त का अर्थ भी केश ही होता है। अत: यह केश संस्कार ही है। गर्भ में मासों के अनुसार शिशु का विकास क्रम इस प्रकार है –

कललघनाऽवयवास्थित्वकरोमस्मृतिसमुद्भव: ।

प्रथम मास में रक्त संचय, द्वितीय में पिण्ड रूप, तृतीय में अंगनिर्माण, चतुर्थ में हड्डी, पॉचवें में चर्म,

छठे मास में रोम, सातवें में स्मृति, आठवें और नवम मास में शिशु का शारीरिक विकास होता है। गर्भकालिक स्थिति में तृतीय मास भी महत्वपूर्ण होता है। क्योंकि तीसरे मास में ही अंगों की उत्पत्ति होती है तथा कन्या अथवा पुत्र का निर्णय हो जाता है। अत: तीसरे मास में पुंसवन नामक संस्कार का विधान बताया गया है। यद्यपि कुछ आचार्यों ने पुंसवन और सीमन्त दोनों संस्कारों को एक साथ करने के लिये कहा है –

सीमन्तोन्नयनस्योक्ततिथिवारभराशिषु।
पुंसवं कारयेद्विद्वान् सहैवेकदिनेऽथवा॥

नामकरण संस्कार –

नामाखिलस्य व्यवहारहेतु: शुभावहं कर्मसु भाग्यहेतु:।
नाम्नैव कीर्तिं लभते मनुष्यस्तत: प्रशस्तं खलु नाम कर्म॥

उपर्यभिहित वचनानुसार मनुष्य के नाम की सार्वभौमिकता का यह स्तर होने के कारण सूतक समाप्ति पर कुल देशाचार के अनुरूप 10,12,13,16,19,22 वें दिन नामकरण संस्कार करना चाहिये। प्रकारान्तरेण, विप्र को 10 या 12 वें दिन, क्षत्रिय को 13 वें दिन, वैश्य को 16 या 20 वें दिन तथा शूद्र को 30 वें दिन बालक का नामकरण संस्कार करना चाहिये। नामकरण पिता या कुल में वृद्ध व्यक्ति के द्वारा होना चाहिये। पिता कुर्यादन्यो वा कुलवृद्ध:॥

तिथि – 1 कृ. 2,3,7,10,11,13 शु.।

वार – चन्द्रवार, बुधवार, गुरूवार तथा शुक्रवार।

नक्षत्र – अश्विनी, रोहिणी, मृगशिरा, पुनर्वसु, तीनों उत्तरा, हस्त, चित्रा, स्वाती, अनुराधा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा एवं रेवती।

लग्न - 2,4,6,7,9,12 लग्न। जब लग्न अष्टम और द्वादश भाव शुद्ध हो 2,3,5,9 वें चन्द्रमा 3,6,11 वें पापग्रह और अन्यत्र शुभ ग्रह हो।

मुहूर्त्त चिन्तामणि में नामकरण संस्कार –

तज्जातकर्मादि शिशोर्विधेयं पर्वाख्यरिक्तोनतिथौ शभेऽह्नि।
एकादशे द्वादशकेऽपि घस्रे मृदुध्रवक्षिप्रचरोडुषु स्यात्॥

अर्थ – अष्टमी, चतुर्दशी, अमावस्या आदि पर्व संज्ञक एवं रिक्ता संज्ञक 4,9,14 तिथियों को छोड़कर शेष तिथियो में शुभ दिनों में जन्म से ग्यारहवें अथवा बारहवें दिन मृदु – ध्रुव – क्षिप्र और चरसंज्ञक मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा, तीनों उत्तरा, रोहिणी, हस्त, अश्विनी, पुष्य, स्वाती, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा और शतभिष नक्षत्रों में नवजात शिशु का जातकर्म और नामकरण संस्कार करना चाहिये।

विमर्श – जातकर्म सन्तान उत्पन्न होने के बाद जातक की श्री वृद्धि एवं ग्रहदोष निवारण हेतु किया जाता है। मनु ने लिखा है कि जातक के जन्म के तुरन्त बाद तथा नालच्छेदन के पूर्व जातकर्म करना चाहिये –

प्राङ्नाभिवर्द्धनात् पुंसो जातकर्म विधीयते॥

जन्म समय में तत्काल ग्रहशान्ति की जा सकती है। क्योंकि सूतक का आरम्भ नालच्छेदन से होता है। जैमिनि ने स्पष्ट शब्दों में लिखा है –

यावन्नोच्छिद्यते नालं तावन्नाप्नोति सूतकम् ।
छिन्ने नाले ततः पश्चात् सूतकं तु विधीयते ॥

जातकर्म का प्रयोजन –

जातकर्म क्रियां कुर्यात् पुत्रायुः श्रीविवृद्धये ।
ग्रहदोषविनाशाय सूतिकाऽशुभविच्छिदे ॥

3.5 सारांशः

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि हमारे शास्त्रों में मान्य सोलह संस्कारों में गर्भाधान प्रथम संस्कार है । गृहस्थ जीवन में प्रवेश के उपरान्त प्रथम कर्त्तव्य के रूप में इस संस्कार को मान्यता दी गई है । गार्हस्थ्य जीवन का प्रमुख उद्देश्य श्रेष्ठ सन्तानोत्पत्ति है । उत्तम संतति की इच्छा रखनेवाले माता-पिता को गर्भाधान से पूर्व अपने तन और मन की पवित्रता के लिये यह संस्कार करना चाहिए। भार्या के स्त्री – धर्म में होने के 16 दिन तक वह गर्भ – धारण के योग्य रहती है, तदनन्तर रमण निष्फल जाता है । ज्योतिष शास्त्र के अनुसार रजोदर्शन के दिन से 6,8,10,12,14 तथा 16 वें दिनों में क्रियमाण गर्भाधान पुत्रदायक व विषम दिनों 5,7,9,11,13,15 वें दिनों में कन्याप्रद होता है । इस द्वादश दिनात्मक काल में विचारणीय मुहूर्त्त शुद्धि तिथि उभय पक्षों में – 2,3,5,7,10,11,12,13 शु. । वार – चन्द्रवार, बुधवार, गुरूवार एवं शुक्रवार । नक्षत्र – रोहिणी, मृगशिरा, तीनों उत्तरा, हस्त, स्वाती, अनुराधा , श्रवण, धनिष्ठा एवं शतभिषा । लग्न – पुत्रार्थी विषम राशि तथा विषम नवांशगत लग्न में तथा कन्यांकाक्षी तद् विलोम लग्न में स्त्रीसंग करना चाहिये । लग्न, केन्द्र, त्रिकोण में शुभग्रह और 3,6,11 वें पापग्रह हो, लग्न को सूर्य, मंगल और गुरू देख रहे हो तथा चन्द्रमा विषम नवमांश और शुभ ग्रहों की सन्निधि में हो तो गर्भाधान से पुत्रोत्पत्ति अवश्यंभावी होती है । वैदिक काल में यह संस्कार अति महत्वपूर्ण समझा जाता था । सीमन्तोन्नयन को सीमन्तकरण अथवा **सीमन्त संस्कार** भी कहते हैं । सीमन्तोन्नयन का अभिप्राय है सौभाग्य संपन्न होना। गर्भपात रोकने के साथ-साथ गर्भस्थ शिशु एवं उसकी माता की रक्षा करना भी इस संस्कार का मुख्य उद्देश्य है। इस संस्कार के माध्यम से गर्भिणी स्त्री का मन प्रसन्न रखने के लिये सौभाग्यवती स्त्रियां गर्भवती की मांग भरती हैं। यह संस्कार गर्भ धारण के छठे अथवा आठवें महीने में होता है। संस्कारों का प्रचलन वैदिक काल से चला आ रहा है । हमारे प्राचीन महर्षियों ने संस्कारों का निर्माण कर मानव जीवन को जीवनयापन करने का सूत्रपात किया । यदि मानव उन संस्कारों का स्व जीवन में पालन करता है तो नि:सन्देह ही उसका जीवन सफल तरीके से व्यतीत हो सकेगा । उसका सम्पूर्ण जीवन विशुद्ध हो जायेगा । उन्हीं संस्कारों के क्रम में गर्भाधान, सीमन्तोन्नयन, पुंसवन एवं नामकरण संस्कार बतलाये गये है ।

3.6 पारिभाषिक शब्दावली

संस्कार – मानव जीवन को सुव्यवस्थित रखने की क्रिया

गर्भाधान – गर्भ धारण कराने हेतु किया जाना वाला संस्कार

सीमन्तोन्नयन – गर्भस्थ शिशु के रक्षार्थ किया जाने वाला संस्कार

पुंसवन – तृतीय मास में गर्भस्थ शिशु के रक्षार्थ किया जाने वाला संस्कार।

नामकरण - नाम रखने हेतु किया जाना वाला संस्कार

जीव – वृहस्पति

रिक्ता - 9,4,14

पूर्णा – 5,10,15

भद्रा संज्ञक – 2,7,12

सन्तानोत्पत्ति – सन्तान की उत्पत्ति

3.7 बोधप्रश्नों के उत्तर

1. ग

2. ख

3. ग

4. ख

5. ख

3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. मुहूर्त्तपारिजात
2. मुहूर्त्तचिन्तामणि
3. वृहज्ज्योतिसार
4. ज्योतिष सर्वस्व
5. वीरमित्रोदय

3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. गर्भाधान एवं सीमन्तोन्नयन संस्कार को बतलाते हुये उसका विस्तृत वर्णन कीजिये
2. पुंसवन एवं नामकरण संस्कार को परिभाषित करते हुये उसका विस्तार से उल्लेख कीजिये।

इकाई – 4 जलपूजन, कर्णवेध, अन्नप्राशन, चूड़ाकर्म

इकाई की रूपरेखा

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 जलपूजन, कर्णवेध, अन्नप्राशन एवं चूड़ाकर्म का परिचय
4.4 जलपूजन, कर्णवेध, अन्नप्राशन एवं चूड़ाकर्म स्वरूप व महत्व
बोध प्रश्न
4.5 सारांशः
4.6 पारिभाषिक शब्दावली
4.7 बोधप्रश्नों के उत्तर
4.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई द्वितीय खण्ड के चतुर्थ इकाई '**जलपूजन, कर्णवेध, अन्नप्राशन एवं चूड़ाकर्म**' नामक शीर्षक से सम्बन्धित है। संस्कारों के क्रम में जलपूजन का सम्बन्ध प्रसूता स्त्री द्वारा जल पूजन **(कुआॅ पूजन)** से है। जन्म के पश्चात् शिशु का कर्णवेध, अन्नप्राशन एवं चूड़ाकर्म (मुण्डन संस्कार) संस्कार किया जाता है।

भारतवर्ष में अनेक स्थानों पर प्रसूता स्त्री के द्वारा जल पूजन होता है, जिसे सामान्य भाषा में कुॅआ पूजन कहते है। जातक के जन्म के पश्चात् उसका कान छेदन संस्कार किया जाता है। दक्षिण भारत में यह संस्कार बहुतायत मात्रा में होता है। अन्नप्राशन जातक को सर्वप्रथम अन्न पान कराने से है तथा चूड़ाकर्म जातक का मुण्डन संस्कार होता है।

इस इकाई से पूर्व आपने गर्भाधान, सीमन्तोन्नयन, पुंसवन एवं नामकरण संस्कार का अध्ययन कर लिया है। यहॉ इस इकाई में आप **जलपूजन, कर्णवेध, अन्नप्राशन एवं चूड़ाकर्म** संस्कार का विस्तार से अध्ययन करेंगे।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप-

1. जलपूजन, कर्णवेध, अन्नप्राशन एवं चूड़ाकर्म संस्कार को परिभाषित करने में समर्थ हो सकेंगे।
2. जलपूजन, कर्णवेध, अन्नप्राशन एवं चूड़ाकर्म संस्कार के महत्त्व को समझा सकेंगे।
3. जलपूजन, कर्णवेध, अन्नप्राशन एवं चूड़ाकर्म संस्कार के विभेद का निरूपण करने में समर्थ होंगे।
4. जलपूजन, कर्णवेध, अन्नप्राशन एवं चूड़ाकर्म संस्कार का स्वरूप वर्णन करने में समर्थ होंगे।
5. जलपूजन, कर्णवेध, अन्नप्राशन एवं चूड़ाकर्म संस्कार के सम्बन्ध को निरूपित करने में समर्थ होंगे।

4.3 जलपूजन, कर्णवेध, अन्नप्राशन एवं चूड़ाकर्म का परिचय

जलपूजन –

निम्न काल शुद्धि की सन्निधि में मास पूर्ति पर जनयित्री को वापी, कूप, तालाब, नदी, समुद्रादि पर जाकर कुलाचार सम्मत जलपूजा करनी चाहिये।

तिथि – 1 कृष्णपक्ष , 2,3,5,7,10,11,13 शुक्लपक्ष

वार – चन्द्रवार, बुधवार एवं गुरूवार

नक्षत्र – मृगशिरा, पुनर्वसु, पुष्य हस्त, अनुराधा, मूल एवं श्रवण।

विशेष – जल पूजन में श्राद्धपक्ष – दिन, क्षयाधिमास, चैत्र, पौष तथा कुयोगों का निवारण करना चाहिये। परन्तु एक मास के पूर्व श्राद्ध के अतिरिक्त दीर्घव्यापी दोषों का विचार नहीं किया जाता।

पौष, मलमास, चैत्र गुरू शुक्रास्त काल, मासान्त को छोड़कर शेष मासों में रिक्ता तिथि के अतिरिक्त तिथियों में सोम, बुध, गुरूवार में जल पूजन करें। मृगशिरा, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, अनुराधा, मूल, श्रवण नक्षत्रों में प्रसूता स्त्री को कुँआ पूजन करना चाहिये।

कर्णवेध संस्कार -

मुहूर्तचिन्तामणि में कर्णवेध मुहूर्त –

हित्वैतांश्चैत्रपौषावमहरिशयनं जन्ममासं च रिक्तां
युग्माब्दं जन्मतारामृतुमुनिवसुभिः सम्मिते मास्यथो वा।
जन्माहात्सूर्यभूपैः परिमितदिवसे ज्ञेज्यशुक्रेन्दुवारेऽ।
थौजाब्दे विष्णुयुग्मादितिमृदुलघुभैः कर्णवेधः प्रशस्तः॥

अर्थ - चैत्र,पौष, तिथिक्षय, हरिशयन काल (आषाढ़ शुक्ल एकादशी (विष्णुशयनी) से कार्तिक शुक्ल 11 प्रबोधिनी एकादशी पर्यन्त 4 मास) जन्म मास, रिक्ता तिथि 4,9,14, समवर्ष एवं जन्म संज्ञक प्रथम तारा इन सबको छोड़कर जन्म से छठें, सातवें, आठवें मासों में अथवा जन्म से 12 वें 16 वें दिनों में बुध, गुरू, शुक्र और सोमवारों में विषम वर्षों में श्रवण, धनिष्ठा, पुनर्वसु, मृदुसंज्ञक (मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा) एवं लघुसंज्ञक (हस्त, अश्विनी, पुष्य, अभिजित) नक्षत्रों में कर्णवेध शुभ होता है।

विमर्श: - जन्म मास के नाम से प्राय: चैत्रादि जन्म मास ग्रहण किया जाता है। अर्थात् चैत्रादि जिस मास में जन्म हो उसे ही **जन्म मास** कहा जाता है। परन्तु शुभाशुभ विवेक में जन्म से 30 दिन के समय को ही जन्म मास कहा जाता है तथा इन्हीं 30 दिनों को शुभ कार्यों में वर्जित किया गया है। यथा –

आरभ्य जन्मदिवसं यावत्त्रिंशदिनं भवेत्।
जन्ममासः स विज्ञेयो गर्हितः सर्वकर्मसु॥

शुभ कार्यों में जन्म मास का निषेध व्यास द्वारा –

यो जन्ममासे क्षुरकर्म यात्रां कर्णस्य वेधं कुरूते हि मोहात्।
मूढः स रोगी धनपुत्रनाशं प्राप्नोति गूढं निधनं तदाशु॥

बालक के दोनों कानों में छेद करवाना आजकल पुत्रों के विषय में प्रचलित है। हमारे विचार से इसका वैज्ञानिक तथ्य भी कुछ होगा ही। फिर छेद करवाने के बाद यदि उसमें बालियॉ या कुण्डलादि न पहने जायें तब वह किया हुआ छेद भी स्वयं ही भर जाता है। आचार्य वृहस्पति इसका सबसे बड़ा प्रयोजन स्वास्थ्य रक्षा ही मानते है। कहा जाता है कि इसे करवाने से हर्निया की सम्भावानायें समाप्त हो जाती है।

सम वर्ष को छोड़कर अर्थात् विषम वर्षों में या प्रथम वर्ष में 6,7,8 वें मास में यह संस्कार करना चाहिये। उसमें भी जन्म मास को छोड़ना चाहिये। रिक्ता तिथि, जन्म मास, जन्म नक्षत्र , क्षयतिथि,

चैत्र, पौष, व अधिक मास को छोड़कर देव उठने के बाद करवाना चाहिये। शुभ वारों में पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, अनुराधा, हस्त, अश्विनी, पुष्य, अभिजित, नक्षत्रों में करना चाहिये। लग्न शुद्धि पूर्ववत् देखकर विशेषतया 2,7,9,12 लग्नों में लग्नेश या गुरू लग्न पर दृष्टि या योग रखे तब कर्णवेध करना चाहिये।

लड़के का दायॉ कान व लड़की का बायॉ कान पहले छेदन करन चाहिये। लड़की के नाक में भी इसी समय छेदन करना उपयुक्त है। वेधन के बाद तीसरे दिन वेध स्थान को गर्म पानी से धानी चाहिये।

कर्णवेधे लग्नशुद्धिः -

संशुद्धे मृतिभवने त्रिकोणकेन्द्रत्रयायस्थैः शुभखचरैः कवीज्यलग्ने।

पापाख्यैररिसहजायगेहसंस्थैर्लग्नस्थे त्रिदशगुरौ शुभावहः स्यात्॥

अर्थ – लग्न से अष्टम भाव के शुद्ध रहने पर केन्द्र 1,4,7,10 त्रिकोण 5,9 तृतीय और एकादश भावों में शुभग्रहों के स्थित रहने पर शुक्र और गुरू के लग्नों वृष, तुला, धनु, मीन के दोनों दिशाओं में उदय – अस्त के बाद एवं पहले 15 – 15 दिनों तक रहती है। अर्थात् उदय के बाद 15 दिन तक गुरू की बाल्यावस्था तथा अस्त के पूर्व 15 दिनों तक वृद्धावस्था होती है।

विमर्शः - ग्रहों का उदय – अस्त होना मनुष्य की दृष्टि से ओझल होना व्यक्त करता है। वस्तुतः सभी ग्रह सभी काल में उदित रहते हैं। स्थानभेद एवं सूर्य के समीप्य से इनका उदयास्त प्रतीत होता है। सूर्य सिद्धान्त में लिखा है – **सूर्येणास्तमनं सह॥**

अर्थात् सूर्य के साथ होने पर ग्रह अस्त होता है। गुरू और शुक्र के उदय और अस्त का मुहूर्त्त की दृष्टि से विशेष महत्व है। अतः इनके उदय अस्त का विवरण ग्रहलाघव के मतानुसार प्रस्तुत है –

शुक्र पूर्व दिशा में अस्त होने के 2 मास बाद पश्चिम से उदित होता है तथा उदय से 8 मास 22 दिन 30 घटी पर पश्चिम में अस्त, अस्त से 7 दिन 30 घटी बाद पुनः पूर्व में उदय तथा उदय से 8 मास 22 दिन 30 घटी बाद पुनः पूर्व में अस्त होता है। इसी प्रकार गुरू – अस्त होने के 1 मास उदय, तथा उदय से लगभग 12 मास 15 दिन बाद अस्त होता है।

अन्नप्राशन संस्कार –

आचार्य रामदैवज्ञ ने मुहूर्त्त चिन्तामणि में अन्नप्राशन मुहूर्त्त को निम्न प्रकार से कहा है –

रिक्तानन्दाष्टदर्शं हरिदिवसमथो सौरिभौमार्कवारान्।

लग्नं जन्मर्क्षलग्नाष्टमगृहलवगं मीनमेषालिकं च॥

हित्वा षष्ठात्समे मास्यथ हि मृगदृशां पंचमादोजमासे।

नक्षत्रैः स्यात् स्थिराख्यैः सुमृदु लघु चरैर्बालकान्नाशनं सत्॥

रिक्ता (4,9,14) नन्दा (1,6,11) अष्टमी, अमावस्या, द्वादशी तिथियों को शनिवार, भौमवार, एवं रविवार को जन्मलग्न, जन्म नक्षत्र, जन्म लग्न से अष्टम भाव में स्थित राशि के नवमांश तथा मीन,

मेष और वृश्चिक लग्नों को छोड़कर जन्म समय से छठे मास से आरम्भ कर विषम मासों में स्थिर संज्ञक (उ0 फा0 , उ0षा0, उ0भा0, रोहिणी,) मृदुसंज्ञक (मृग, रेवती, चित्रा, अनुराधा) लघुसंज्ञक (हस्त, अश्विनी, पुष्य, अभिजित्) एवं चर संज्ञक (स्वाति, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा) नक्षत्रों में बालकों का अन्नप्राशन करना चाहिये।

अन्नप्राशन में लग्नशुद्धि –

केन्द्रत्रिकोणसहजेषु शुभैः खशुद्धे लग्ने त्रिलाभरिपुगैश्च वदन्ति पापैः।
लग्नाष्टषष्ठरहितं शशिनं प्रशस्तं मैत्राम्बुपानिलजनुर्भमसच्च केचित्॥

अर्थ - केन्द्र (1,4,7,10) , त्रिकोण (5,9) एवं तृतीय भावों में शुभग्रह स्थित हों, लग्न से दशम भाव शुद्ध हो तृतीय, एकादश एवं षष्ठ भावों में पापग्रह गये हों तथा लग्न षष्ठ एवं अष्टम चन्द्रमा से रहित हो (अर्थात् 1,6,8 भावों को छोड़कर शेष भावों में चन्द्रमा हो तो) अन्नप्राशन शुभ होता है। बालक को प्रथम बार अन्न की बनी चीज खिलाने अर्थात् ठोस अन्न का आहार प्रथम बार देने का नाम अन्नप्राशन है। प्राचीन परम्परानुसार षष्ठ मास से उपर सम मास में पुत्र का तथा पॉचवें मास से आगे विषम मास में यथावसर कन्या का अन्नप्राशन होना चाहिये। उसमें भी बालक को चन्द्रबल शुभ होने पर शुक्ल पक्ष रहे, यह आवश्यक है।

अत: पुत्र का 6,8,10,12 मासों में व पुत्री का 5,7,9,11 मासों में अन्न प्राशन करें। तिथियॉ रिक्ता, नन्दा, अमावस्या, द्वादशी व अष्टमी को छोड़कर शेष में से कोई लेनी चाहिये। नक्षत्र मृदु, लघु, चर स्थिर संज्ञक हों, ऐसा विचार कर लें। मीन, मेष वृश्चिक लग्न को व जन्म या राशि से अष्टम लग्न व नवमांश को छोड़कर शेष लग्नों में पूर्ववत् लग्न शुद्धि देखकर शुभ वारों में अन्न प्राशन करायें। इस संस्कार में दशम भाव में भी कोई ग्रह लग्न कुण्डली में न हो यह आवश्यक है। प्रयोग पारिजात में कहा गया है –

दशमस्थानगान् सर्वान् वर्जयेन्मतिमान्नरः।
अन्नप्राशनकृत्येषु मत्युक्लेशभयावहान्॥

अन्न प्राशन के समय सिर की टोपी हटा लें तथा दक्षिण की ओर मुख न करवायें।

शिरोवेष्टस्तु यो भुक्ते दक्षिणाभिमुखस्तु यः।
वामपादकरः स्थित्वा तद्वै रक्षांसि भुजते॥

अत: सामान्यतया बड़े लोगों को भी सिर खुला रख कर, पैरों को धोकर अपने हाथ व बायें पैर न झुकते हुये दक्षिण के अतिरिक्त दिशा में मुख करके भोजन करना चाहिये।

शास्त्र से लोक परम्परा बलवती होती है। आजकल तो डॉक्टरों की सलाह पर चौथे मास में ही अन्न खिलाना प्रारम्भ कर देते है। अत: पुत्र के सन्दर्भ में 4,6,8,10,12 एवं कन्या के विषय में 3,5,7 आदि मास भी रख लें तथा पूर्ववत् मुहूर्त्त विचार लेना चाहिये इससे कोई हानि नहीं होगी।

चूड़ाकर्म –

आचार्य रामदैवज्ञ ने संस्कार प्रकरण में चूड़ाकर्म मुहूर्त्त को इस प्रकार बतलाया है –

चूडा वर्षात्तृतीयात्प्रभवति विषमेऽष्टार्करिक्ताद्यषष्ठी
पर्वोनाहे विचैत्रोदगयनसमये ज्ञेन्दुशुक्रेज्यकानाम् ।।
वारे लग्नांशयोश्चास्वभनिधनतनौ नैधने शुद्धियुक्ते ।
शाक्रोपेतैर्विमैत्रैर्मृदुचरलघुभैरायषट्त्रिस्थपापैः ।।

अर्थ - जन्मकाल या आधान काल से तीसरे वर्ष से विषम वर्षों में अष्टमी, द्वादशी, रिक्ता 4,9,14 प्रतिपदा, षष्ठी एवं पर्वों को छोड़कर शेष तिथियों में चैत्र मास को छोड़कर शेष उत्तरायण के मासों में, बुध, चन्द्र, शुक्र और गुरू वासरों में तथा इन्हीं ग्रहों के लग्नों और नवमांशों में अपनी राशि या लग्न से अष्टम राशि के लग्न को छोड़कर, तथा अष्टम भाव के शुद्ध रहने पर ज्येष्ठा से युक्त और अनुराधा से रहित मृदु – चर – लघु संज्ञक नक्षत्रों में, लग्न से 11,6,3 भवनों में पापग्रहों के रहने पर चूड़ाकर्म शुभ होता है।

बोध प्रश्न -

1. जलपूजन से तात्पर्य है।

क. तालाब पूजन ख. कुँआ पूजन ग. नहर पूजन घ. कोई नही

2. चूड़ाकर्म का अर्थ है –

क. मुण्डन संस्कार ख. कर्णवेध संस्कार ग. अन्नप्राशन संस्कार घ. व्रतबन्ध संस्कार

3. विष्णुशयन आरम्भ होता है –

क. आषाढ़ कृष्ण एकादशी से ख. आषाढ़ शुक्ल एकादशी से ग. आषाढ़ शुक्ल तृतीया से

घ. आषाढ़ शुक्ल पंचमी से

4. चर संज्ञक नक्षत्र है।

क. स्वाति, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा ख. स्वाति, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा

ग. स्वाति, पुनर्वसु, श्रवण, पू0भा0 घ. स्वाति, पुनर्वसु, मृगशिरा, रेवती

5. रिक्ता संज्ञक तिथियॉं है।

क. 1,11,6 ख. 2,7,12 ग. 3,8,13 घ. 9,4,14

विमर्शः - मुण्डन संस्कार के लिये मनु ने प्रथम और द्वितीय वर्ष में भी बतलाया है। यथा –

चूड़ाकर्म द्विजातीनां सर्वेषामेव धर्मतः ।
प्रथमेऽब्दे द्वितीये वा कर्त्तव्यं श्रुतिचोदनात् ।।

उक्त श्लोक में जन्म नक्षत्र का उल्लेख नहीं किया गया है जब कि प्रायः सभी शुभ कार्यों में जन्म नक्षत्र का निषेध किया गया है। कश्यप के मतानुसार अन्नप्राशन, मुण्डन, व्रतबन्ध और

राज्याभिषेक में जन्म नक्षत्र ग्राह्य है तथा अन्य शुभ कार्यों में त्याज्य है –

नवान्नप्राशने चौले व्रतबन्धेऽभिषेचने।

शुभदं जन्मनक्षत्रमशुभं त्वन्यकर्मणि॥

चौलकर्मणि केन्द्रस्थग्रहाणां फलम् –

क्षीणचन्द्रकुजसौरिभास्करै र्मृत्युशस्त्रमृतिपङ्गगुताज्वराः।

स्युः क्रमेण बुधजीवभार्गवैः केन्द्रगैश्च शुभमिष्टतारया॥

अर्थ - केन्द्र स्थानों में क्षीण चन्द्रमा, मंगल शनि और सूर्य के जाने पर क्रम से मृत्यु, शास्त्र घात से मृत्यु, पंगुत्व एवं ज्वर होता है। अर्थात् मुण्डन के समय केन्द्र में क्षीणचन्द्रमा हो तो मृत्यु, मंगल हो तो शस्त्र के आघात से मृत्यु, शनि हो तो लगड़ापन तथा सूर्य हो तो ज्वर होता है। यदि बुध, गुरू और शुक्र केन्द्र स्थानों में हों तथा शुभ तारा हों तो मुण्डन शुभ होता है।

गर्भिण्यां मातरि चौलकर्म निषेधः -

पञ्चमासाधिके मातुर्गर्भे चौल शिशोर्न सत्।

पञ्चवर्षाधिकस्येष्टं गर्भिण्यामपि मातरि॥

अर्थ – मुण्डन के समय यदि माता गर्भवती हो और गर्भ पॉच मास से अधिक का हो तो बालक का मुण्डन संस्कार शुभ नहीं होता। अर्थात् 5 मास से अल्पकाल का गर्भ हो तो मुण्डन हो सकता है। यदि बालक की आयु 5 वर्षों से अधिक हो गई हो तो माता के गर्भवती होने पर भी मुण्डन हो सकता है।

मुण्डन संस्कार का सीधा सम्बन्ध बालक के मानसिक विकास से है। यदि अल्पविकसित या उच्छृंखल मति बालक का आठ से दस बार मुण्डन संस्कार करा दिया जाये तो उसकी बुद्धि तीव्र होती है ऐसा विश्वास किया जाता है। ऋषियों ने इसे प्रधान संस्कारों में से एक माना है तथा आधुनिक काल में भी यह संस्कार प्रचलित है। इसका प्रयोजन आयुष्य व बुद्धि वृद्धि ही बताया गया है।

मुण्डन संस्कार का काल गर्भाधान या जन्म से विषम वर्षों में करना बताया गया है। गर्भाधान से समय गणना के लिये जन्म से गत वर्षों में 9 मास और जोड़ने से गर्भाधान से आयु वर्ष आ जाते है। फिर भी जन्म से विषम वर्षो यथा 3,5,7 आदि वर्षों में मुण्डन करना बताया गया है। कन्या के लिये इसी प्रकार सम वर्ष ग्रहण करना चाहिये। लेकिन मनु के मत से लड़के के लिये एक वर्ष के भीतर भी मुण्डन कराया जा सकता है।

यदि इन सब कालों का अतिक्रमण हो जाये तो अपनी परम्परानुसार यज्ञोपवीत के समय में भी मुण्डन कराया जा सकता है। लेकिन आजकल जब द्विजातियों में भी यज्ञोपवीत संस्कार नामचारे के लिये विवाह के समय ही कराया जाने लगा है तब उस समय मुण्डन करवाना सर्वथा अव्यावहारिक

है, क्योंकि जन्म के बाल तब तक नहीं रह सकते है। अत: पहले वर्ष में या तदुपरान्त विषम वर्ष में चौलकर्म कराना चाहिये, यही मार्ग प्रशस्त है। इसमें भी प्रथम व तीसरा वर्ष प्राय: बहुत से ऋषियों ने श्रेष्ठ माना है।

समय शुद्धि के लिये बड़ी सीधी सी बात है कि '**माघदि पंचके चौलं हित्वा क्षीणं विधुं मधुम्**'। अर्थात् उत्तरायण में चैत्र रहित माघादि पॉच मासों में, क्षीण चन्द्रमा को छोड़कर मुण्डन कराना चाहिये। अत: माघ, फाल्गुन, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़ में कृष्ण पक्ष की दशमी से पूर्व तथा शुक्ल द्वितीया के बाद मुण्डन कराना चाहिये। फिर भी शुक्ल पक्ष को प्रधान माना जाता है। इनमें भी रिक्ता 4,9,14 तिथियों व अष्टमी, द्वादशी, षष्ठी तिथि को छोड़कर मुण्डन होगा। अत: 2,3,5,7,10,11,13 तिथियॉ ग्राह्य है।

नक्षत्रों में मुण्डन करानें का फल

नक्षत्र	फल	नक्षत्र	फल	नक्षत्र	फल
अश्विनी	तुष्टि	**मघा**	धननाश	**मूल**	समूल नाश
भरणी	मृत्यु	**पू0फा0**	बहुरोग	**पू0षा0**	समूल नाश
कृत्तिका	क्षय	**उ0फा0**	रोगनाश	**उ0षा0**	शुभ
रोहिणी	रोगनाशक	**हस्त**	तेजोवृद्धि	**श्रवण**	सौन्दर्य
मृगशिरा	सौभाग्य	**चित्रा**	सौभाग्य	**धनिष्ठा**	आयुवृद्धि
आर्द्रा	धननाश	**स्वाती**	दु:खनाश	**शतभिषा**	बलवृद्धि
पुनर्वसु	पराक्रम	**विशाखा**	विनाश	**पू0भा0**	मृत्यु
पुष्य	धन व मान	**अनुराधा**	मित्र विरोध	**उ0भा0**	सुख
श्लेषा	शरीर कष्ट	**ज्येष्ठा**	ऐश्वर्य नाश	**रेवती**	अतिवृद्धि

विशेष – ज्येष्ठ मास में ज्येष्ठ पुत्र का मुण्डन नहीं करना चाहिये। जो बातें मुण्डन में त्याज्य है, वे ही बातें क्षौर में भी विचारणीय है। लेकिन किसी आचार्य का मत यह भी है कि रोजगार की मांग से जहॉ प्रतिदिन क्षौर कर्म करना हो तो मुहूर्त्त का विचार नहीं करना चाहिये। अथवा राजा की आज्ञा से, यज्ञ में, मृत्यु में कारागार से छूटने पर, तीर्थ में कभी भी क्षौर व मुण्डन आदि करवाया जा सकता है।

क्षौरमुहूर्त्त -

दन्तक्षौरनखक्रियाऽत्र विहिता चौलोदिते वारभे।
पातंग्याररवीन्विहाय नवमं घस्रं च सन्ध्यां तथा।।
रिक्तां पर्व निशां निरासनरणग्रामप्रयाणोद्यत।

स्नाताभ्यक्तकृताशनैर्नहि पुनः कार्या हितप्रेप्सुभिः ॥

अर्थ – शनि, भौम और रविवार, क्षौर दिन से 9 वॉ दिन, प्रातः एवं सायं सन्ध्या, रिक्ता 4,9,14 तिथि, पर्वकाल एवं रात्रिकाल को छोड़कर मुण्डन मुहूर्त्त में बताये गये दिन और नक्षत्रों में दन्तप्रक्षालन, बाल बनवाना तथा नाखून कटवाना चाहिये । अपना हित चाहने वाले व्यक्तियों को आसन के बिना रण अथवा ग्राम में यात्रा के लिये तैयार होने पर अभ्यंग तथा भोजन कर लेने के बाद क्षौर आदि उक्त कार्य नहीं करना चाहिये ।

4.5 सारांशः

संस्कार मानव – जीवन यापन में एक विशेष सहायक तत्व है । जिसके अभाव में मानव का पूर्ण विकास असम्भव है । संस्कारों से युक्त रहकर ही वह अपना एवं अपने परिवार व समाज का सम्यक् तरीके से देख – रेख कर सकता है । संस्कार को मनुष्य धारण कर अपने व्यक्तित्व का समाज में सदा के लिये एक नया आदर्श स्थापित कर सकता है । अतः संस्कार अत्यन्त अति आवश्यक है एक सभ्य मनुष्य निर्माण के लिये, एक सभ्य परिवार के लिये, एक सभ्य समाज के लिये, एक सभ्य देश के लिये । उन्हीं संस्कारों के क्रम में जलपूजन, अन्नप्राशन, कर्णवेध व मुण्डन संस्कार का इस इकाई में समावेश किया गया है, जिसे पाठक गण पढ़कर लाभान्वित होंगे, ऐसा मेरा विश्वास है ।

4.6 पारिभाषिक शब्दावली

संस्कार -

जलपूजन -

अन्नप्राशन -

कर्णवेध -

चूड़ाकर्म -

4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. मुहूर्त्तपारिजात
2. मुहूर्त्तचिन्तामणि
3. वृहज्ज्योतिसार
4. ज्योतिष सर्वस्व
5. वीरमित्रोदय

4.8 बोधप्रश्नों के उत्तर

1. ख

2. क

3. ख

4. क

5. घ

4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. जलपूजन एवं अन्नप्राशन संस्कार को परिभाषित करते हुये सविस्तार वर्णन कीजिये ।
2. कर्णवेध एवं मुण्डन संस्कार का उल्लेख कीजिये।

इकाई – 5 अक्षराम्भ, विद्यारम्भ, उपनयन

इकाई की रूपरेखा

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 अक्षराम्भ, विद्यारम्भ एवं उपनयन का परिचय
5.4 अक्षराम्भ, विद्यारम्भ एवं उपनयन की परिभाषा व स्वरूप व महत्व
बोध प्रश्न
5.5 सारांशः
5.6 पारिभाषिक शब्दावली
5.7 बोधप्रश्नों के उत्तर
5.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
5.9 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई द्वितीय खण्ड के पंचम इकाई '**अक्षरारम्भ, विद्यारम्भ एवं उपनयन** नामक शीर्षक से सम्बन्धित है। संस्कारों के क्रम में अक्षराम्भ से तात्पर्य जातक का जन्म लेने के पश्चात् सर्वप्रथम उसका विद्याध्ययन हेतु अक्षरादि से पहचान कराने से है। तत्पश्चात् शिशु का विद्याध्ययन संस्कार करना चाहिये। किन्तु वेदाध्ययन उपनयन संस्कार कराने के पश्चात् ही कराना चाहिये।

भारतवर्ष के प्राचीन परम्परा में बालकों को घर से दूर गुरूकुल में विद्याध्ययन के लिये भेजा जाता था। वहॉ वह परिवार से दूर रहकर अपने गुरू से विद्याध्ययन करते थे। उसी क्रम में शिशु को गृह में अक्षरारम्भ संस्कार कराया जाता है।

यहॉ इस इकाई में आप '**अक्षराम्भ, विद्यारम्भ एवं उपनयन**' संस्कार का विस्तार से अध्ययन करेंगे।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप-

1. अक्षराम्भ, विद्यारम्भ एवं उपनयन' संस्कार को परिभाषित करने में समर्थ हो सकेंगे।
2. अक्षराम्भ, विद्यारम्भ एवं उपनयन' संस्कार के महत्त्व को समझा सकेंगे।
3. अक्षराम्भ, विद्यारम्भ एवं उपनयन' संस्कार के विभेद का निरूपण करने में समर्थ होंगे।
4. अक्षराम्भ, विद्यारम्भ एवं उपनयन' संस्कार का स्वरूप वर्णन करने में समर्थ होंगे।
5. अक्षराम्भ, विद्यारम्भ एवं उपनयन' संस्कार के सम्बन्ध को निरूपित करने में समर्थ होंगे।

5.3 अक्षराम्भ, विद्यारम्भ एवं उपनयन का परिचय

गणेश विष्णु वाग्रमाः प्रपूज्य पंचमाब्दके।
तिथौ शिवार्कदिकद्विषटशरत्रिके रवावुदक्॥
लघुश्रवोऽनिलान्त्यभादितीशतक्षमित्रभे।
चरोनसत्तनौ शिशोर्लिपिग्रहः सतां दिने॥

अर्थ – गणेश, विष्णु, सरस्वती और लक्ष्मी का विधिवत् पूजन कर पॉचवें वर्ष में, एकादशी, द्वादशी, दशमी, द्वितीया, षष्ठी, पंचमी एवं तृतीया तिथियों में सूर्य के उत्तरायण रहने पर लघुसंज्ञक (हस्त अश्विनी, पुष्य, अभिजित् श्रवण, स्वाती, रेवती, पुनर्वसु , आर्द्रा, चित्रा तथा अनुराधा) नक्षत्रों में चर लग्नों (1,4,7,10) को छोड़कर शुभग्रहों के लग्नों (2,3,4,6,7,9,12) में शुभग्रहों के (चन्द्रवार, बुधवार, गुरूवार और शुक्रवार) वारों में बालकों को अक्षरारम्भ कराना चाहिये।

बालक को पॉच वर्ष की अवस्था में सम्प्राप्त हो जाने पर अधोवर्णित विशुद्ध दिन को विघ्नविनायक, शारदा, लक्ष्मीनारायण, गुरू एवं कुलदेवता की पूजा के साथ उसे लिखने पढ़ने का श्रीगणेश करवाना चाहिये।

मास – कुम्भ संक्रान्ति वर्जित उत्तरायण मास।

तिथि – शुक्ल 2,3,5,7,10,11,12 ।

वार - चन्द्रवार, बुधवार, गुरूवार एवं शुक्रवार।

नक्षत्र – अश्विनी, आर्द्रा, पुनर्वसु, हस्त, चित्रा, स्वाती, अनुराधा, ज्येष्ठा, अभिजित, श्रवण एवं रेवती ।

लग्न – 2,3,6,9,12 लग्नराशि। अष्टम भाव ग्रहरहित होना चाहिये।

विशेष – उपर्युक्त देवताओं के नाम से घृत हवन करे तथा ब्राह्मणों को दक्षिणादि देकर सन्तुष्ट करना चाहिये। बालक का चन्द्र – बुध बल अपेक्षित है।

विद्यारम्भ संस्कार –

मृगात्कराच्छ्रुतेस्त्रयेऽश्विमूलपूर्विकात्रये।
गुरूद्वयेऽर्कजीववित्सितेऽह्नि षट्शरत्रिके ।।
शिवार्कदिग्द्विके तिथौ ध्रवान्त्यमित्रभे परैः।
शुभैरधीतिरूत्तमा त्रिकोणकेन्द्रगैः स्मृता ।।

अर्थ – मृगशिरा, हस्त और श्रवण से तीन – तीन नक्षत्र अर्थात् मृगशीर्ष, आर्द्रा, पुनर्वसु, हस्त, चित्रा, स्वाती, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, अश्विनी, मूल, तीनों पूर्वा, पुष्य से दो अर्थात् पुष्य आश्लेषा नक्षत्रों में, रवि, गुरू, बुध और शुक्र वासरों में, षष्ठी, पंचमी, तृतीया, एकादशी, द्वादशी, दशमी एवं द्वितीया तिथियों में शुभग्रहों के केन्द्र और त्रिकोण 1,4,7,10,5,9 भावों में स्थित रहने पर कुछ विद्वानों के मतानुसार ध्रुवसंज्ञक तीनों उत्तरा, रोहिणी, रेवती और अनुराधा नक्षत्रों में भी विद्याध्ययन का आरम्भ करना शुभ होता है।

वर्णमाला गणितादि में बालक परिपक्व हो जाने पर भविष्यत् आजीविका प्रदात्री कोई विशेष या सर्वसामान्य विद्या का शुभारम्भ करना चाहिये । अप्रधान रूप से विद्यारम्भ मुहूर्त्त प्रकार निम्नलिखित है –

मास - फाल्गुन के अतिरिक्त उत्तरायणमास।

तिथि – 2,3,5,7,10,11,13 आदि शुक्लादि तिथियॉ।

वार – सूर्यवार, गुरूवार एवं शुक्रवार।

नक्षत्र – अश्विनी, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, आश्लोषा, तीनों पूर्वा, हस्, चित्रा, स्वाती, श्रवण, धनिष्ठा, एवं शतभिषा।

लग्न – 2,5,8 राशि लग्न जब केन्द्र त्रिकोण में शुभग्रह तथा 3,6,11 वें क्रूर ग्रह हों।

निर्देश – उपरोक्त मुहूर्त्त सामान्यत: प्रत्येक विद्या के शुभारम्भ में प्रयोज्य है, परन्तु विद्याविशेष के लिये कुछ प्रस्तावित परिवर्तनों की आवश्यकता समझकर यहॉ कुछ प्रचलित विद्याओं के मुहूर्त्तोदित विशेषांगो का उल्लेख किया गया है। इनमें अनुपस्थित तत्वों को विद्यारम्भ मुहूर्त्त के सदृश ही समझना चाहिये -

ज्योतिष गणितारम्भ मुहूर्त्त -

वार – बुधवार एवं गुरूवार।

नक्षत्र – रोहिणी, आर्द्रा, हस्त, चित्रा, अनुराधा, शतभिषा, पू0भा0 एवं रेवती।

व्याकरणारम्भ मुहूर्त्त –

वार – बुधवार, गुरूवार एवं शुक्रवार

नक्षत्र – अश्विनी, रोहिणी, मृगऋ पुन0 ह0 चि0 स्वा0 वि0 अनु0।

न्यायशास्त्रारम्भ मुहूर्त्त –

वार – बुधवार, गुरूवार एवं शुक्रवार

नक्षत्र – अश्विनी , रो0, पुन0, पु0, तीनों उत्तरा, स्वाती, श्र0 श0।

धर्मशास्त्रारम्भ मुहूर्त्त -

वार - बुधवार, गुरूवार एवं शुक्रवार

नक्षत्र – अश्विनी, मृ0 पु0, ह0, चि0, स्वा0 अनु0, श्र0 ध0 श0 रे0।

संगीतारम्भ मुहूर्त्त -

वार – चन्द्रवार, बुधवार, गुरूवार एवं शुक्रवार। वाद्यारम्भ में रविवार भी

नक्षत्र – रो0 मृ0 पु0 तीनों उत्तरा, हस्त, अनु0 ज्ये0 ध0 शत0 रे0।

वेदमन्त्रारम्भ मुहूर्त्त -

मास – आश्विन

तिथि – 2,3,5,7,10,11,13 शु0

नक्षत्र – अश्विनी, मृ0, आ0, पुन0, श्ले, तीनों पूर्वा, ह0 चि0 स्वा0 श्र0 ध0 श0।

चित्रकलारम्भ मुहूर्त्त –

वार – चन्द्रवार, बुध, गुरू एवं शुक्र

नक्षत्र - अश्विनी, आ0, पुन0, ह0, चि0, स्वा0 अनु0, श्र0 रेवती।

उपनयन संस्कार –

विप्राणां व्रतबन्धनं निगदितं गर्भाज्जनेर्वाऽष्टमे।
वर्षे वाप्यथ पंचमे क्षितिभुजां षष्ठे तथैकादशे।।

वैश्यानां पुनरष्टमेऽप्यथ पुनः स्याद् द्वादशे वत्सरे।

कालेऽथ द्विगुणे गते निगदिते गौणं तदाहुर्बुधा॥

अर्थ - गर्भाधन काल से अथवा जन्म काल से आठवें वर्ष में या पॉचवें वर्ष में, ब्राह्मणों का यज्ञोपवीत संस्कार, छठें तथा ग्यारहवें वर्ष में क्षत्रियों का, तथा आठवें और बारहवें वर्ष में वैश्यों का यज्ञोपवीत संस्कार होता है। उक्त बताये गये काल से द्विगुणित समय व्यतीत हो जाने पर जो यज्ञोपवीत संस्कार होता है, उसे विद्वानों ने गौण सामान्य यज्ञोपवीत कहा है।

विमर्शः - विहित काल से दूगने समय तक भी व्रतबन्ध किया जा सकता है। परन्तु मुख्य काल और गौण काल व्यतीत हो जाने पर भी व्रतबन्ध न होने से मनुष्य को गायत्री का अधिकार समाप्त हो जाता है तथा वह संस्कारच्युत होता है। मनु ने कहा है –

अषोडशाद् ब्राह्मणस्य सावित्री नातिवर्तते।

आद्वाविंशाद् ब्रह्मवन्धोराचतुर्विंशतेर्विशः॥

अत उर्ध्वं त्रयोप्येते यथाकालमसंस्कृताः।

सावित्री पतिता व्रात्या भवन्त्यपि गर्हिताः॥

अपि च –

क्षिप्रध्रुवाचिरमलमृदुत्रिरौद्रेऽर्कविद्रूसितेन्दुदिने व्रतं सत्।

द्वित्रीषुरूद्ररविदिक्प्रमिते तिथौ च कृष्णादिमत्रिलवकेऽपि न चापराह्णे॥

क्षिप्रसंज्ञक (हस्त, अश्विनी, पुष्य), ध्रुवसंज्ञक (तीनों उत्तरा रोहिणी, आश्लेषा,), चरसंज्ञक (स्वाती, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिष), मूल, मृदुसंज्ञक (मृगशिरा, रेवती, चित्रा), तीनों पूर्वा आर्द्रा नक्षत्रों में रवि, बुध, शुक्र और सोम वासरों में, 2,3,511,12,10 तिथियों मे शुक्लपक्ष में तथा कृष्णपक्ष में प्रथम त्रिभाग में उपनयन शुभ होता है। अपराह्न के पश्चात् उपनयन नहीं करना चाहिये।

विमर्शः - उक्त श्लोकों में नक्षत्र, तिथि और दिन का निर्देश किया गया है किन्तु मास का निर्देश नहीं किया गया है। कारण यह है कि चौलं राज्याभिषेको व्रतमपि शुभदं नैव याम्यायने स्यात्॥ दक्षिणायन का निषेध कर सौम्यायन आषाढ तक का व्रतबन्ध में ग्रहण किया गया है। कश्यप ऋषि के वर्णनानुसार ऋतुओं का ग्रहण किया है –

ऋतौ वसन्ते विप्राणां ग्रीष्मे राज्ञां शरद्यथ।

विशां मुख्यं च सर्वेषां द्विजानां चोपनायनम्॥

साधारणं च मासेषु माघादिषु च पंचसु।

इस प्रकार ब्राह्मण का व्रतबन्ध चैत्र मास में भी प्रशस्त माना जाता है। ब्राह्मणों के लिये पुनर्वसु नक्षत्र एवं बुधवार दोनों ही निन्दित है।

बोध प्रश्न –

1. अक्षराम्भ होता है।

क. चौथे वर्ष में ख. पॉचवें वर्ष में ग. छठें वर्ष में घ. आठवें वर्ष में

2. विप्रों का यज्ञोपवीत संस्कार होता है।

क. जन्मकाल से आठवें या पॉचवें वर्ष में

ख. जन्मकाल से तीसरे या चौथे वर्ष में

ग. जन्मकाल से छठें या आठवें वर्ष में

घ. जन्मकाल से नवें या बारहवें वर्ष में

3. ज्योतिष गणितारम्भ मुहूर्त्त होता है।

क. बुध एवं शुक्र वारों में ग. रवि एवं सोम वारों में

ख. मंगल एवं शनि वारों में घ. गुरू एवं बुध वारों में

4. क्षत्रियों के लिये व्रतबन्ध शुभ होता है।

क. जन्मकाल से दूसरे या पॉचवें वर्ष में

ख. जन्मकाल से तीसरे या चौथे वर्ष में

ग. जन्मकाल से छठें या ग्यारहवें वर्ष में

घ. जन्मकाल से नवें या बारहवें वर्ष में

5. क्षिप्रसंज्ञक नक्षत्र है –

क. हस्त, अश्विनी, पुष्य ख. अश्विनी, रोहिणी, मृगशिरा ग. पुष्य, अभिजित, रोहिणी घ. कोई नही

उपनयन में ग्रहाणामशुभस्थानानि –

कवीज्य चन्द्र लग्नपा रिपौ मृतौ व्रतेऽधमा:।

व्ययेऽब्ज भार्गवौ तथा तनौ मृतौ सुते खला:॥

अर्थ – व्रतबन्ध में लग्न से छठें, आठवें, भाव में शुक्र, गुरू, चन्द्रमा, और लग्नेश अशुभ होते है तथा अशुभग्रह लग्न, अष्टम एवं पंचम भावों में अशुभ होते है।

उपनयन में लग्न शुद्धि –

व्रतबन्धेऽष्टषड्रिष्फवर्जिता: शोभना: शुभा:।

त्रिषडाये खला: पूर्णो गोकर्कस्थो विधुस्तनौ॥

अर्थ- व्रतबन्ध काल में लग्न से 6,8,12 भावों को छोड़कर शेष भावों में शुभग्रह 3,6,11 भावों में पापग्रह तथा लग्नस्थ पूर्ण चन्द्रमा वृष अथवा कर्क राशि में स्थित हो तो शुभ होता है।

उपनयन संस्कार –

इसी संस्कार का दूसरा नाम व्रतबन्ध या यज्ञोपवीत संस्कार भी है। उपनयन का अर्थ है – पास में ले जाना नयनस्य समीपं उपनयनम्। अर्थात् बालक को गुरूकुल में गुरू जी के पास ले जाना। व्रतबन्ध से तात्पर्य है कोई प्रतिज्ञा या संकल्प करना अर्थात् शिक्षा प्राप्ति का लक्ष्य लेकर चलना तथा यज्ञोपवीत का अर्थ है यज्ञों में सम्मिलित होने का अधिकार पाना। इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि गुरूकुल शिक्षा प्रणाली में गुरूकुल में व आजकल बड़े विद्यालय में जाने के समय यह संस्कार होना चाहिये।

यज्ञोपवीत में तीन धागों के दो जोड़े रहते है। विवाहोपरान्त षटसूत्र व विवाह से पूर्व ब्रह्मचारी त्रिसूत्र ही धारण करते है। इसमें ऋषिगण, पितृऋण व देवऋण की सूचना मिलना बताया गया है। माता – पिता से जन्म मिला। इसीलिये पुत्र का मुख देखते ही पिता अपने पितृऋण से मुक्त हो जाता है –

जातमात्रकुमारस्य मुखमस्यावलोकयेत्।
पिता ऋणाद् विमुच्येत् पुत्रस्य मुखदर्शनात्॥

देवऋण, अर्थात् प्रकृति का ऋण, हवा, पानी, प्रकाश, तेज आदि जीवनदायी पदार्थों में सबका हिस्सा है तथा वह हमें प्रकृति से उधार के रूप में मिला है। अत: उसे नष्ट, दुरूपयोग या प्रदूषित नहीं करना चाहिये तथा इन सब दैवी तत्वों के प्रति कृतज्ञता का भाव रखना चाहिये।

तीसरा ऋण ऋषिऋण है, जो हमें ऋषियों, मन्त्रद्रष्टाओं, चिन्तकों, मनीषियों, पूर्वज विचारकों व वैज्ञानिकों ने ज्ञान के रूप में दिया है , वह हमारे उपर ऋण है। अत: उसे पढ़कर, गुनकर, स्वयं अपने व्यवहार में उतारकर दूसरों को भी देना चाहिये। तभी ऋषि ऋण से मुक्त होती है। इन तीनों ऋणों का परिचय प्रत्येक समय मिलता रहे, यह बात यज्ञोपवीत की त्रिसूत्री से ज्ञात होती है। यह संस्कार भारतीय संस्कृति का प्राण है, इसकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये।

जन्म या गर्भ से आठवें वर्ष में ब्राह्मणों को ग्यारहवें वर्ष में क्षत्रियों को तथा बारहवें वर्ष में वैश्यों को यज्ञोपवीत करवाना चाहिये। यदि इनमें न हो सके तो इनके दुगुने वर्षों में क्रमश: 16,22,24 वर्ष तक करें। यह चरम सीमा है। तदुपरान्त व्रात्य या पतित या संस्कार रहित होता है। माघादि पंचक मासों में अर्थात् उत्तरायण व देवों के उठने के समय विवाह के महीनों में ही यज्ञोपवीत करें।

प्राय: मकर – कुम्भ का सूर्य व मीन – मेष का सूर्य अच्छा माना जाता है ऐसा भी एक मत है। कुछ लोग श्रावण मास की पूर्णिमा में भी रक्षाबन्धन के दिन ऋषि तर्पणानन्तर कुमार को यज्ञोपवीत धारण करा देते है, यह अनुचित मार्ग है। कृष्णपक्ष में शनिवार में, अनध्याय के दिन, प्राकृतिक उपद्रव होने पर, दोपहर बाद सन्ध्या समय में, क्षय तिथि होने पर भी न करें।

हस्त, अश्विनी, पुष्य, अभिजित् तीनों पूर्वा व उत्तरा, रोहिणी, आश्लेषा, स्वाती, श्रवण, धनिष्ठा, मूल, मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा, आर्द्रा नक्षत्रों में गोचर प्रकरण में बताया गया वेध न होने पर सूर्य, चन्द्र, गुरूबल शुद्ध होने पर गुरू – शुक्र के उदय काल में लग्नशुद्धि पूर्वक यज्ञोपवीत संस्कार करना चाहिये।

अभिजिन्मुहूर्त्त ज्ञान –

सभी स्थानों में जब लग्न शुद्धि न बने तब अभिजिन्मुहूर्त्त में कार्य करने से दोष नहीं होता है। स्थानीय मध्यान्ह काल अर्थात् स्थानीय समयानुसार 12 बजने से 24 मिनट पूर्व व 24 मिनट के पश्चात् तक कुल दो घड़ी या 48 मिनट का अभिजिन्मुहूर्त्त होता है।

यदि अभीष्ट वर्ष में गुरू – शुक्रास्तदोष होने से समय शुद्धि न बने तब मीन संक्रान्ति में सौर चैत्र में यज्ञोपवीत किया जा सकता है।

शुद्धिर्नविद्यते यस्य प्राप्ते वर्षेऽष्टमे यदि।

चैत्रे मीनगते भानौ तस्योपनयनं शुभम्॥

मुण्डन की तरह इसमें भी माता की गर्भावस्था, रजस्वलात्व एवं ज्येष्ठ मासादि का विचार करना चाहिये।

5.5 सारांश

इस इकाई में आपने अक्षराम्भ, विद्यारम्भ एवं उपनयन संस्कार का अध्ययन किया है। संस्कारों के क्रम में बालक का जन्मकाल से लेकर पॉचवें वर्ष से होने वाला संस्कारों में अक्षराम्भ संस्कार है। तत् पश्चात् आठवें वर्ष में व्रतबन्ध संस्कार एवं अक्षराम्भ के बाद उस संस्कार का जिससे उसका जीविका चलता है, तत्सम्बन्धी जातक विद्याध्ययन करता है। आशा है पाठकगण इन संस्कारों से सम्यक् रूप से अवगत हो पायेंगे तथा स्वजीवन में उसका उपयोग कर सकेंगे।

5.6 पारिभाषिक शब्दावली

अक्षराम्भ – शिशु को प्रथम बार अक्षर सम्बन्धित ज्ञान कराने वाला संस्कार

विद्यारम्भ – शिशु को प्रथम बार विद्यारम्भ कराने वाला संस्कार

उपनयन – यज्ञोपवीत संस्कार

व्रतबन्ध - यज्ञोपवीत संस्कार

पंचक – धनिष्ठा आदि से लेकर रेवती पर्यन्त पॉच नक्षत्र

पतित – गिरा हुआ

मुण्डन – सिर से सम्पूर्ण बालों को क्षौर संस्कार द्वारा हटाने की क्रिया

मीनगते – मीन राशि में गया हुआ

5.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

मुहूर्त्तपारिजात - चौखम्भा विद्याप्रकाशन

मुहूर्त्तचिन्तामणि – चौखम्भा विद्याप्रकाशन

वृहज्ज्योतिसार – चौखम्भा विद्याप्रकाशन

ज्योतिष सर्वस्व – चौखम्भा विद्याप्रकाशन

वीरमित्रोदय – चौखम्भा विद्याप्रकाशन

5.8 बोधप्रश्नों के उत्तर

1. ख
2. क
3. घ
4. ग
5. क

5.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. अक्षराम्भ एवं विद्यारम्भ संस्कार को परिभाषित करते हुये सविस्तार वर्णन कीजिये ।
2. उपनयन संस्कार का उल्लेख कीजिये।

खण्ड – 3

यात्रा मुहूर्त्त

इकाई – 1 तिथि नक्षत्र शुद्धि

इकाई की रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 तिथि नक्षत्र शुद्धि
बोध प्रश्न
1.4 सारांश
1.5 शब्दावली
1.6 बोध प्रश्नों के उत्तर
1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.8 सहायक पाठ्यसामग्री
1.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई बी0ए0जे0वाई 202 से सम्बन्धित है । इस इकाई का नामकरण 'तिथि नक्षत्रशुद्धि' किया गया है। ज्योतिष में तिथि तथा नक्षत्रों का अत्यन्त महत्वपूर्ण योगदान है। यात्रा से सम्बन्धित शुद्धाशुद्ध तिथिनक्षत्र का विवेचन किया जा रहा है।

यात्रा के अन्तर्गत तिथि नक्षत्र शुद्धि से तात्पर्य है कि जिस तिथि अथवा नक्षत्र में यात्रा की जा रही हो, वह यात्राजनित कार्यसिद्धि को प्रदान करने में उत्तम है या नहीं।

यात्रा मुहूर्त्त के लिए तिथि नक्षत्र का ज्ञान भली – भॉति करना आवश्यक है। इसी बात को ध्यान में रखते हुए इस इकाई का लेखन कार्य किया गया है, इसमें आप यात्रोक्त तिथि नक्षत्र शुद्धि का ज्ञान सम्यक् रूप से करेंगे।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान पायेगें कि –

1. तिथि क्या है ? वह कितने प्रकार की होती है।
2. योग मुहूर्त्त के अन्तर्गत तिथि, नक्षत्र शुद्धि से क्या तात्पर्य है।
3. सुयोग एवं कुयोग क्या है।
4. भद्रा का ज्ञान प्राप्त कर सकेगें।
5. खोई एवं नष्ट हुई वस्तु का ज्ञान प्राप्त कर सकेगें।

1.3 तिथि नक्षत्र शुद्धि

प्रत्येक व्यक्ति के लिये यह आवश्यक नही कि वह ज्योतिषी हो, किन्तु मानवमात्र को अपने जीवन को व्यवस्थित करने के लिये नियमों को जानना आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य भी है। यात्रा मुहूर्त्त के विचारार्थ पूर्व में तिथि, नक्षत्र के सम्बन्ध में सम्यक् जानकारी प्राप्त कर लेनी चाहिये। अत परिचय पहले दिया जा रहा हैइनका संक्षिप्त :, अनन्तर तिथि नक्षत्र शुद्धि का विवेचन करेगें।

तिथि ज्ञान –

चन्द्रमा और सूर्य के मध्य 12^0 का अन्तरांश तिथि कहलाता है। प्रतिदिन 12 अंशों का अन्तर सूर्य और चन्द्रमा के भ्रमण में होते है। यही अन्तरांश का मध्यम मान है। अमावस्या के बाद प्रतिपदासे से लेकर पूर्णिमा पर्यन्त तिथियॉं शुक्लपक्ष की और पूर्णिमा के बाद प्रतिपदा से लेकर अमावस्या तक की तिथियॉं कृष्णपक्ष की होती है। तिथियों की संख्या 15 होती है। पंचांग में तिथियों की गणना शुक्लपक्ष की प्रतिपदा से आरम्भ होती है। यथा –

प्रतिपच्च द्वितीया च तृतीया तदनन्तरम् ।

चतुर्थी पंचमी षष्ठी सप्तमी चाष्टमी तथा ।।

नवमी दशमी चैवेकादशी द्वादशी तत: ।

त्रयोदशी ततो ज्ञेया तत: प्रोक्ता चतुर्दशी ।।

पूर्णिमा शुक्ल पक्षे तु कृष्ण पक्षे त्वमास्मृता ।।

श्लोक से स्पष्ट है कि प्रतिपदा से लेकर पूर्णिमा या अमावस्या पर्यन्त 15 तिथियॉं होती है ।

तिथियों के स्वामी –

तिथिशा वह्निकौ गौरी गणेशोऽहिर्गुहो रवि: ।

शिवो दुर्गान्तको विश्वे हरि: काम: शिव: शशी ।।

तिथियों के नाम	**स्वामी**
प्रतिपदा	अग्नि
द्वितीया	कौ (ब्रह्मा)
तृतीया	गौरी
चतुर्थी	गणेश
पंचमी	सर्प
षष्ठी	गुह्य
सप्तमी	सूर्य
अष्टमी	शिव
नवमी	दुर्गा
दशमी	अन्तक
एकादशी	विश्वदेव
द्वादशी	हरि
त्रयोदशी	कामदेव
चतुर्दशी	शिव
पूर्णिमा	चन्द्रमा
अमावस्या	पितर

तिथियों की संज्ञा –

नन्दा संज्ञक तिथियॉं - 1,11,6 (प्रतिपदा, एकादशी, षष्ठी)

भद्रा संज्ञक तिथियॉं – 2,7,12 (द्वितीया, सप्तमी, द्वादशी)

जया संज्ञक तिथियॉं – 3,8,13 (तृतीया, अष्टमी, त्रयोदशी)

रिक्ता संज्ञक तिथियॉ - 9, 4,14 (नवमी, चतुर्थी, चतुर्दशी)

पूर्णा संज्ञक तिथियॉ - 5,10,15 (पंचमी, दशमी, पंचदशी)

यात्रा में तिथि नक्षत्र विचार –

न षष्ठी न च द्वादशी नाऽष्टमी नो सिताद्या तिथि: पूर्णिमाऽमा न रिक्ता।

हयादितयमैत्रेन्दुजीवान्त्यहस्तश्रवोवासवैरेव यात्रा प्रशस्ता॥

श्लोकार्थ - यात्रा में षष्ठी, द्वादशी, अष्टमी, शुक्लपक्ष की प्रतिपदा, पूर्णिमा, अमावस्या तथा रिक्ता संज्ञक 4,9,14 तिथियॉ अशुभ कही गई है।

अश्विनी, पुनर्वसु,अनुराधा, मृगशिरा, पुष्य, रेवती, हस्त, श्रवण और धनिष्ठा नक्षत्रों में यात्रा प्रशस्त (शुभ) होती है।

मासभेद से तिथिफल –

पौषे पक्षत्यादिका द्वादशैवं तिथ्यो माघादौ द्वितीयादिकास्ता:।

कामातिस्र: स्युस्तृतीयादिवच्च याने प्रच्यादौ फलं तत्र वक्ष्ये॥

सौख्यं क्लेशो भीतिरर्थागमश्च शून्यं नै: स्वं नि:स्वता मिश्रता च।

द्रव्यक्लेशो दु:खमिष्टाप्तिरर्थो लाभ: सौचयं मंगलं वित्तलाभ:॥

लाभो द्रव्याप्तिर्धनं सौख्यमुक्तं भीतिर्लाभो मृत्युरर्थागमश्च।

लाभ: कष्टद्रव्यलाभौ सुखं च कष्टं सौख्यं क्लेशलाभौ सुखं च॥

सौख्यं लाभ: कार्यसिद्धिश्च कष्टं क्लेश: कष्टात्सिदिधरर्थो धनं च।

मृत्युर्लाभो द्रव्यलाभश्च शून्यं शून्यं सौख्यं मृत्युरत्यन्तकष्टम्॥

भाषार्थ - पौष मास में प्रतिपदा से द्वादशी पर्यन्त 12 तिथियों में, माघादि मासों की द्वितीयादि 12 तिथियों में, पूर्वादि चारो दिशाओं में यात्रा का फल इस प्रकार कहा गया है – त्रयोदशी से तीन तिथियों अर्थात् 13,14,15 तिथियों का परिणाम क्रम से तृतीया, चतुर्थी , पंचमी तिथियों की तरह ही होता है।

पौषादि मास क्रम से प्रतिपदादि तिथियों में पूर्वादि चारों दिशाओं में यात्रा का परिणाम इस प्रकार है –

1. सुख 2. कष्ट 3. भय 4. धन लाभ । 1. शून्य 2. निर्धनता 3. दारिद्रय 4. मिश्रित । 1. धनाभाव 2. दु:ख 3.अभीष्ट लाभ 4. धन लाभ । 1. लाभ 2. सुख 3. मंगल 4. धनलाभ। 1. लाभ 2. धन लाभ 3. धन 4. सुख । 1. भय 2. लाभ 3. मृत्यु 4. धनलाभ । 1. लाभ 2. कष्ट 3. धनलाभ 4. सुख। 1. कष्ट 2. सुख 3. कष्ट 4. लाभ । 1. सुख 2. लाभ 3. कार्यसिद्धि 4. कष्ट। 1. क्लेश 2. कष्ट से

कार्य सिद्धि 3. धनलाभ 4. धन। 1. मृत्यु 2. लाभ 3. धनलाभ 4. शून्य। 1. शून्य 2. सुख 3. मृत्यु 4. अत्यन्त कष्ट ।

यात्रा में घात तिथय: -

गोस्त्रीझषे घाततिथिस्तु पूर्णा भद्रा नृयुर्क्कटकेऽथ नन्दा।

कौर्प्याजयोर्नक्रधटे च रिक्ता जया धनु:कुम्भहरौ न शस्ता: ।।

भाषार्थ - वृष, कन्या और मीन राशि वालों के लिये पूर्णा 5,10,15 तिथियॉं, मिथुन, कर्क राशि वालों के लिए भद्रा 2,7,12 तिथियॉं , वृश्चिक और मेष राशि के लिए नन्दा 1,6,11 तिथियॉं , मकर और तुला के लिये, रिक्ता 4,9,14 तिथियॉं , धनु, कुम्भ और सिंह राशि वालों के लिये जया 3,8,13 तिथियॉं घात संज्ञक होती है। ये घात तिथियॉं अशुभ होती है।

नन्दादि तिथियों में किये जाने वाले कार्य –

नन्दासु चित्रोत्सववास्तु तन्त्र क्षेत्रादि कुर्वीत तथैव नृत्यम्।

विवाह भूषाशकटाध्वयाने भद्रासु चैतान्यपि पौष्टिकानि ।।

अर्थ – नन्दा तिथि में चित्रकर्म, उत्सव, वास्तु, तन्त्र, खेती, नाच, तमाशा, विवाह तथा गाड़ी आदि वाहनों पर चढ़ना शुभ है। भद्रा तिथि में उपरोक्त कार्य शुभ है तथा पौष्टिक कार्य भी कार्य करना चाहिये।

जयासु संग्राम बलोपयोगिकार्याणि सिद्धयन्तिविनिर्मितानि ।

रिक्तासु तद्वद्वबन्धनादि विषाग्निशास्त्राणि च यान्ति सिद्धिम् ।।

जया तिथि में संग्राम के लिए उपयोगी कार्य सब सिद्ध होते है, तथा रिक्ता में वध, बन्धन आदि, विष, अग्नि सम्बन्धी और शस्त्र निर्माण करना शुभ है।

पूर्णासु मांगल्य विवाहयात्रा सपौष्टिकं शान्तिकर्मकार्यम्।

सदैव दर्शे पितृकर्म मुक्त्वा नान्यद्विदध्याच्छुभमंगलानि ।।

पूर्णा तिथि में मांगलिक कार्य विवाह यात्रा तथा पौष्टिक सहित शान्ति कर्म करना चाहिए परं च अमावस्या में केवल पितृकर्म को छोड़कर और कोई कार्य नहीं करना चाहिये।

सूर्यादि वारों में नन्दादि उक्त तिथि क्रम से अशुभ –

नन्दा भद्रा नन्दिकाख्या जया च रिक्ता भद्रा चैव पूर्णा मृतार्कात् ।

याम्यं त्वाष्टं वैश्वदेवं धनिष्ठार्यमणं ज्येष्ठान्त्यं रवेर्दग्धभं स्यात् ।।

सूर्यादि वारों में नन्दादि उक्त तिथि क्रम से अशुभ होती है, जैसे - रविवार को नन्दा 1,6,11 सोमवार को भद्रा 2,7,12 मंगल को नन्दा 1,6,11 बुध को जया 3,8,13 गुरूवार को रिक्ता 4,9,14 शुक्रवार को भद्रा 2,7,12 शनिवार को पूर्णा 5,10,15 ये तिथियॉं इस वार को पड़ जाय तो मृत्यु योग होता है। इसी प्रकार नक्षत्र भी घातक होता है। जैसे – रविवार को भरणी, सोमवार को

चित्रा, मंगलवार को उत्तराषाढ़ा, बुधवार को धनिष्ठा, गुरूवार को उत्तराफाल्गुनी, शुक्रवार को ज्येष्ठा, शनिवार को रेवती ये दग्ध योग होते है। उक्त घातक तिथि तथा ये दग्ध नरक्षत्र शुभ कार्यों में वर्जनीय है। अर्थात् इसे त्याग देना चाहिये। विशेष करके यात्रा में अवश्य परित्याग करना चाहिये।

क्रकच योग -

षष्ठायादितिथयो मन्दाद्विलोमं प्रतिपद् बुधे।

सप्म्यर्केऽधमाः षष्ठ्याद्यामाश्चरदधावने ।।

शनिवार से विपरीत तथा षष्ठी से सीधे क्रम से गणना करने में तथा प्रतिपदा को बुध सप्तमी को रवि अधम योग होता है। जो कि शुभ कार्य में वर्जनीय है। इस योग को भी क्रकच योग कहते है , एवं पंचांगों में इसे वार दग्ध लिखते है। इसके आनयन के लिये सुगमता यह है कि तिथि, वार जोड़ने से 13 संख्या जिस दिन हो वही वार दग्ध होता है।जैसे - शनिवार को षष्ठी , बुधवार को प्रतिपदा, रविवार को सप्तमी हो तो संवर्तक नाम का कुयोग होता है। शुक्रवार को सप्तमी , वृहस्पतिवार को अष्टमी , बुधवार को नवमी , मंगलवार को दशमी , सोमवार को एकादशी रविवार को सप्तमी ये अलग – अलग ही कही गयी है और षष्ठी , प्रतिपदा अमावस्या के दिन काष्ठ विशेष नीम आदि से दंतधावन नहीं करना चाहिये किसी आचार्य के मतानुसार नवमी तथा रविवार को भी यह वर्जित है।

तिथियों में कृत्य कर्म

प्रतिपदा - प्रतिपदा तिथि में विवाह यात्रा, व्रतबन्ध, प्रतिष्ठा , सीमन्त, चूड़ाकरण, वास्तु कर्म , गृहप्रवेशादि किया जाता है।

द्वितीया - द्वितीया तिथि में राज्य सम्बन्धित कार्य अंग या चिन्हों के कृत्य, व्रतबन्ध, प्रतिष्ठा , विवाह यात्रा भूषण आदि कर्म शुभ होते है।

तृतीया - तृतीया तिथि में उक्त कर्म और गमन सम्बन्धी कृत्य, शिल्प सीमन्त, चूड़ाकरण, अन्नप्राशन, गृहप्रवेश भी शुभ होता है।

चतुर्थी, नवमी एवं चतुर्दशी तिथि - रिक्ता (4,9,14) में अग्निकार्य , मारणकर्म , बन्धनकृत्य, शस्त्र, विष, अग्निदाह, घात आदि विषयककृत्य शुभ और मंगल कृत्य अशुभ होते है।

पंचमी – पंचमी तिथि में समस्त शुभकृत्य सिद्धि देते है, परन्तु ऋण (कर्ज) नहीं देना चाहिये, देने से नष्ट हो जाता है।

षष्ठी - षष्ठी में तैलाभ्यंग , यात्रा , पितृकर्म और दन्त काष्ठों के बिना सभी मंगल पौष्टिक कर्म करने तथा संग्रामोपयोगी , शिल्प वास्तु भूषण शस्त्र भी शुभ है।

सप्तमी - सप्तमी तिथि में जो कृत्य द्वितीया, पंचमी एवं षष्ठी में कहे गये है वही करना चाहिये।

एकादशी - एकादशी तिथि में व्रत- उपवासादि समस्त धर्मकृत्य, देवता का उत्सव, वास्तु कर्म आदि कर्म शिल्पकार्य शुभ होते है।

द्वादशी - समस्त स्थावर जंगम के धर्म पुष्टिकारक शुभ कर्म सभी सिद्ध होते है।

त्रयोदशी - त्रयोदशी तिथि में द्वितीया , तृतीया , पंचमी , सप्तमी तिथियों के सदृश कार्य करनी चाहिये।

पूर्णिमा तथा अमावस्या - पूर्णिमा तिथि में यज्ञ क्रिया पौष्टिक मंगल, संग्रामोपयोगी , वास्तु कर्म , विवाह , शिल्प , समस्त भूषणादि सिद्ध होते है। अमावस्या तिथि में केवल पितृ कर्म किये जाते है

बोध प्रश्न –

१. चन्द्र और सूर्य के मध्य 12^0 का अन्तर होता है –

क. वार ख. तिथि ग. नक्षत्र घ. योग

२. सप्तमी तिथि के स्वामी है –

क. सर्प ख. गणेश ग. सूर्य घ. शिव

३. निम्न में पूर्णा संज्ञक तिथि है –

क. १,११,६ ख. २,७,१२ ग. ९,४,१४ घ. ५,१०,१५

४. यात्रा में अशुभ तिथि है –

क. द्वितीया ख. तृतीया ग. पंचमी घ. षष्ठी

५. वृष राशि वालों के लिए घात संज्ञक तिथि होती है –

क. नन्दा ख. पूर्णा ग. जया घ. भद्रा

कृत्य में विशेष निषिद्ध तिथि -

षष्ठ्यष्टमी भूतविधुक्षयेषु नो सेवेत ना तैलपले क्षुरं रतम्।

नाभ्यञ्जनं विश्वदशद्विके तिथौ धात्रीफलैःस्नानममाद्रिगोष्वसत्॥

अर्थ - षष्ठी तिथि के दिन तैलाभयंग, अष्टमी को मांस भक्षण, चतुर्दशी को क्षौर अमावस्या के दिन स्त्रीसंभोग मानव को नहीं करना चाहिये। चतुर्दशी , कृष्णाष्टमी, अमावस्या, पूर्णिमा , सूर्य की संक्रान्ति का दिन ये पर्व के दिन कहे गये है। परन्तु ये तिथियॉ उक्त कार्यों में तत्काल मानी जाती है । उदयव्यापिनि नहीं तथा त्रयोदशी, दशमी,द्वितीया के दिन तैलाभ्यंग उबटन नहीं लगाना चाहिये , परन्तु यह नियम केवल मलापकर्षण स्नान (शरीर को रगड़ कर स्नान करना) ब्राह्मण रहित तीन वर्णों के लिये है, और अमावस्या , सप्तमी , नवमी को ऑवले के चूर्ण से स्नान नहीं करना चाहिये , स्नान करने से धन एवं संतति क्षीण होती है ,अन्य दिनों में तिलबल्क सहित ऑवलों से स्नान पुण्य फल प्रदान करता है। यह वैद्य शास्त्र से भी स्नान की औषधी वर्ण कान्तिकारक है।

षष्ठी , अष्टमी , चतुर्दशी और अमावस्या को मनुष्य क्रम से तेल, मांस , क्षैर कर्म और मैथुन का सेवन न करे।

विशेष - परिहार रूप में शनिवार से युक्त षष्ठी में तेल सेवन , महाष्टमी को मॉस, चतुर्दशी में क्षौर कर्म और दीपावली की अमावस्या में मैथुन किया जा सकता है। यथा –

'षष्ठी शनैश्चरे तैलं महाष्टम्यां पलानि च। तीर्थं क्षौरं चतुर्दश्यां दीपमाल्यां च मैथुनम् ॥''

सिद्धतिथियॉ -

मंगलवार को 3,8,13 बुधवार को 2,7,12 ,वृहस्पतिवार को 5,10,15 , शुक्रवार को 1,6,11 एवं शनिवार को 4,9,14 तिथियॉ सिद्धिदायक होती है ।

दग्ध , विष और हुताशन संज्ञक तिथियॉ -

रविवार को द्वादशी, सोमवार को एकादशी, मंगलवार को पंचमी, बुधवार को तृतीया, वृहस्पतिवार को षष्ठी, शुक्रवार को अष्टमी और शनिवार को नवमी दग्धा संज्ञक है। रविवार को चतुर्थ, सोमवार को षष्ठी, मंगलवार को सप्तमी, बुधवार को द्वितीया , वृहस्पतिवार को अष्टमी, शुक्रवार को नवमी और शनिवार को सप्तमी ये विष संज्ञक है एवं रविवार को द्वादशी, सोमवार को षष्ठी, मंगलवार को सप्तमी,बुधवार को अष्टमी, वृहस्पतिवार को नवमी, शुक्रवार को दशमी और शनिवार को एकादशी ये हुताशन संज्ञक है। इन योगों में नामानुसार इन तिथियों में कार्य करने पर विघ्न बाधाओं का सामना करना पड़ता है।

दग्ध , विष और हुताशन संज्ञा बोधक चक्र –

वार	रविवार	सोमवार	मंगलवार	बुधवार	गुरूवार	शुक्रवार	शनिवार
दग्ध संज्ञक	12	11	5	3	6	8	9
विष संज्ञक	4	6	7	2	8	9	7
हुताशन	12	12	6	7	9	10	11
यमघण्ट	मघा	विशाखा	आर्द्रा	मूल	कृत्तिका	रोहिणी	हस्त

यात्रा में त्याज्य योग –

सूर्येशपंचाग्नि रसाष्टनन्दा वेदाङ्ग सप्ताश्विगजांकशैलाः।
सूर्यांगसप्तोरगगोदिगीशा दग्धा विषाख्याश्च हुताशनाश्च ॥
सूर्यादिवारे तिथयो भवन्ति मघा विशाखा शिवमूलवह्नि
ब्राह्मं करोऽर्काद्यमघण्टकाश्च शक्रे विवर्ज्या गमनेत्ववश्यम् ॥

अर्थ – रविवार को मघा, सोमवार को विशाखा , मंगलवार को आर्द्रा , बुधवार को मूल , वृहस्पतिवार को कृत्तिका , शुक्रवार को रोहिणी , शनिवार को हस्त आ जाये तो यमघण्ट नाम का

योग होता है। ये उपरोक्त चारों योग समस्त शुभ कार्य में वर्जित है। विशेष करके यात्रा में तो अवश्य ही त्याज्य करना चाहिये।

चैत्रादि मासों की शून्य तिथियॉ –

भाद्रे चन्द्रदृशौ नभस्यनलनेत्रे माधवे द्वादशी
पौषे वेदशरा इषे दशशिवा मार्गेऽद्रिनागा मघौ।
गोष्टौ चोभयपक्षगाश्च तिथय: शून्या बुधै: कीर्तिता
उर्जाषाढतपस्य शुक्र तपसा कृष्णे शराङ्गाब्धय:
शक्रा: पञ्च सिते शक्राद्रयाग्निविश्वरसा: क्रमात्।।

अर्थ – भाद्रपद मास के दोनों पक्षों की प्रतिपदा और द्वितीय श्रावण मास के दोनों पक्षों की द्वितीया और तृतीया , वैशाख् मास के दोनों पक्षों की द्वादशी , पौष मास के दोनों पक्षों की चतुर्थी और पंचमी , आश्विन मास के दोनों पक्षों की दशमी और एकादशी , मार्गशीर्ष मास के दोनों पक्षों की सप्तमी , अष्टमी , और चैत्र मास के दोनों पक्षों की नवमी, अष्टमी को पण्डितों ने मास शून्य तिथि कहा है। कार्तिक मास के कृष्ण पक्ष की पंचमी , आषाढ़ कृष्णपक्ष की षष्ठी , फाल्गुन कृष्ण पक्ष की चतुर्थी , ज्येष्ठ कृष्णपक्ष की चतुर्दशी और माघ कृष्णपक्ष की पंचमी शून्य तिथि कही गयी है एवं कार्तिक शुक्ल चतुर्दशी , आषाढ़ शुक्ल सप्तमी , फाल्गुन शुक्ल तृतीया , ज्येष्ठ शुक्ल त्रयोदशी और माघ शुक्ल षष्ठी ये तिथियॉ मास शून्य तिथि होती है।

आइये अभी तक तो हम तिथि और वार के अनुसार शुभाशुभ फल का विचार किये, अब तिथि और नक्षत्र सम्बन्धि दोष का विचार करते है –

तथा निन्द्यं शुभे सार्पं द्वादश्यां वैश्वमादिमे।
अनुराधा द्वितीयायां पंचम्यां पित्र्यभं तथा।।
त्र्युतराश्च तृतीयामेकादश्यां च रोहिणी
स्वातीचित्रे त्रयोदश्यां सप्तम्यां हस्तराक्षसे।
नवम्यां कृतिकाष्टाम्यां पुभा षष्ठयां च रोहिणी।।

जिस प्रकार मास शून्य तिथियॉ शुभ कर्मो में निन्दित कही गयी है। उसी तरह द्वादशी तिथि में आश्लेषा , प्रतिपदा में उत्तराषाढा , द्वितीया में अनुराधा, पंचमी में मघा, तृतीया में तीनों उत्तरा , एकादशी में रोहिणी , त्रयोदशी में स्वाती और चित्रा सप्तमी में हस्त और मूल, नवमी में कृत्तिका , अष्टमी में पूर्वाभाद्रपदा और षष्ठी में रोहिणी पड़े तो निन्द्य होता है। इन तिथि एवं नक्षत्र के योग में शुभ कार्य करना निषिद्ध माना गया है।

सूक्ष्म तिथि निर्णय –

तिथे: पंचदशो भाग: क्रमात् प्रतिपदादिता:।

क्षण संज्ञा तिथि: प्रोक्ता शुभाशुभाफलप्रदा ।।

प्रत्येक तिथि में उसी तिथि से प्रारम्भ करके 15 तिथियों के अन्तर भोग होते है, वे क्षण तिथि (सूक्ष्म तिथियॉ) कहलाती है।

इसका प्रमाण तिथिभोग घटी के पंचदशांश तुल्य होता है।

उदाहरण के लिये –

प्रतिपदा का पूर्ण भोगमान 60 घटी है, तो उसका पंचदशांश 60 / 15 = 4 घटी का एक – एक क्षण तिथि का मान होगा। इसलिए प्रतिपदा के आरम्भ से 4 घटी तक प्रतिपदा, उसके बाद 4 घटी द्वितीया, उसके बाद 4 घडी तृतीया एवं आगे सब तिथियों के भोगमान समझना चाहिये । तिथियों में कहे हुए कार्य को उसी सूक्ष्म तिथि अर्थात् क्षण तिथियों में करना चाहिये।

तिथि विचार में विशेष –

अमृत योग –

रवौ सोमे तथा पूर्णा कुजे भद्रा गुरौ जया।
तथा बुधे शनौ नन्दा शुक्रे रिक्तामृताऽह्वया ।।

रविवार और सोमवार को पूर्णा 5,20,15 मंगलवार को भद्रा 2,7,12 वृहस्पतिवार को जया 3,8,13 शुक्रवार में रिक्ता 4,9,14 बुध और शनिवार में नन्दा 1,6,11 इन वारों में उक्त तिथियों के योग से अमृत योग होता है। विशेष करके यात्रा के लिये मंगलदायक होता है।

मृत्यु योग –

नन्दा रवौ कुजे चैव भद्रा भार्गवसोमयो: ।
बुधे जया गुरौ रिक्ता शनौ पूर्णा च मृत्युदा ।।

रवि और मंगलवार को नन्दा शुक्र और सोमवार को भद्रा बुधवार को जया वृहस्पतिवार को रिक्ता शनिवार को पूर्णा ये तिथियॉ इन वारों में आये तो मृतयुयोग होता है। इसमें यात्रा नहीं करनी चाहिये।

दग्ध तिथि –

मीने चापे द्वितीया च चतुर्थीवृषकुम्भयो: ।
मेषकर्कटयो: षष्ठी कन्यायां मिथुनेऽष्टमी ।।
दशमी वृश्चिके सिंहे द्वादशी मकरे तुले
एताश्च तिथयो दग्धा: शुभे कर्मणि वर्जिता: ।।

मीन और धनु राशि में सूर्य रहें तो द्वितीया , वृष - कुम्भ में चतुर्थी , मेष - कर्क में षष्ठी कन्या - मिथुन में अष्टमी वृश्चिक- सिंह में दशमी मकर - तुला में द्वादशी ये दग्ध तिथियॉ है तथा ये शुभ कार्य में वर्जित है।

वार शूल – नक्षत्रशूलयोर्विचार: -

न पूर्वदिशि शक्रभे न विधुसौरिवारे तथा
न चाजपदभे गुरौ यमदिशीनदैत्येज्ययो: ।
न पाशिदिशि धातृभे कुजबुधेऽर्मर्क्षे तथा
न सौम्यककुभि व्रजेत्स्वजयजीवितार्थी बुध: ।।

अर्थ – पूर्वदिशा में ज्येष्ठा नक्षत्र ,सोम और शनिवार को , दक्षिण दिशा में पूर्वाभाद्रपद नक्षत्र और गुरूवार को , पश्चिम दिशा में रोहिणी नक्षत्र और रवि एवं शुक्रवार को तथा उत्तर दिशा में उत्तराफाल्गुनि नक्षत्र मंगलवार एवं बुधवार को अपने धन, विजय और और जीवन की अभिलाषा रखने वाले बुद्धिमान व्यक्ति को यात्रा नहीं करनी चाहिये। अर्थात् उक्त दिन एवं नक्षत्रों में तत्तद् दिशाओं में यात्रा करना अनिष्टकर होता है।

यात्रा में निषिद्ध नक्षत्रों का त्याज्य घटी –

पूर्वाग्निपित्र्यान्तकतारकाणां
भूपप्रकृत्युग्रतुरंगमा: स्यु: ।
स्वातीविशाखेन्द्रभुजंगमानां
नाडयो निषिद्धा मनुसम्मिताश्च ।।

तीनों पूर्वा ,कृत्तिका , मघा, भरणी नक्षत्रों की क्रम से 16,21,11,7 घटियॉ तथा स्वाती , विशाखा , ज्योष्ठा और आश्लेषा की 14 घटियॉ त्याज्य होती है, शेष शुभ एवं ग्राह्य होती है।

घात चन्द्र और उसमें त्याज्य नक्षत्र पाद –

भूपञ्चाङ्कद्वयंगदिग्वह्निसप्तवेदाष्टेशार्काश्च घाताख्यचन्द्र: ।
मेषादीनां राजसेवाविवादे वर्ज्यो युद्धाद्येच नान्यत्र वर्ज्य: ।।
आग्नेयत्वाष्ट्रजलपपित्र्यवासवरौद्रभे
मूलब्राह्माजपादर्क्षे पित्र्यमूलाजभे क्रमात् ।
रूपद्वयग्न्यग्निभूरामद्वयब्ध्यग्नयब्धियुगाग्नय: ।।
घातचन्द्रे धिष्णयपादा मेषाद्वर्ज्या मनीषिभि: ।

अर्थ - मेष आदि 12 राशियों के लिये क्रम से प्रथम, पंचम , नवम, द्वितीय, षष्ठ , दशम, तृतीय, सप्तम, चतुर्थ, अष्टम, एकादश एवं द्वादश चन्द्रमा घातक होता है। यथा मेष राशि वालों के लिये मेषस्थ, वृष राशि वालों के लिये पंचम कन्या राशिगत, मिथुन राशिवालों के लिये द्वितीय कर्करराशिगत चन्द्रमा घातक होता है। इसी प्रकार सभी राशियों में समझना चाहिये।

मेषादि राशियों में क्रम से कृत्तिका प्रथम पाद,चित्रा का द्वितीय, शतभिष का 3 य, मघा का तृतीय, धनिष्ठा का प्रथम, आर्द्रा का तृतीय, मूल का द्वितीय, रोहिणी का चतुर्थ, पूर्वाभाद्रपदा का तृतीय, मघा का चतुर्थ , मूल का चतुर्थ, तथा पूर्वाभाद्रपदा का तृतीय चरण विद्वानों ने त्याज्य बतलाया है।

यात्रा में घात नक्षत्र –

मघाकरस्वातिमैत्रमूलश्रुत्यम्बुपान्त्यभम् ।

याम्यब्राह्मेशसार्पञ्च मेषादेर्धातभं न सत् ।।

अर्थ - मेषादि राशियों में क्रम से मघा, हस्त , स्वाती, अनुराधा, मूल, श्रवण,शतभिष ,रेवती, भरणी,रोहिणी, आर्द्रा, आश्लेषा, घात नक्षत्र होते है । अर्थात् मेष राशिवालों के लिए मघा, वृष के लिए हस्त, मिथुन के लिये स्वाती, कर्क के लिए शतभिष, वृश्चिक के लिये रेवती, धनु के लिये भरणी , मकर के लिये रोहिणी , कुम्भ के लिये आर्द्रा तथा मीन के लिये आश्लेषा नक्षत्र घात संज्ञक होते है । इस प्रकार के योगों में यात्रा नहीं करनी चाहिये ।

परिहार –

यात्राकालिकी कर्तव्यताम् -

अग्नि हुत्वा देवतां पूजयित्वा नत्वा विप्रानर्चयित्वा दिगीशम् ।

दत्वा दानं ब्राह्मणेभ्यो दिगीशं ध्यात्वा चित्ते भूमिपालोऽधिगच्छेत् ।।

अर्थ - अग्नि में हवन कर, देवताओं का पूजन कर , ब्राह्मणों को प्रणाम कर दिग्पालों का पूजन कर, ब्राह्मणों को दान देकर तथा मन में गन्तव्य दिशा के स्वामी का ध्यान कर यात्रा करनी चाहिये ।

यात्रा में नक्षत्रदोहदम् -

कुल्माषांस्तिलतण्डुलानपि तथा माषांश्च गव्यं दधि

त्याज्यं दुग्धमथैणमांसमपरं तस्यैव रक्तं तथा ।।

तद्वत्पायसमेव चाषपललं मार्गं च शाशं तथा

षाष्टिक्यं च प्रियंग्वपूपमथवा चित्राण्डजान् सत्फलम् ।।

अर्थ – अश्विनी आदि नक्षत्रों में क्रम से अश्विनी में कुल्माष (चावल और उड़द के मिश्रण) , भरणी में तिल –चावल, कृत्तिका में उड़द , रोहिणी में गाय का दही, मृगशिरा में गाय का घी, आर्द्रा में दूध, पुनर्वसु में मृगमांस, पुष्य में मृग का रक्त , आश्लेषा में खीर, मघा में नीलकण्ठ पक्षी का मांस, पूर्वाफाल्गुनि में मृगमांस, उत्तराफाल्गुनि में खरगोश का मांस, हस्त में षष्टिकान्न , चित्रा में प्रियंगु , स्वाती में मालपूआ, विशाखा में विभिन्न वर्ण के पक्षी, अनुराधा में सुन्दर फलों का भक्षण, दर्शन अथवा स्पर्श कर यात्रा करनी चाहिये ।

ज्येष्ठा में कच्छप का मांस, मूल में सारिका पक्षी का मांस ,पूर्वाषाढा का नक्षत्र में गोधा का मांस,उत्तराषाढामें साही का मांस , अभिजित् में हविर्द्रव्य ,श्रवण में खिचड़ी, धनिष्ठा में मूंग, शतभिष में यव का आटा, पूर्वाभाद्रपदा में मछली और अन्न, उत्तराभाद्रपद में कई रंग के मिश्रित अन्न तथा रेवती में दधि और अन्न, इस प्रकारबुद्धिमान पुरूष को भक्ष्या भक्ष्य का विचार कर यात्रा काल में नक्षत्रानुसार वस्तुओं का भक्षण या अवलोकन कर यात्रा करनी चाहिये ।

1.4 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि चन्द्रमा और सूर्य के मध्य 12^0 का अन्तरांश तिथि कहलाता है। प्रतिदिन 12 अंशों का अन्तर सूर्य और चन्द्रमा के भ्रमण में होते है। यही अन्तरांश का मध्यम मान है। अमावस्या के बाद प्रतिपदासे से लेकर पूर्णिमा पर्यन्त तिथियॉ शुक्लपक्ष की और पूर्णिमा के बाद प्रतिपदा से लेकर अमावस्या तक की तिथियॉ कृष्णपक्ष की होती है। तिथियों की संख्या 15 होती है। पंचांग में तिथियों की गणना शुक्लपक्ष की प्रतिपदा से आरम्भ होती है। तिथियों की संख्या पक्ष की प्रतिपदा से होती है। पंचांग में तिथियों की गणना शुक्ल 15 आरम्भहोती है। षष्ठी, द्वादशी, अष्टमी, शुक्लपक्ष की प्रतिपदा, पूर्णिमा, अमावस्या तथा रिक्ता संज्ञक 4,9,14 तिथियॉ अशुभ कही गई है। अश्विनी, पुनर्वसु,अनुराधा, मृगशिरा, पुष्य, रेवती, हस्त, श्रवण और धनिष्ठा नक्षत्रों में यात्रा प्रशस्त (शुभ) होती है। वृष, कन्या और मीन राशि वालों के लिये पूर्णा 5,10,15 तिथियॉ, मिथुन, कर्क राशि वालों के लिए भद्रा 2,7,12 तिथियॉ , वृश्चिक और मेष राशि के लिए नन्दा 1,6,11 तिथियॉ , मकर और तुला के लिये, रिक्ता 4,9,14 तिथियॉ , धनु, कुम्भ और सिंह राशि वालों के लिये जया 3,8,13 तिथियॉ घात संज्ञक होती है। ये घात तिथियॉ अशुभ होती है।

1.5 पारिभाषिक शब्दावली

प्रतिपदा – पहली तिथि

अहि – सर्प

अन्तक – यमराज

अर्यमा - पितर

जीव – वृहस्पति

इन्दु – चन्द्रमा

सित – शुक्र

चित्रकर्म – चित्र निर्माण सम्बन्धित

भद्रा – 2,7,12

सूर्यादिवार – रविवार, सोमवार, मंगलवार आदि

ऋण – कर्ज

1.6 बोधप्रश्नों के उत्तर

1. ख

2. ग

3. घ

4. घ

5. ख

1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

मुहूर्त्तपारिजात - चौखम्भा विद्याप्रकाशन

मुहूर्त्तचिन्तामणि – चौखम्भा विद्याप्रकाशन

वृहज्ज्योतिसार – चौखम्भा विद्याप्रकाशन

ज्योतिष सर्वस्व – चौखम्भा विद्याप्रकाशन

वीरमित्रोदय – चौखम्भा विद्याप्रकाशन

1.8 सहायक पाठ्यसामग्री

1. जातक पारिजात
2. फलदीपिका
3. मुहूर्त्तचिन्तामणि – पीयूषधारा
4. जातकतत्व
5. भारतीय कुण्डली विज्ञान

1.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. तिथियों में किये जाने वाले कार्यों का उल्लेख कीजिये ।
2. तिथि, नक्षत्र का परिचय देते हुए उनके शुभाशुभ फल लिखिये।
3. तिथि, नक्षत्र शुद्धि पर निबन्ध लिखिये।

इकाई 2 वार शुद्धि लग्न शुद्धि

इकाई की संरचना

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 वार शुद्धि
2.4 लग्न शुद्धि
बोध प्रश्न
2.5 सारांश
2.6 पारिभाषिक शब्दावली
2.7 बोध प्रश्नों के उत्तर
2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

ज्योतिष शास्त्र से सम्बन्धित यह दूसरी इकाई है। इस इकाई का शीर्षक वार शुद्धि एवं लग्न शुद्धि है। इससे पूर्व की इकाईयों में आपने तिथि – नक्षत्र शुद्धि का अध्ययन कर लिया है यहॉ अब वार शुद्धि एवं लग्न शुद्धि का अध्ययन करने जा रहे हैं।

यात्रा में वार शुद्धि एवं लग्न शुद्धि का विचार अवश्य करना चाहिये। ज्योतिष शास्त्र में यात्रा प्रकरण के अन्तर्गत वार एवं लग्न शुद्धि का विश्लेषण किया गया है।

यात्रा में किस वार को यात्रा करने से लाभ होता है तथा यात्रा हेतु कौन सा लग्न शुभ माना जाता है इसका अध्ययन आप प्रस्तुत इकाई में करने जा रहे है। यात्रा मानव जीवन का अभिन्न अंग है। प्रत्येक मनुष्य अपने जीवन में विभिन्न उद्देश्यों से कई बार यात्रा करता है। मानव जीवन को और सशक्त एवं महत्वपूर्ण बनाने हेतु इस इकाई में वार एवं लग्न शुद्धि का विवेचन किया गया है।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप –

- ❖ वार एवं लग्न का बोध कर लेंगे।
- ❖ यात्रा में वार शुद्धि को समझा पायेंगे।
- ❖ यात्रोक्त लग्न शुद्धि का विश्लेषण कर सकेंगे।
- ❖ मानव जीवन में यात्रा के महत्व को बता सकेंगे।
- ❖ वार शुद्धि एवं लग्न शुद्धि के प्रयोजन को समझा पायेंगे।

2.3 वार शुद्धि एवं लग्न शुद्धि

वारा: सप्त रवि सोमो मंगलश्च बुधस्तथा।
वृहस्पतिश्च शुक्रश्च शनिश्चैव यथाक्रमम्॥

वारों की संख्या ७ होती है। इसे सावन दिन भी कहते है। रविवार, सोमवार, मंगलवार, बुधवार, वृहस्पतिवार, शुक्रवार एवं शनिवार ये वारों के नाम है।

वारों के स्वामी तथा देवता –

सूर्यादित: शिवशिवागुहविष्णुकेन्द्रकाला: क्रमेण पतय: कथिता ग्रहाणाम्।
वह्नयम्बुभूमिहरिशक्रशचीविरंचिस्तेषां पुनर्मुनिवरैरधिदेवताश्च॥

शिव, गौरी, षडानन, विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र और काल ये 7 क्रम से सूर्यादिक वारों के स्वामी तथा अग्नि, जल, भूमि, हरि, इन्द्र, इन्द्राणी और ब्रह्मा ये 7 क्रम से वारों के देवता हैं।

वार शूल –

न पूर्वदिशि शक्रभे न विधुसौरिवारे तथा
न चाजपदभे गुरौ यमदिशीनदैत्येज्ययो:।
न पाशिदिशि धातृभे कुजबुधेऽर्यमर्क्षे तथा
न सौम्यककुभि व्रजेत्स्वजयजीवितार्थी बुध:॥

पूर्व दिशा में ज्येष्ठा नक्षत्र, सोम और शनिवार को, दक्षिण दिशा में पूर्वाभाद्रपद नक्षत्र और गुरूवार को, पश्चिम दिशा में रोहिणी नक्षत्र और रवि एवं शुक्रवार को, तथा उत्तर दिशा में उत्तराफाल्गुनि नक्षत्र मंगलवार एवं बुधवार को अपने धन, विजय और जीवन की अभिलाषा रखने वाले बुद्धिमान व्यक्ति को यात्रा नहीं करनी चाहिए। अर्थात् उक्त दिन एवं नक्षत्रों में तत्तद् दिशाओं में यात्रा करना अनिष्टकर होता है।

वस्तुत: वार शूल लोक में दिक्शूल नाम से प्रसिद्ध है। यात्रा में सर्वाधिक दिक्शूल विचार किया जाता है।

परिहार –

न वारदोषा: प्रभवन्ति रात्रौ देवेज्य दैत्येज्य दिवाकराणाम्।
दिवा शशाङ्कार्कजभूसुतानां सदैव निन्द्यो बुधवारदोष: ॥

अर्थात् गुरूवार, शुक्रवार और रविवार को रात्रि में चन्द्र, शनि और मंगलवार को दिन में दिक्शूल का दोष नहीं होता है। बुधवार दिन और रात्रि दोनों में त्याज्य है।

एवं च –

रविवारे घृतं भुक्त्वा सोमवारे पयस्तथा।
गुडमङ्गारके वारे बुधवारे तिलानपि ॥
गुरूवारे दधि प्राश्य शुक्रवारे यवानपि
माषान् भुक्त्वा शनेर्वारे गच्छन् शूले न दोषभाक्॥

अर्थात् रविवार को घी ग्रहण करने से, सोमवार को दुग्ध से, मंगलवार को गुड़ से, बुधवार को तिल से गुरूवार को दधि से, शुक्रवार को यव (जौ) से तथा शनिवार को काला उडद सेवन से दिक्शूल का परिहार हो जाता है।

ताम्बूलं चन्दनं मृच्च पुष्पं दधि घृतं तिला:।
वारशूलहराण्यर्काद्दानाद्धारणतो ऽदनात्॥

ताम्बूल, चन्दन, मृत्तिका, पुष्प, दधि, धृत और तिल का क्रम से रव्यादि वारों में दान करने, धारण करने तथा भक्षण करने से दिक्शूल दोषकारक नहीं होता।

रसालां पायसं काञ्जीं श्रृतं दुग्धं तथा दधि।
पयोऽशृतं तिलान्नं च भक्षयेद्वारदोहदम्॥

रविवार को शिखरिणी (दही से निर्मित पदार्थ विशेष) सोमवार को खीर, भौमवार को कॉजी सिरका सदृश पदार्थ, बुधवार बुधवार को उष्ण दूध, गुरूवार को दही, शुक्रवार को कच्चा दूध तथा शनिवार को तिलान्न (तिल और चावल) वार दोहद होता है। उक्त वारों में इसका भक्षण कर यात्रा करनी चाहिये।

यात्रा में लग्न शुद्धि विचार –

कुम्भकुम्भांशकौ त्याज्यौ सर्वथा यत्नतो बुधैः।
तत्र प्रयातुर्नृपतेरर्थनाशः पदे पदे ॥

यात्रा में कुम्भ लग्न एवं कुम्भ के नवमांश का प्रयासपूर्वक परित्याग करना चाहिये। कुम्भ लग्न या इसके नवमांश में यात्रा करने वाले राजा का पग – पग पर अर्थ नाश होता है।

अथ मीनलग्न उत वा तदंशके चलितस्य वक्रमिह वर्त्म जायते।
जनिलग्नजन्मभपती शुभग्रहौ भवतस्तदा तदुदये शुभो गमः॥

मीन लग्न में या मीन के नवमांश में यात्रा करने वाले का मार्ग वक्र हो जाता है। यदि जन्मलग्नेश और जन्मराशीश दोनों शुभग्रह हों तथा यात्राकालिक लग्न में हो तो यात्रा शुभ होती है।

जन्मराशितनुतोऽष्टमेऽथवा स्वारिभाच्च रिपुभे तनुस्थिते ।
लग्नगास्तदधिपा यदाऽथवा स्युर्गतं हि नृपतेर्मृतिप्रदम् ॥

जन्मराशि से या जन्म लग्न से अष्टम भाव की राशि अथवा शत्रु की राशि से षष्ठ भाव में स्थित लग्न में हों अथवा इनके स्वामी ग्रह यात्राकालिक लग्न में हों तो यात्रा करने वाले राजा के लिए मृत्युप्रद होते हैं।

शुभ लग्न –

लग्ने चन्द्रे वापि वर्गोत्तमस्थे यात्रा प्रोक्ता वांछितार्थैकदात्री।
अम्भोराशौ वा तदंशे प्रशस्तं नौकायनं सर्वसिद्धिप्रदायि ॥

यात्राकालिक लग्न अथवा चन्द्रमा अपने वर्गोत्तम राशियों में स्थित हो तो यात्रा वांछित सिद्धि को देने वाली कही गई है। यदि जल राशि ४,१०,११,१२ में अथवा जल राशि के नवमांश में लग्न और चन्द्रमा हो तो नौका यात्रा सभी प्रकार की सिद्धियों को देने वाली शुभ कही गई है। इसमें कुम्भ – मीन राशियों का तथा इनके नवमांशो का परित्याग करना चाहिए।

राशिः स्वजन्मसमये शुभसंयुतो यो
यः स्वारिभान्धिनगोऽपि च वेशिसंज्ञः।
लग्नोपगः स गमने जयदोऽथ भूप –
योगैर्गमो विजयदो मुनिभिः प्रदिष्टः॥

जो राशि अपने जन्म समय में शुभ ग्रहों से युक्त हो, वही राशि यात्राकालिक लग्न में हो, अथवा

शत्रु की राशि या लग्न से अष्टम राशि अथवा जन्म समय में सूर्य जिस राशि पर हों उससे द्वितीय भाव की राशि यात्रा लग्न में हो तो यात्रा शुभ विजय देने वाली होती है। राजयोगों में यात्रा करने से विजय प्राप्त होती है।

दिशाओं के स्वामी –

सूर्यः सितो भूमिसुतोऽथ राहुः शनिः शशी ज्ञश्च वृहस्पतिश्च ।
प्राच्यादितो दिक्षु विदिक्षु चापि दिशामधीशाः क्रमतः प्रदिष्टः ।।

पूर्वादि दिशाओं एवं विदिशाओं के क्रम से सूर्य, शुक्र, भौम, राहु, शनि, चन्द्र, बुध और गुरू स्वामी कहे गये हैं। अर्थात् पूर्व दिशा के स्वामी सूर्य, अग्निकोण के शुक्र, दक्षिण के मंगल, नैऋत्य के राहु, पश्चिम के शनि, वायव्य के चन्द्रमा, उत्तर के बुध तथा ईशान कोण के वृहस्पति स्वामी होते है।

वारों में कृत्य –

रविवार –

राज्याभिषेक, उत्सव, यात्रा, राजसेवा, गाय – बैल का क्रय विक्रय, हवन करना, मन्त्रोपदेश करना, औषध तथा शस्त्र निर्माण करना, सोना, तॉबा, उन, चर्म, काष्ठ कर्म, युद्ध और क्रय - विक्रय इत्यादि कर्म रविवार को करने चाहिये।

सोमवार -

शङ्ख, मूँगा, मोती, चॉदी, भोजन, स्त्रीसंसर्ग, वृक्ष, कृषि, जलादिकर्म, अलंकार, गीत, यज्ञकर्म, दूध – दही, मथना, सींग चढ़ाना, पुष्प, वस्त्र कार्य सोमवार को शुभ है।

मंगलवार –

भेद, अनृत, चोरी, विष, अग्नि, वध, वन्ध्या, घात, संग्राम, कपट व दम्भादि कर्म, सेना का पड़ाव, खानि, धातु, सुवर्ण, मूॅगा, रत्नादि कर्म मंगल को प्रशस्त है।

बुधवार –

चातुर्य, पुण्य, विद्या, कला, शिल्प, सेवा, लिखना, धातुक्रिया, सोने के जड़ित अलंकार, सन्धि, व्यायाम और विवाद ये कर्म बुधवार को करने चाहिये।

गुरूवार –

धर्म करना, यज्ञ, विद्याभ्यास, मांगलिक कर्म, स्वर्ण कार्य, गृह निर्माण, यात्रा, रथ, अश्व, औषध नूतन वस्त्र धारण करना गुरूवार को शुभ है।

शुक्रवार -

स्त्री प्रसंग, गायन, शय्या, रत्नादि, वस्त्र, अलंकार, वाणिज्य, भूमि, गौ, द्रव्य तथा खेती आदि कार्य शुक्रवार को प्रशस्त है।

शनिवार –

लोहा, पत्थर, शीशा, जस्ता, शस्त्र, दास, दुष्टकर्म, चोरी, विष, अर्क निकालना, गृहप्रवेश, हाथी बॉधना, दीक्षा ग्रहण करना और स्थिर कर्म शनिवार को करने चाहिये।

वार शूल नक्षत्र –

ज्येष्ठा नक्षत्र सोमवार तथा शनिवार को पूर्व दिशा में, पूर्वाभाद्रपद और गुरूवार को दक्षिण, शुक्र वार और रोहिणी नक्षत्र को पश्चिम और मंगलवार तथा बुधवार को उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में उत्तर दिशा को नहीं जाना चाहिए।

यात्रा के लिए आप जिस दिशा में जाना चाहते हैं, उस दिशा से सम्बन्धित लग्न या राशि के होने पर लाभदायक स्थिति रहती है इसे आप एक उदाहरण से समझ सकते हैं, यदि कोई व्यक्ति पूर्व दिशा की यात्रा करना चाहता है तो मेष, सिंह, धनु राशी का लग्न एवं राशि शुभफलदायक रहती है। इसी प्रकार दक्षिण दिशा में यात्रा करने के लिए वृष, कन्या व मकर एवं पश्चिम दिशा में यात्रा करने के लिए मिथुन, तुला एवं उत्तर दिशा में यात्रा करने के लिए कर्क, वृश्चिक एवं मीन लग्न व राशि उत्तम होता है।

जिस व्यक्ति का जो लग्न एवं राशि होती है यदि यात्रा के लिए वही लग्न व राशि का प्रयोग किया जाए तो वह भी अनुकूल फल देता है, यहां इस तथ्य को समझने के लिए हम एक उदाहरण देख सकते हैं, मान लीजिए किसी व्यक्ति का लग्न मेष एवं राशि धनु है, यदि वह व्यक्ति मेष लग्न और धनु राशि या धनु लग्न और धनु राशि या धनु लग्न और मेष राशि में यात्रा करता है तो यात्रा में सफलता मिलने की संभावना अधिक रहती है।

यात्रा के संदर्भ में वर्गोत्तर लग्न और वर्गोत्तम चन्द्र अनुकूल रहता है। ऐसे में यदि केन्द्र)1,4,7,10 एवं त्रिकोण)5,9) में शुभ ग्रह तथा 3,6,11भाव में पाप ग्रह हों तो अत्यंत शुभ होता है।

ज्योतिषशास्त्र मे बताया गया है कि यात्रा में सम्मुख और बांयी तरफ की योगिनी से बचना चाहिए। दाहिने और पीछे की योगिनी शुभ मानी जाती है। योगिनी का निवास अलग अलग तिथियों मे अलग अलग दिशा में होता है, आइये देखें कि योगिनी किस तिथि को किस दिशा में रहती है।

पूर्व दिशा में योगिनी का निवास प्रतिपदा और नवमी तिथि को रहता है।

तृतीया और एकादशी तिथि को योगिनी आग्नेश दिशा में निवास करती है।

पंचमी और त्रयोदशी तिथि को योगिनी दक्षिण दिशा में निवास करती है।

चतुर्थी और द्वादशी तिथि को योगिनी नैऋत्य दिशा में निवास करती है।

षष्टी और चतुर्दशी तिथि को योगिनी पश्चिम में रहती है।

सप्तमी और पूर्णिमा को योगिनी वायव्य दिशा में वास करती है।

द्वितीया और दशमी तिथि के दिन योगिनी उत्तर दिशा में विचरण करती है।

अष्टमी और अमावस के दिन योगिनी का निवास ईशान यानी उत्तर पूर्व में रहता है।

तारा शुद्धि-

आप यात्रा पर जा रहे हैं तो इस बात का ख्याल रखें कि जिस नक्षत्र में आपका जन्म हुआ है उससे पहला, तीसरा, पांचवां, सातवां, दशवां, बारहवां, चौदहवां, सोलवां, उन्नीसवां, इक्कीसवां, तेइसवां और पच्चीसवां नक्षत्र हो तो उस दिन यात्रा नहीं करें। ज्योतिषशास्त्र के अनुसार इन नक्षत्रों में यात्रा करना नुकसानदेय हो सकता है। अगर आप इन नक्षत्रों का यात्रा में त्याग करें तो उत्तम रहता है इससे आपको तारा दोष से नहीं लगता है, इसे तारा शुद्धि के नाम से भी जाना जाता है।

चन्द्र शुद्धि

ज्योतिषशास्त्र के अनुसार यात्रा पर निकलने से पहले चन्द्रमा की शुद्धि का भी विचार करना चाहिए। आपके जन्म के समय चन्द्रमा जिस राशि में था उस राशि से तीसरा, छठा, दसमा, ग्यारहवां, पहला और सातवें राशि में अगर चन्द्र है तो यह शुभ होता है। यात्रा के दिन अगर चन्द्रमा गोचरवश चतुर्थ, अष्टम अथवा द्वादश राशि में हो तो यात्रा स्थगित कर देना चाहिए, इससे चन्द्र दोष नहीं लगता।

किस शुभ लग्न में यात्रा करनी चाहिए यह जानना अत्यंत आवश्यक हो जाता है। इसके लिए हमें यह बात हमेशा ध्यान रखनी चाहिए कि कभी भी कुंभ लग्न में या कुंभ के नवांश में यात्रा नहीं करनी है। लग्न शुद्धि इस प्रकार करनी चाहिए कि 1, 4, 5, 7, 10वें भावों में शुभ ग्रह हों तथा लग्न से 3, 6, 10 एवं 11वें भाव में पाप ग्रह स्थित हों। यदि चंद्रमा लग्न से 1, 6, 8 या 12वें भाव में स्थित होगा तो वह लग्न अशुभ होगा। यह चंद्रमा पापग्रह से युक्त होगा तो भी अशुभ माना जाएगा। लग्न शुद्धि इस प्रकार करनी चाहिए कि शनि 10वें, शुक्र 7वें, गुरु 8वें, और बुध 12वें भाव में स्थित हो सकें। किसी विशेष वार को विशेष दिशा में यात्रा करने से माना जाता है।

तिथि एवं नक्षत्र शुद्धियों के पश्चात जबकि यात्रा का दिन निश्चित किया जा चुका है, उसके उपरांत किस शुभ लग्न में यात्रा करनी चाहिए यह जानना अत्यंत आवश्यक हो जाता है। इसके लिए हमें यह बात हमेशा ध्यान रखनी चाहिए कि कभी भी कुंभ लग्न में या कुंभ के नवांश में यात्रा नहीं करनी है। लग्न शुद्धि इस प्रकार करनी चाहिए कि 1, 4, 5, 7, 10वें भावों में शुभ ग्रह हों तथा लग्न से 3, 6, 10 एवं 11वें भाव में पाप ग्रह स्थित हों।

यदि चंद्रमा लग्न से 1, 6, 8 या 12वें भाव में स्थित होगा तो वह लग्न अशुभ होगा। यह चंद्रमा पापग्रह से युक्त होगा तो भी अशुभ माना जाएगा।

राहुकाल में शुभकार्य करना वर्जित हैं। ऐसा माना जाता है कि यह समय क्रुर ग्रह राहु के नाम से है जो पाप ग्रह माना गया है। इसलिए इस समय में जो भी कार्य किया जाता है वो पाप ग्रस्त हो जाता है और असफल हो जाता है।

रविवार को शाम 04:30 से 06 बजे तक राहुकाल होता है।

सोमवार को दिन का दूसरा भाग यानि सुबह 07:30 से 09 बजे तक राहुकाल होता है।

मंगलवार को दोपहर 03:00 से 04:30 बजे तक राहुकाल होता है।

बुधवार को दोपहर 12:00 से 01:30 बजे तक राहुकाल माना गया है।

गुरुवार को दोपहर 01:30 से 03:00 बजे तक का समय यानि दिन का छठा भाग राहुकाल होता है।

शुक्रवार को दिन का चौथा भाग राहुकाल होता है। यानि सुबह 10:30 बजे से 12 बजे तक का समय राहुकाल है।

शनिवार को सुबह 09 बजे से 10:30 बजे तक के समय को राहुकाल माना गया है।

बोध प्रश्न -

१. वारों की संख्या है –

क. ५ ख.६ ग. ७ घ. ८

२. बुधवार के स्वामी है –

क. गौरी ख. इन्द्र ग. विष्णु घ. षडानन

३. रवि एवं शुक्रवार को किस दिशा की यात्रा नहीं करनी चाहिये –

क. पूर्व ख. दक्षिण ग. पश्चिम घ. उत्तर

४. मंगलवार को दिक्शूल दोष नहीं लगता है –

क. रात्रि में ख. दिन में ग. मध्याह्न में घ. कोई नहीं

५. कुम्भ लग्न में यात्रा करने से होता है –

क. मान नाश ख. अर्थ नाश ग. राज्य नाश घ. गृह नाश

६. दक्षिण दिशा के स्वामी है –

क. गुरू ख. शनि ग. मंगल घ. राहु

७. ईशान कोण के स्वामी है –

क. गुरू ख. शुक्र ग. वृहस्पति घ. कोई नहीं

वार वेला अर्धप्रहर विचार -

याम अर्थात् प्रहर का मान 3 घंटे होता है। यामार्ध या अर्धप्रहर निसर्गत: डेढ़ या 90 मिनट का होगा प्रत्येक दिन यह 90 – 90 मिनट का विशेष काल खण्ड शुभ कार्यों में वारानुसार वर्जित होता है। इसे यामार्ध या अर्धप्रहर कहते हैं। 12 – 12 घंटे दिन व रात का मान मानने से कुल आठ अर्धप्रहर 720 मिनट या 12 घंटे में व्यतीत होते हैं। लेकिन दिन – रात का मान अलग होने पर अनुपात से अर्धयाम का मान निश्चय करना चाहिए। इन खण्डों के स्वामी भी बताए गए हैं। किन्हीं विशेष अर्धप्रहरोंको वार वेला व कालबेला कहते है। सामान्यत: त्याज्य अर्धप्रहरों को जान लेने से इन सब का ग्रहण स्वयमेव हो जाता है । कौन सा अर्धप्रहर वारवेला या कालवेला कहलाता है। इसे नीचे दिए चक्र के

अनुसार समझा जा सकता है –

वार	वार वेला	काल वेला	
		दिन	रात्रि
रवि	4	5	6
सोम	7	2	4
मंगल	2	6	2
बुध	5	3	7
गुरू	8	7	5
शुक्र	3	4	3
शनि	6	1 व 8	1 व 8

वार वेला रात व दिन में समान रूप से तथा काल वेला दिन व रात में कथित क्रमानुसार त्याज्य होती हैं। उदाहरणार्थ रविवार को दिन में चौथा व पॉचवॉ तथा रात में चौथा व छठा व अर्ध प्रहर त्याज्य हैं इसी प्रकार सभी दिनों में समझना चाहिए।

2.4 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि पूर्व दिशा में ज्येष्ठा नक्षत्र, सोम और शनिवार को, दक्षिण दिशा में पूर्वाभाद्रपद नक्षत्र और गुरूवार को, पश्चिम दिशा में रोहिणी नक्षत्र और रवि एवं शुक्रवार को, तथा उत्तर दिशा में उत्तराफाल्गुनि नक्षत्र मंगलवार एवं बुधवार को अपने धन, विजय और जीवन की अभिलाषा रखने वाले बुद्धिमान व्यक्ति को यात्रा नहीं करनी चाहिए। अर्थात् उक्त दिन एवं नक्षत्रों में तत्तद् दिशाओं में यात्रा करना अनिष्टकर होता है। वस्तुत: वार शूल लोक में दिक्शूल नाम से प्रसिद्ध है। यात्रा में सर्वाधिक दिक्शूल विचार किया जाता है। गुरूवार, शुक्रवार और रविवार को रात्रि में चन्द्र, शनि और मंगलवार को दिन में दिक्शूल का दोष नहीं होता है। बुधवार दिन और रात्रि दोनों में त्याज्य है। यात्रा में कुम्भलग्न एवं कुम्भ के नवमांश का प्रयासपूर्वक परित्याग करना चाहिये। कुम्भ लग्न या इसके नवमांश में यात्रा करने वाले राजा का पग – पग पर अर्थ नाश होता है। यात्राकालिक लग्न अथवा चन्द्रमा अपने वर्गोत्तम राशियों में स्थित हो तो यात्रा वांछित सिद्धि को देने वाली कही गई है। यदि जल राशि

४,१०,११,१२ में अथवा जल राशि के नवमांश में लग्न और चन्द्रमा हो तो नौका यात्रा सभी प्रकार की सिद्धियों को देने वाली शुभ कही गई है। इसमें कुम्भ – मीन राशियों का तथा इनके नवमांशो का परित्याग करना चाहिए।

2.5 पारिभाषिक शब्दावली

षडानन – छ: मुख वाला

वह्नि – अग्नि

अम्बु – जल

विधु - चन्द्रवार

सौरिवार – शनिवार

अनिष्टकर – अनिष्ट करने वाला

देवेज्य – वृहस्पति

शशांक – चन्द्रमा

दिक्शूल – दिशा में जाना अनिष्टकर

पय – दूध

अंगार – मंगल

2.6 बोधप्रश्नों के उत्तर

1. ग
2. ग
3. ग
4. ख
5. ख
6. ग
7. ग

2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

मुहूर्त्तपारिजात - चौखम्भा विद्याप्रकाशन

मुहूर्त्तचिन्तामणि – चौखम्भा विद्याप्रकाशन

वृहज्ज्योतिसार – चौखम्भा विद्याप्रकाशन

ज्योतिष सर्वस्व – चौखम्भा विद्याप्रकाशन

वीरमित्रोदय – चौखम्भा विद्याप्रकाशन

2.8 सहायक पाठ्यसामग्री

1. जातक पारिजात
2. फलदीपिका
3. मुहूर्त्तचिन्तामणि – पीयूषधारा
4. जातकतत्व
5. भारतीय कुण्डली विज्ञान

2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. वार परिचय देते हुए उसकी शुद्धि का उल्लेख कीजिये ।
2. लग्न शुद्धि से आप क्या समझते है। स्पष्ट कीजिये।
3. वारों में कृत्याकृत्य का विचार कीजिये।

इकाई – 3 घात विचार

इकाई की संरचना

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 घात परिचय
3.4 यात्रा में घात विचार
बोध प्रश्न
3.5 सारांश
3.6 पारिभाषिक शब्दावली
3.7 बोध प्रश्नों के उत्तर
3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

ज्योतिष शास्त्र से सम्बन्धित यह तीसरी इकाई है। इस इकाई का शीर्षक 'घात विचार' है। इससे पूर्व की इकाईयों में आपने तिथि – नक्षत्र शुद्धि , वार एवं लग्न शुद्धि विचार का अध्ययन कर लिया है यहॉ अब घात विचार का अध्ययन करने जा रहे हैं।

घात का अर्थ होता है – अशुभ । यात्रा में घात विचार से तात्पर्य यात्रा करने के दौरान शारीरिक दुर्घटना आदि से है।

किस समय यात्रा करने से क्या होता है। कौन – कौन से समय, वार, तिथि नक्षत्रादि में यात्रा करने से घात नहीं होता तथा किसमें होता है। इन सबका विचार प्रस्तुत इकाई में किया जा रहा है। आशा है पाठकगण इसे सावधानीपूर्वक समझने का प्रयास करेंगे।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप –

- ❖ घात का तात्पयार्थ बोध कर लेंगे।
- ❖ यात्रा में घात क्या है, का ज्ञान लेंगे ।
- ❖ घात का सम्यक् विश्लेषण कर सकेंगे।
- ❖ घात को समझा सकेंगे।
- ❖ घात परिहार की जानकारी प्राप्त कर लेंगे ।

3.3 घात परिचय

यात्रा मानव जीवन से जुड़ा एक विशेष हिस्सा है। जीवन क्षेत्र में वह प्रतिदिन स्वगृह से कहीं न कहीं तक की यात्रा करता है। ऐसे यात्रा को सामान्योद्देशक यात्रा कहते है। घात का अर्थ है – अशुभ। आपने देखा होगा कि काफी बड़े तादाद में लोग गन्तव्य स्थल तक कहीं जाते हैं, रास्ते में ही उनका दुर्घटना हो जाता है और वह अपने स्थल पर पहुॅच नहीं पाते हैं। इसी प्रकार छोटी छोटी दुर्घटनायें तो आमतौर पर प्रतिदिन ही देखी जाती है। ऐसी परिस्थितियों में ही कहा जाता है कि अमुक के लिए वह यात्रा घातक हो गया आदि ... इत्यादि। यात्रा जब घातक होता है तो मनुष्य को शारीरिक पीड़ा के साथ – साथ उसकी मृत्यु तक हो जाती है। इन्हीं समस्याओं को ध्यान में रखते हुए आचार्यो ने ज्योतिष में घात विचार किया है।

आइए अब इस इकाई में ज्योतिषोक्त घात विचार का अध्ययन करते हैं, जिससे आपलोग भली – भॉति यात्रा में कथित घात का ज्ञान कर लेंगे तथा स्वजीवन को इस प्रकार की समस्याओं से बचा पाने में भी समर्थ होंगे।

3.4 घात विचार –

घात विचार के अन्तर्गत सर्वप्रथम घात चन्द्र का विचार करते है। यथा –

भूपञ्चाङ्कद्वयंगदिग्वह्निसप्तवेदाष्टेशाकश्चि घाताख्यचन्द्रः।

मेषादीनां राजसेवाविवादे वर्ज्यो युद्धाद्ये च नान्यत्र वर्ज्यः॥

मेषादि 12 राशियों के लिए क्रम से प्रथम, पंचम, नवम, द्वितीय, षष्ठ, दशम, तृतीय, सप्तम, चतुर्थ, अष्टम, एकादश एवं द्वादश चन्द्रमा घातक होता है। यथा मेष राशिवालों के लिए मेषस्थ, वृष राशि – वालों के लिए पंचम कन्या राशिगत, मिथुन राशिवालों के लिए द्वितीय कर्क राशिगत चन्द्रमा घातक होता है। इसी प्रकार सभी राशियों में समझना चाहिए।

घात चन्द्र में त्याज्य नक्षत्र पाद (परिहार) -

आग्नेयत्वाष्ट्रजलपपित्रयवासवरौद्रभे

मूलब्राह्मजपादर्क्षे पित्रयमूलाजभे क्रमात्।

रूपद्वयग्न्यग्निभूरामद्वयब्ध्यग्न्यब्धियुगाग्नयः

घातचन्द्रे विष्ण्यपादा मेषाद्वर्ज्या मनीषिभिः॥

मेषादि राशियों में क्रम से कृत्तिका प्रथम पाद, चित्रा का द्वितीय, शतभिष का ३ , मघा का तृतीय, धनिष्ठा का प्रथम, आर्द्रा का तृतीय, मूल का द्वितीय, रोहिणी का चतुर्थ, पूर्वाभाद्रपदा का तृतीय, मघा का चतुर्थ, मूल का चतुर्थ, तथा पूर्वाभाद्रपदा का तृतीय चरण त्याज्य कहा गया है।

घात तिथि –

गोस्त्रीझषे घाततिथिस्तु पूर्णा भद्रा नृयुक्कर्कटकेऽथ नन्दा।

कौर्प्याजयोर्नक्रधटे च रिक्ता जया धनुःकुम्भहरौ न शस्ताः॥

वृष – कन्या और मीन राशि वालों के लिए पूर्णा (५,१०,१५) तिथियॉ, मिथुन, कर्क राशि वालों के लिए भद्रा (२,७,१२) तिथियॉ, वृश्चिक और मेष राशि के लिए नन्दा (१,६,११) तिथियॉ मकर और तुला के लिए, रिक्ता (४,९,१४) तिथियॉ, धनु , कुम्भ और सिंह राशि वालों के लिए जया (३,८,१३) तिथियॉ घात संज्ञक होती है। ये घात तिथियॉ यात्रा के लिए अशुभ होती है।

घात वार –

नक्रे भौमो गोहरिस्त्रीषु मन्दश्चन्दो द्वन्द्वेऽर्कोऽजभे ज्ञश्च कर्के।

शुक्रः कोदण्डालिमीनेषु कुम्भे जूके जीवो घातवारा न शस्ताः॥

मकर राशि के लिए मंगलवार, वृष- सिंह-कन्या राशियों के लिए शनिवार, मिथुन के लिए सोमवार, मेष राशि के लिए रविवार, कर्क राशि के लिए बुधवार, धनु – वृश्चिक और मीन राशि के लिए शुक्रवार तथा कुम्भ और तुला राशियों के लिए गुरूवार, घातवार होते हैं। ये शुभ नहीं होते है।

घात नक्षत्र –

मघाकरस्वातिमैत्रमूलश्रुत्यम्बुपान्त्यभम् ।

याम्यब्राह्मेशसार्पञ्च मेषादेर्घातभं न सत् ।।

मेषादि राशियों में क्रम से मघा, हस्त, स्वाती, अनुराधा, मूल, श्रवण, शतभिष,रेवती, भरणी, रोहिणी,आर्द्रा, आश्लेषा घात नक्षत्र होते हैं अर्थात् मेष राशिवालों के लिए मघा, वृष के लिए हस्त, मिथुन के लिए स्वाती, कर्क के लिए अनुराधा, सिंह के लिए मूल, कन्या के लिए श्रवण, तुला के लिए शतभिषा, वृश्चिक के लिए रेवती, धनु के लिए भरणी मकर के लिए रोहिणी, कुम्भ के लिए आर्द्रा तथा मीन के लिए आश्लेषा नक्षत्र घात संज्ञक होते हैं। जो शुभ नहीं होते है।

घात लग्न –

भूमिद्वयब्ध्यद्रिदिक्सूर्याङ्गाष्टाङ्केशाग्निसायकाः ।

मेषादिघातलग्नानि यात्रायां वर्जयेत्सुधीः ।।

मेष राशि के लिए मेष, वृष के लिए वृष, मिथुन के लिए कर्क, कर्क के लिए तुला, सिंह के लिए मकर, कन्या के लिए मीन, तुला के लिए कन्या, वृश्चिक के लिए वृश्चिक, धनु के लिए धनु, मकर के लिए कुम्भ, कुम्भ के लिए मिथुन, तथा मीन के लिए सिंह लग्न घात संज्ञक होते हैं । अतः इनमें यात्रा नहीं करनी चाहिए।

घात बोधक चक्र -

राशि	घातचन्द्र	नक्षत्रों के त्याज्य पाद	घात तिथि	घातवार	घात नक्षत्र	घात लग्न
मेष	मेष	कृत्तिका १	१,६,११	रविवार	मघा	मेष १
वृष	कन्या	चित्रा २	५,१०,१५	शनिवार	हस्त	वृष २
मिथुन	कुम्भ	शत. ३	२,७,१२	सोमवार	स्वाती	कर्क ४
कर्क	सिंह	मघा. ३	२,७,१२	बुधवार	अनु0	तुला ७
सिंह	मकर	धनि0 १	३,८,१३	शनिवार	मूल	मकर १०
कन्या	मिथुन	आर्द्रा. ३	५,१०,१५	शनिवार	श्रवण	मीन १२
तुला	धनु	मूल. २	४,९,१४	गुरूवार	शत.	कन्या ६
वृश्चिक	वृष	रोहि0४	१,६,९	शुक्रवार	रेव.	वृश्चिक ८
धनु	मीन	पू.भा.३	३,८,१३	शुक्रवार	भर.	धनु ९
मकर	सिंह	मघा. ४	४,९,१४	भौमवार	रोहि.	कुम्भ ११
कुम्भ	धनु	मूल. ४	३,८,१३	गुरूवार	आर्द्रा	मिथुन३
मीन	कुम्भ	पू.भा.३	५,१०,१५	शुक्रवार	आश्ले.	सिंह ५

योगिनी वास ज्ञान –

नवभूम्य: शिववह्नयोऽक्षविश्वेऽर्ककृता: शक्ररसास्तुरङ्गतिथ्य: ।

द्विदिशोऽमावसवश्च पूर्वत: स्युस्तिथय: सम्मुखवामगा न शस्ता: ।।

पूर्वादि दिशाओं में क्रम से प्रतिपदा और नवमी को पूर्व में, तृतीया और एकादशी को अग्निकोण में, पंचमी-त्रयोदशी को दक्षिण में, चतुर्थी – द्वादशी को नैऋत्य में, षष्ठी - चतुर्दशी को पश्चिम में, सप्तमी – पूर्णिमा को वायव्य में, द्वितीया – दशमी को उत्तर में तथा अमावस्या -अष्टमी को ईशान कोण में योगिनी का निवास होता है। यात्रा में ये तिथियॉ योगिनी सम्मुख और वामभाग में शुभ नहीं होती।

कालपाश विचार –

कौबेरीतो वैपरीत्येन कालो वारेऽर्काद्ये सम्मुखेतस्य पास: ।

रात्रावेतौ वैपरीत्येन गण्यौ यात्रा युद्धे सम्मुखे वर्जनीयौ ।।

रवि आदि वारों में उत्तर दिशा से विपरीत क्रम से काल का निवास रहता है। यथा – रविवार को उत्तर, सोमवार को वायव्य, मंगलवार को पश्चिम, बुधवार को नैर्ऋत्य, वृहस्पतिवार को दक्षिण, शुक्रवार को अग्निकोण एवं शनिवार को पूर्वदिशा में काल का वास रहता है। काल के सामने की दिशा में पाश का वास रहता है। रात में काल और पास विपरीत दिशा में वास करते है। ये दोनों युद्ध और यात्रा में सम्मुख हो तो वर्जित है।

काल पाश बोधक सारिणी –

		रवि	सोम	मंगल	बुध	गुरू	शुक्र	शनि
दिन में	काल	उत्तर	वायव्य	पश्चिम	नैर्ऋत्य	दक्षिण	आग्नेय	पूर्व
	पाश	दक्षिण	आग्नेय	पूर्व	ईशान	उत्तर	वायव्य	पश्चिम
रात में	काल	दक्षिण	आग्नेय	पूर्व	ईशान	उत्तर	वायव्य	पश्चिम
	पाश	उत्तर	वायव्य	पश्चिम	नैर्ऋत्य	दक्षिण	आग्नेय	पूर्व

परिघ दण्ड विचार –

भानि स्थाप्यान्याब्धिदिक्षु सप्तसप्तानलर्क्षत: ।

वायव्याग्नेयदिक्संस्थं परिघं नैव लङ्घयेत् ।।

कृत्तिका नक्षत्र से आरम्भ करके ७-७ नक्षत्र पूर्वादि ४ दिशाओं में स्थापित करें और उसमें वायव्य और अग्निकोण में लगी हुई रेखा को कालदण्ड कहते हैं। यात्रा में कालदण्ड का उल्लंघन करना सर्वथा निषिद्ध है।

परिहार –

अग्नेर्दिशं नृपं इयात्पुरूहूतदिग्भैरेवं प्रदक्षिण गता विदिशोऽथ कृत्ये ।
आवश्यकेऽपि परिघं प्रविलङ्घ्य गच्छेदच्छूलं विहाय यदि दिक्तनुशुद्धिरस्ति ॥

राजा को अग्निकोण की यात्रा पूर्व के नक्षत्रों कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु,पुष्य, आश्लेषा, में नैर्ऋत्य कोण की यात्रा दक्षिण के नक्षत्रों में मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा में वायव्य कोण की यात्रा पश्चिम के नक्षत्रों अनुराधा, ज्येष्ठा , मूल,पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा, अभिजित, श्रवण में तथा ईशान कोण की यात्रा उत्तर के नक्षत्रों में धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपदा, उत्तराभाद्रपदा , रेवती, अश्विनी, भरणी में करनी चाहिए । कार्य आवश्यक हो तो परिघदण्ड का उल्लंघन करके शूल को छोड़कर यदि दिग्द्वार लग्न शुद्ध हो तो यात्रा की जा सकती है।

प्रश्न लग्न से यात्राभंग योग –

विधुकुजयुतलग्ने सौरिदृष्टेऽथ चन्द्रे
मृतिभमदनसंस्थे लग्नगे भास्करेऽपि।
हिबुकनिधनहोराद्यूनगे चापि पापे
सपदि भवति भङ्गः प्रश्नकर्तुस्तदानीम् ॥

प्रश्न काल में चन्द्रमा और मंगल से युत लग्न को शनि देखता हो, प्रश्न लग्न से सप्तम – अष्टम भाव में चन्द्रमा तथा लग्न में सूर्य हो, चतुर्थ, अष्टम, लग्न और सप्तम भाव में पापग्रह गये हों तो प्रश्न कर्ता का प्रश्न भंग हो जाता है। अर्थात् युद्ध में पराजय होती है अथवा यात्रा में सफलता नहीं मिलती है।

जीवपक्षादि नक्षत्र फल –

मार्तण्डे मृतपक्षगे हिमकरश्चेज्जीवपक्षे शुभा।
यात्रा स्याद्विपरीतगे क्षयकरी द्वौ जीवपक्षे शुभा॥
ग्रस्तर्क्षे मृतपक्षतः शुभकरं ग्रस्तात्तथा कर्तरी।
यायीन्दुः स्थितिमान् रविर्जयकरौ तौ द्वौ तयोर्जीवगौ ॥

सूर्य यदि मृतसंज्ञक नक्षत्रों में हो तथा चन्द्रमा जीवपक्ष संज्ञक नक्षत्रों में हो तो यात्रा शुभकारक होती है । यदि दोनों विपरीत स्थिति में चन्द्रमा मृतपक्ष में और सूर्य जीवपक्ष में हो तो यात्रा अशुभ कारक होती है। यदि दोनों जीवपक्ष में हो तो यात्रा शुभ होती है। मृतसंज्ञक नक्षत्रों की अपेक्षा ग्रस्त संज्ञक नक्षत्र शुभ होते हैं तथा ग्रस्त संज्ञक नक्षत्रों की अपेक्षा कर्त्तरी संज्ञक नक्षत्र शुभ होते हैं।चन्द्रमा यायी तथा सूर्य स्थायी होता है। यदि रवि – चन्द्र दोनों ही जीव पक्ष में स्थित हो तो उन दोनों यायी (यात्रा करने वाले या युद्ध में आक्रमण करने वाले) तथा स्थायी (जो स्थिर है अथवा जिस पर आक्रमण किया गया हो) दोनों की विजय होती है, अर्थात् सन्धि होती है।

स्थायी और यायी का विचार प्रमुख रूप से युद्ध यात्रा के लिए तथा किसी प्रकार के वाद – विवाद के प्रसंग में किया जाता है। जीव – मृत आदि का फल से आशय यह है कि वादी – प्रतिवादी के सूचक ग्रह क्रम से चन्द्रमा और सूर्य है। जब दोनों जीव पक्ष में होंगे तो दोनों पक्ष समान होंगे अर्थात् सन्धि होगी यदि चन्द्र और सूर्य दोनों ही मृत पक्ष में हो तो दोनों का नाश होता है। तथा जीवपक्ष में चन्द्रमा तथा मृतपक्ष में सूर्य हो तो यायी की, इससे विपरीत स्थिति सूर्य जीवपक्ष में चन्द्रमा मृत पक्ष में हो तो स्थायी की विजय होती है। ग्रस्त और कर्त्तरी योगों में अपेक्षाकृत कर्त्तरी योग शुभ होता है।

अकुल – कुल - कुलाकुल संज्ञा विचार –

स्वात्यन्तकाहिवसुपौष्णकरानुराधा –
दित्यध्रुवाणि विषमास्तिथयोऽकुलाः स्युः।
सूर्येन्दुमन्दगुरवश्च कुलाकुला ज्ञो
मूलाम्बूपेशविधिभं दशषड्द्वितिथ्यः ॥
पूर्वाश्वीज्यमघेन्दुकर्णदहनद्वीशेन्द्रचित्रास्तथा
शुक्रारौ कुलसंज्ञकाश्च तिथयोऽर्काष्टेन्द्रवेदैमिताः।
यायी स्यादकुले जयी च समरे स्थायी च तद्वत्कुले
सन्धिः स्यादुभयोः कुलाकुलगणे भूमीशयोर्युध्यतोः ॥

स्वाती, भरणी, आश्लेषा, धनिष्ठा, रेवती, हस्त, अनुराधा, पुनर्वसु और ध्रुवसंज्ञक (तीनों उत्तरा रोहिणी) नक्षत्रों की १,३,५,७९,११,१३,१५ विषम तिथियों एवं सूर्य, चन्द्र , शनि और गुरूवासरों की अकुल संज्ञा होती है।

बुधवार , मूल, शतभिषा, आर्द्रा, अभिजित् नक्षत्रों एवं १०,६,२ तिथियों की कुलाकुल संज्ञा होती है।

तीनों पूर्वा, अश्विनी, पुष्य, मघा, मृगशिरा, श्रवण, कृत्तिका, विशाखा, ज्येष्ठा, चित्रा नक्षत्रों शुक्र और मंगलवासरों एवं १२,८,१४,४ तिथियों की कुल संज्ञा होती है।

अकुल संज्ञक तिथि – वार- नक्षत्रों में वाद – विवाद युद्ध आदि करने से यायी (वादी, आक्रामक) की विजय होती है, कुल संज्ञक तिथिवार नक्षत्रों में स्थायी (स्थिर, जिस पर आक्रमण होता है) की विजय होती है। कुलाकुल गणों में युद्ध करने वाले दोनों राजाओं की सन्धि होती है।

कुल, अकुल और कुलाकुल गणों का उपयोग प्राचीनकाल में युद्धादि कार्यों में किया जाता था। आजकल इनका उपयोग मात्र मुकदमा एवं वाद – विवाद में किया जाता है। अकुलसंज्ञक तिथि वार नक्षत्रों में मुकदमा दायर करने से मुकदमा करने वालो की विजय होती है। इनको आप चक्र से भी समझ सकते है।

संज्ञा	नक्षत्र	तिथि	वार	परिणाम
अकुल	भरणी, रोहिणी, पुनर्वसु, आश्लेषा, उ.फा., हस्त, स्वाती, अनुराधा, उ0षा0, धनिष्ठा, उ.भा., रेवती	१,३,५,७,९,११,१३,१५	रविवार,सोम गुरूवार शनिवार	यायी की विजय
कुलाकुल	आर्द्रा, मूल,अभिजित्, शतभिषा	२,६,१०	बुधवार	यायी और स्थायी की सन्धि
कुल	अश्विनी, कृत्तिका, मृगशीर्ष, पुष्य, मघा, पू0फा0, चित्रा, विशाखा, ज्येष्ठा, पू0षा0, श्रवण, पू0भा0	४,८,१२,१४	भौमवार शुक्रवार	स्थायी की विजय

पथिराहुचक्रम् –

स्युधर्मे दस्रपुष्योरगवसुजलपद्वीशमैत्राण्यर्थे
याम्याजाङ्घ्रीन्द्रकर्णादितिपितृपवनोडून्यथो भानि कामे।
वह्नयार्द्राबुध्न्यचित्रानिर्ऋतिविधिभगाख्यानि मोक्षेऽथ रोहि –
ण्याप्येन्द्वन्त्यर्क्षविश्वार्यमभदिनकरर्क्षाणि पथ्यादिराहौ ।।

पथि राहुचक्र के धर्ममार्ग में अश्विनी, पुष्य,आश्लेषा,धनिष्ठा, शतभिषा, विशाखा एवं अनुराधा नक्षत्र, अर्थ मार्ग में भरणी, पूर्वभाद्रपद, ज्येष्ठा, श्रवण, पुनर्वसु, मघा और स्वाती नक्षत्र, काममार्ग में कृत्तिका, आर्द्रा, उत्तरभाद्रपद, चित्रा, मूल, अभिजित् और पूर्वाफाल्गुनि नक्षत्र, तथा मोक्ष मार्ग में रोहिणी, पूर्वाषाढा, मृगशिरा, रेवती, उत्तराषाढ़ा, उत्तराफाल्गुनि तथा हस्त नक्षत्र होते है।

विशिष्ट यात्रा में पथि राहुचक्र का विचार किया जाता है। २८ नक्षत्रों को धर्म - अर्थ – काम - मोक्ष इन चार मार्गों में विभक्त कर दिया गया है। इन चारों भागों में सूर्य और चन्द्रमा की स्थिति के अनुसार शुभाशुभ का विचार किया जाता है।

मार्ग	नक्षत्र
धर्म	अश्विनी, पुष्य, आश्लेषा, विशाखा, अनुराधा, धनिष्ठा, शतभिषा
अर्थ	भरणी, पुनर्वसु, मघा, स्वाती, ज्येष्ठा, श्रवण, पू0भा0
काम	कृत्तिका, आर्द्रा, पू.फा., चित्रा, मूल, अभिजित्, उ.भा.
मोक्ष	रोहिणी, मृगशिर्ष, उ.फा., हस्त, पू.षा., उ.षा., रेवती

पथिराहु फल –

धर्मगे भास्करे वित्तमोक्षे शशी वित्तगे धर्ममोक्षस्थित: शस्यते।
कामगे धर्ममोक्षार्थग: शोभनो मोक्षगे केवलं धर्मग: प्रोच्यते।।

पथिराहु चक्र में सूर्य यदि धर्ममार्ग में स्थित हो तथा चन्द्रमा धन मार्ग या मोक्ष मार्ग में स्थित हों अथवा धनमार्ग में सूर्य स्थित हों तथा धर्म – मोक्ष मार्ग में चन्द्रमा हो तो शुभ होता है। काम मार्ग में सूर्य तथा धर्म और मोक्ष मार्ग में चन्द्रमा हों अथवा मोक्ष मार्ग में सूर्य एवं केवल धर्ममार्ग में चन्द्रमा हो तो शुभ फल कहा गया है।

बोध प्रश्न –

१. वृष राशि के लिए कौन सा चन्द्रमा घातक होता है –

क. नवम ख. पंचम ग. दशम घ. सप्तम

२. घात चन्द्र में मघा नक्षत्र का कौन सा चरण त्याज्य है –

क. प्रथम ख. द्वितीय ग.तृतीय घ. चतुर्थ

३. रिक्ता संज्ञक तिथि हैं –

क. १,११,६ ख. २,७,१२ ग. ९,४,१४ घ. ५,१०,१५

४. कर्क राशि के वालों के लिए घात संज्ञक तिथि है -

क. नन्दा ख. भद्रा ग. जया घ. रिक्ता

५. मेष राशि के लिये कौन सा वार घात संज्ञक है –

क. रविवार ख. सोमवार ग. मंगलवार घ. बुधवार

६. मिथुन राशि वालों के लिये कौन सा नक्षत्र घात संज्ञक है –

क. हस्त ख. चित्रा ग. स्वाती घ. विशाखा

3.4 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि घात का अर्थ होता है – अशुभ। मेषादि 12 राशियों के लिए क्रम से प्रथम, पंचम, नवम, द्वितीय, षष्ठ, दशम, तृतीय, सप्तम, चतुर्थ, अष्टम, एकादश एवं द्वादश चन्द्रमा घातक होता है। यथा मेष राशिवालों के लिए मेषस्थ, वृष राशि – वालों के लिए पंचम कन्या राशिगत, मिथुन राशिवालों के लिए द्वितीय कर्क राशिगत चन्द्रमा घातक होता है। इसी प्रकार सभी राशियों में समझना चाहिए। मेषादि राशियों में क्रम से कृत्तिका प्रथम पाद, चित्रा का द्वितीय,शतभिष का ३ , मघा का तृतीय, धनिष्ठा का प्रथम, आर्द्रा का तृतीय, मूल का द्वितीय, रोहिणी का चतुर्थ, पूर्वाभाद्रपदा का तृतीय, मघा का चतुर्थ, मूल का चतुर्थ, तथा पूर्वाभाद्रपदा का तृतीय चरण त्याज्य कहा गया है। वृष – कन्या और मीन राशि वालों के लिए पूर्णा (५,१०,१५) तिथियॉ, मिथुन, कर्क राशि वालों के लिए भद्रा (२,७,१२) तिथियॉ, वृश्चिक और मेष राशि के लिए नन्दा (१,६,११) तिथियॉ मकर और तुला के लिए, रिक्ता

(४,९,१४) तिथियॉ, धनु , कुम्भ और सिंह राशि वालों के लिए जया (३,८,१३) तिथियॉ घात संज्ञक होती है। ये घात तिथियॉ यात्रा के लिए अशुभ होती है। मकर राशि के लिए मंगलवार, वृष-सिंह-कन्या राशियों के लिए शनिवार, मिथुन के लिए सोमवार, मेष राशि के लिए रविवार, कर्क राशि के लिए बुधवार, धनु – वृश्चिक और मीन राशि के लिए शुक्रवार तथा कुम्भ और तुला राशियों के लिए गुरूवार, घातवार होते हैं। ये शुभ नहीं होते है। इसी प्रकार नक्षत्र घात एवं लग्न घात भी होता है। अत: इस इकाई के अध्ययन से आपने घात को सम्यक् रूप से जान लिया होगा।

3.5 पारिभाषिक शब्दावली

भू – १

पंचांग – ५

मेषस्थ – मेष राशि में स्थित

वेद - ४

राशिगत – राशि में गये हुए

रूप – १

मन्द – शनि

पूर्णा – ५,१०,१५

भद्रा – 2,7,12

सूर्यादिवार – रविवार, सोमवार, मंगलवार आदि

ऋण – कर्ज

3.6 बोधप्रश्नों के उत्तर

1. ख
2. ग
3. ग
4. ख
5. क
6. ग

3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

मुहूर्त्तपारिजात - चौखम्भा विद्याप्रकाशन

मुहूर्त्तचिन्तामणि – चौखम्भा विद्याप्रकाशन

वृहज्ज्योतिसार – चौखम्भा विद्याप्रकाशन

ज्योतिष सर्वस्व – चौखम्भा विद्याप्रकाशन

वीरमित्रोदय – चौखम्भा विद्याप्रकाशन

3.8 सहायक पाठ्यसामग्री

1. जातक पारिजात
2. फलदीपिका
3. मुहूर्त्तचिन्तामणि – पीयूषधारा
4. जातकतत्व
5. भारतीय कुण्डली विज्ञान

3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. घात से आप क्या समझते है । स्पष्ट कीजिये।
2. यात्रा में घात विचार का चित्रण कीजिये।
3. कालपाश, परिघदण्ड, अकुल कुलाकुल का वर्णन कीजिये ।

इकाई - 4 यात्रा में शकुन निर्णय

इकाई की संरचना

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 शकुन परिचय
4.4 यात्रा में शकुन निर्णय
बोध प्रश्न
4.5 सारांश
4.6 पारिभाषिक शब्दावली
4.7 बोध प्रश्नों के उत्तर
4.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

बी0ए0जे0वाई 202 से सम्बन्धित यह चौथी इकाई है। इस इकाई का शीर्षक 'यात्रा में शकुन निर्णय' है। इससे पूर्व की इकाईयों में आपने तिथि – नक्षत्र शुद्धि , वार एवं लग्न शुद्धि विचार एवं घात विचार का अध्ययन कर लिया है यहॉ अब शकुन का अध्ययन करने जा रहे हैं।

शकुन का अर्थ होता है – शुभ । यात्रा में शकुन विचार से तात्पर्य यात्रा करने के दौरान शुभ संकेतादि से है।

शकुन शुभ भी होता है तथा अशुभ भी। अत: शुभाशुभ शकुन का सम्यक् विश्लेषण इस इकाई में आप करने जा रहे है।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप –

- ❖ शकुन क्या है, इसे समझा सकेंगे।
- ❖ यात्रा में शकुन के महत्व को समझ लेंगे ।
- ❖ शकुन का सम्यक् विश्लेषण कर सकेंगे।
- ❖ शकुन का शुभाशुभ विचार कर सकेंगे।
- ❖ शकुन परिहार का बोध कर लेंगे ।

4.3 यात्रा में शकुन निर्णय

शकुन विचार –

चेतोनिमित्तशकुनै: खलु सुप्रशस्तै
र्ज्ञात्वा विलग्नबलमुर्व्यधिप: प्रयाति।
सिद्धिर्मवेदथ पुन: शकुनादितोऽपि
चेतोविशुद्धिरधिका न च तो विनेयात्॥

मन की प्रसन्नता, अंग लक्षणादि शुभ निमित्तों तथा पशु – पक्षी एवं आकाश जन्य शुभ शकुनों के साथ – साथ लग्न के बल का ज्ञान कर जो राजा प्रस्थान करता है उसकी अभीष्ट सिद्धि होती है। शकुन आदि की अपेक्षा मन की शुद्धि अधिक महत्वपूर्ण होती है। यदि यात्रा काल में मन की प्रसन्नता न हो तो यात्रा नहीं करनी चाहिये।

निषिद्धकाल –

व्रतबन्धनदेवप्रतिष्ठाकरपीडोत्सवसूतकासमाप्तौ ।
न कदापि चलेदकालविद्युदधनवर्षातुहिनेऽपि सप्तरात्रम्॥

यज्ञोपवीत संस्कार में, देवालय में प्राणप्रतिष्ठा के समय, विवाहोत्सव में, जन्म सम्बन्धी सूतक और मृत्यु सम्बन्धी सूतक के समाप्त होने के पूर्व यात्रा नहीं करनी चाहिये।

शुभ शकुन –

विप्राश्वेभफलान्नदुग्धदधिगोसिद्धार्थपद्माम्बरं
वेश्यावाद्यमयूरचाषनकुला बद्धैकपश्वामिषम्।
सद्वाक्यं कुसुमेक्षुपूर्णकलशच्छत्राणि मृत्कन्यका
रत्नोष्णीर्षासतोक्षमद्यससुततस्त्रीदीप्तवैश्वानराः ।।
आदर्शाञ्जनधौतवस्त्ररजका मीनार्ज्यासिंहासनं
शावं रोदनवर्जितं ध्वजमधुच्छागास्त्रगोरोचनम्।
भारद्वाजनृयानवेदनिनदा मांगल्यगीताङ्कुशा
दृष्टः सत्फलदाः प्रयाणसमये रिक्तौ घटः स्वानुगः ।।

ब्राह्मण (एक से अधिक ब्राह्मण), घोड़ा, हाथी, फल, अन्न, दूध, दही, गाय, सरसों , कमल, वस्त्र, वेश्या, वाद्य, मयूर, नीलकण्ठ, नेवला, बँधा हुआ पशु, मॉस, शुभवाणी, पुष्प, ईख जल से भरा कलश, छत्र, मिट्टी, कन्या, रत्न, पाडी, श्वेत बैल, शराब, पुत्रसहित स्त्री, प्रज्वलित अग्नि, दर्पण, काजल, धुले वस्त्रों के साथ धोबी, मछली, सिंहासन,रूदन रहित शव (मृत शरीर), पताका, शहद, बकरा, अस्त्र, गोरोचन, भारद्वाज (चातक) पक्षी, पालकी, वेदध्वनि, मांगलिक गीत, अंकुश तथा खाली घड़ा यात्री के पीछे की तरह जाता हुआ यदि यात्रा के समय दिखलाई पड़े तो शुभफलदायक होता है।

अशुभ शकुन -

बन्ध्या चर्म तुषास्थि सर्पलवणाङ्गारेन्धनक्लीबविट्
तैलोन्मत्तवसौषधारिजटिलप्रव्राटतृणव्याधिताः ।
नग्नाभ्यक्तविमुक्तकेशपतिता व्यंगक्षुधार्ता असृक्
स्त्रीपुष्पं सरठः स्वगेहदहनं मार्जारयुद्धं क्षुतम् ।।
काषायी गुडतक्रपंकविधवाकुब्जाः कुटुम्बे कलि –
र्वस्त्रादेः स्खलनं लुलायसमरं कृष्णानि धान्यानि च ।।
कार्पासं वमनं च गर्दभरवो दक्षेऽतिरूट् गर्भिणी
मुण्डार्द्राम्बरदुर्वचोऽन्धबधिरोदक्यो न दृष्टाः शुभाः ।।

बन्ध्या स्त्री, चमड़ा, भूसी, हड्डी , नमक, आग का अंगारा, इन्धन , नपुंसक,विष्ठा, तेल, पागल, चर्बी, औषधी, शत्रु, जटाधारी, सन्यासी, तृण, रोगी, वस्त्रहीन मानव, तेल उबटन लगाया हुआ व्यक्ति, विखरे बालों वाला स्त्री, पापी व्यक्ति, विकलांग, भूख से व्याकुल मनुष्य, रक्त, स्त्री का

रजस्राव, गिरगिट , अपने घर का जलना, बिल्ली का युद्ध, छींक, काषाय वस्त्र धारण किये हुए मनुष्य, गुड़, मट्ठा, कीचड़, विधवा स्त्री, कुबड़ा , पारिवारिक कलह, शरीर से वस्त्र - छत्र आदि का गिरना, भैसों का युद्ध, काले रंग के अन्न, रूई, उल्टी, दाहिनी और गधे का शब्द, अधिक क्रोधी प्राणी, गर्भिणी स्त्री, मुण्डित व्यक्त, गीला वस्त्र, अपशब्द का प्रयोग, अन्धा, बहरा, तथा इन सभी का यात्रा के समय दिखलाई पड़ना शुभ नहीं होता है। ये अशुभ शकुन कहे गये है।

अन्य शकुन –

गोधाजाहकसूकराहिशशकानां कीर्तनं शोभनं
नो शब्दो न विलोकनं च कपिऋक्षाणामतो व्यत्ययः।
नद्युत्तारभयप्रवेशसमरे नष्टार्थसंवीक्षणे
व्यत्यस्ताः शकुना नृपेक्षणविधौ यात्रोदिताः शोभनाः ॥

गोह, जाहक (अंगसंकोची पशु), सर्प एवं खरगोश का नामोच्चारण ही शुभ होता है, परन्तु इन का शब्द या दर्शन यात्रा के समय शुभ नहीं होता है। बन्दर और भालू का गोह आदि से विपरीत फल होता है, अर्थात् बन्दर और भालू का शब्द (बोलना) और दर्शन होना शुभ तथा नामोच्चारण अशुभ होता है।

नदी पार करते समय, भय के उपस्थित होने पर या भय से भागते समय, गृहप्रवेश, युद्ध तथा नष्ट वस्तु के अन्वेषण के समय विपरीत शकुन ही शुभ अर्थात् अशुभ शकुन शुभ फलदायक तथा शुभ शकुन अशुभ फलदायक होते हैं तथा राजा के दर्शन सम्बन्धी कार्यों में यात्रा प्रसंग में बताये गये शुभ शकुन ही शुभदायक होते हैं।

वामांगे कोकिला पल्ली पोतकी सूकरी रला।
पिंगला छुच्छुका श्रेष्ठाः शिवाः पुरूषसंज्ञिताः ॥

कोयल, छिपकली, पोतकी, सूकरी रला (एक प्रकार का पक्षी) , पिंगला भैरवी, छछुन्दर, श्रृंगाली (गीदड़ी) तथा पुरूष संज्ञक पक्षी (कबूतर, खंजन, तित्तिर, हंसा आदि) यात्रा के समय वाम भाग में शुभ माने जाते है।

छिक्करः पिक्ककको भासः श्रीकण्ठो वानरो रूरूः।
स्त्रीसंज्ञकाः काकऋक्षश्वानः स्युर्दक्षिणाः शुभाः ॥

छिक्कर मृग, हाथी का बच्चा, भास पक्षी, मयूर, बन्दर, रूरूमृग, स्त्री संज्ञक पक्षी कौवा, भालू तथा कुत्ता यात्रा के समय दक्षिण भाग में शुभ होते हैं।

शकुन में विशेष –

प्रदक्षिणगताः श्रेष्ठा यात्रज्ञयां मृगपक्षिणः ।
ओजा मृगा व्रजन्तोऽतिधन्या वामे खरस्वनः ॥

यात्रा के समय दक्षिण भाग में जाते हुए मृग और पक्षी शुभ फलदायक होते हैं। यदि विषम संख्यक मृग हों तो अत्यन्त शुभ होते है। वाम भाग में गधे का शब्द सुनाई पड़े तो वह भी यात्रा में शुभ होता है।

अशुभ शकुनों के परिहार –

आद्येऽपशकुने स्थित्वा प्राणानेकादश व्रजेत्।
द्वितीये षोडश प्राणांस्तृतीये न क्वचिद्व्रजत्॥

यात्रा के समय यदि प्रथम बार अपशकुन दिखलाई पड़े तो ११ प्राण (ग्यारह बार श्वास आने तक जितना समय हो उतने समय) तक रूक कर यात्रा करें। यदि द्वितीय बार अपशकुन दिखाई पड़े तो १६ प्राण तक रूक कर यात्रा करें। यदि तृतीय बार अपशकुन का दर्शन हो तो कहीं भी नहीं जाना चाहिये।

एकदिवसीय यात्रा में विशेष –

यदि राजा एक नगर से यात्रा आरम्भ कर उसी दिन दूसरे नगर में प्रविष्ट हो जाता है तो इस प्रकार की एक दिवसीय यात्रा में नक्षत्रशूल-वारशूल, सम्मुख शुक्र एवं योगिनी आदि का विचार पुरूष को नहीं करना चाहिए।

यदि राजा का यात्रारम्भ और अभीष्ट स्थान में प्रवेश दोनों एक ही दिन में सम्पन्न हो जाता हो तो वहॉ केवल प्रवेशकाल का ही विचार विद्वानों को करना चाहिये यात्राकाल का नहीं।

गृह में प्रवेश करते समय जो तिथि - नक्षत्र वार हों उनसे नवम तिथि नक्षत्र वारों में यात्रा तथा यात्राकालिक तिथि - नक्षत्र - वारों से नवमम तिथि नक्ष्ज्ञत्र वारों में पुन: गृह में प्रवेश कथमपि नहीं करना चाहिये।

यात्रा में निषिद्ध काल -

यज्ञोपवीत संस्कार में , देवालय में प्राणप्रतिष्ठा के समय, विवाहोत्सव में, जन्म सम्बन्धी सूतक और मृत्यु सम्बन्धी सूतक के समाप्त होने के पूर्व यात्रा नहीं करनी चाहिये।

भूपाल वल्लभ में कहा गया है कि गर्गाचार्य के मत से यात्रा में उष:काल या सुबह का समय विशेष शुभ होता है । वृहस्पति जी के अनुसार तथा शकुन अंगिरा के मत से मन का उत्साह तथा विद्वान या श्रेष्ठ पुरूष का आदेश ही यात्रा में विशेष विचारणीय है - यथा

उष: प्रशस्यते गर्ग: शकुनं च वृहस्पति: ।
अंगिरा मन उत्साहो विप्रवाक्यं जनार्दन: ॥

काक शब्द शकुन विचार –

काक अर्थात् कौवा का शब्द सुनकर अपने पैरों से छाया नापकर उसमें १३ और जोड़ दें एवं ६ का भाग दे, शेष १ बचें तो लाभ, २ में खेद, ३ में सुख, ४ में भोजन, ५ में धन,

तथा शून्य शेष बचे तो अशुभ फल जानना चाहिये।

पिंगल शब्द शकुन विचार -

यात्रा में किल्किल शब्द होने से उल्लास, चिल्पित शब्द होने से भोजन की प्राप्ति, खिट – खिट शब्द होने से बंधन और कुर्कुर शब्द होने से महाभय होता है।

छींक के अनुसार शकुन विचार –

छींक के शब्द को सुनकर अपने पैर की छाया नाप कर उसमें १३ और जोड़ दे, ८ से भाग दे, जो शेष रहे उसका फल इस प्रकार है - १ शेष बचे तो लाभ, २ से सिद्धि, ३ से हानि, ४ से शोक, ५ से भय, ६ से लक्ष्मी, ७ से दु:ख और ८ शेष होने पर निष्फल समझना चाहिये।

पुन: दिशा के अनुसार छिक्क का शकुन विचार करते है। पूर्व दिशा की छींक अशुभ है। आग्नेय कोण की छींक शोक और दु:ख देती है। दक्षिण की कष्ट देती है, नैर्ऋत्य कोण की छींक शुभ है। पश्चिम दिशा की छींक मधुर भोजन कराती है, वायव्य धन देती है। उत्तर की क्लेश प्रदान करती है ईशान की शुभ , एवं अपनी छींक अधिक भयदायक होती है , उपर की छींक शुभ है। मध्य की छींक अधिक भयदायक होती है। आसन पर बैठते समय, सोते समय, दान के समय भोजन करते समय, बाई ओर या पीछे की छींक शुभ होती है।

छिपकिली के गिरने और गिरगिट के चढ़ने का फल –

स्थान	फल	स्थान	फल	स्थान	फल	स्थान	फल
शिरसि	राज्यलाभ	कण्ठ में	शत्रुनाश	दोनों हाथ पर	वस्त्र लाभ	वामपाद	नाश
नासाग्रे	व्याधि	दोनों जंघो पर	शुभ	वाम दक्षिण बन्ध	कीर्तिविनाश	अधरोष्ठ	ऐश्वर्य
वामभुजे	राजभिति	दाहिने	मनसन्ताप	दक्षिणपादे	गमन	द.भुजा	नृपतुल्यता
जानुद्वये	शुभासामन	मणिबन्ध	धननाश	उत्तर ओष्ठ पर	धननाश	पृष्ठ भाग	बुद्धिनाश
कटिभागे	अश्वलाभ	केशान्त	मरण	दोनों नेत्र पर	धन प्राप्ति	नासिका	बहु धन
गुल्फयो:	धनलाभ	भ्रुवमध्य	राज्य समक्ष	उदर पर	भूषण लाभ	मुख	मिष्ठान्न प्राप्ति
ललाटे	बन्धुदर्शन	वाम कर्ण	बहुलाभ	स्कन्ध	विजय	पादमध्य	धननाश
दक्षिणकर्णे	आयुवृद्धि	स्तनद्वय	दुर्भाग्य	हृदय	धन लाभ	पादान्ते	मरण कष्ट

चक्र द्वारा इसका शुभाशुभ फल को समझना चाहिये।

यात्रा में छींक के अनुसार शुभाशुभ चक्र -

पूर्व	अग्निकोण	दक्षिण	नैर्ऋत्य	पश्चिम	वायव्य	उत्तर	ईशान	वार
विघ्न	विलंब	उत्तम	मृत्यु भय	शुभ	आगमन	लाभ	विलंब	रविवार
लाभ	विलंब	मृत्युभय	लाभ	शुभ	उत्तम	अल्पलाभ	विलंब	सोमवार
मित्र आगमन	लाभ	विलंब	मृत्युभय	लाभ	विदेश यात्रा	सुख	लाभ	मंगलवार
सिद्धि	शारीरिक कष्ट	अरिष्ट	विलंब	मृत्यु	धननाश	चोरभय	कष्ट	बुधवार
चिन्ता	वार्ता	विलंब	उत्तम	चोरभय	मृति	कष्ट	वार्ता	गुरूवार
धनादि	कलह	मित्रागमन	धनलाभ	उत्तम	विलंब	मरण	कलह	शुक्रवार
धननाश	कष्ट	वार्ता	मित्रआगमन	उत्तम	शुभ	विलंब	दु:खदूर	शनिवार

अन्य अशुभ शकुन -

दवा के लिए जाता हुआ मनुष्य, कालाधान्य, कपास, सूखे तृण और सुखा हुआ गोबर, प्रस्थान के समय यदि सामने से आवे तो यात्रा में अशुभ जानना चाहिए।

ईंधन जलती हुई आग, गुड़, घी, शरीर में तेल लगायें, मलिन, मन्द और नंगा मनुष्य प्रस्थान के समय सम्मुख आवे तो अशुभ शकुन समझना चाहिये।

बिखरे बालों वाला मनुष्य, रोगी, गेरूआ वस्त्र पहने हुए, उन्मत्त कथरी लिए हुए, पापी, दरिद्र, नपुंसक प्रस्थान के समय सामने आये तो अशुभ जानना चाहिये।

लोह खण्ड, कीचड़, चर्म, केश बॉधता हुआ मनुष्य, नि:सार पदार्थ और खली सामने आने से प्रस्थान के समय अशुभ जाननी चाहिए।

चाण्डाल का मुर्दा, राजबन्धन का पालक, वध करने वाला, पापी और गर्भवती स्त्री के भी प्रस्थान के समय सामने आने पर अशुभ शकुन जानना चाहिए।

भुसी, भस्म, खोपड़ी, टूटै एवं खाली बर्तन, मारा हुआ सारंग पक्षी आदि का प्रस्थान के समय सम्मुख आना अशुभ है।

बोध प्रश्न –

१. यात्रा के समय यदि चार ब्राह्मणों का दर्शन हो तो –

क. शुभ शकुन होता है। ख. अशुभ शकुन होत है।

ग. शुभाशुभ घ. कोई नहीं

२. निम्न में अशुभ शकुन है –

क. तेल ख. ईन्धन ग. नमक घ. तीनों

३. यात्रा के समय वाम भाग में शुभ माने जाते है –

क. मृग ख. भालू ग. कोयल घ. मयूर

४. रविवार को पूर्व दिशा की यात्रा में छींक आने से क्या फल होता है –

क. लाभ ख. विघ्न ग. मित्र आगमन घ. विलम्ब

५. गुरूवार को पश्चिम दिशा की यात्रा में छींक का फल है –

क. लाभ ख. हानि ग. चोरभय घ. कोई नहीं

4.4 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि मन की प्रसन्नता, अंग लक्षणादि शुभ निमित्तों तथा पशु – पक्षी एवं आकाश जन्य शुभ शकुनों के साथ – साथ लग्न के बल का ज्ञान कर जो राजा प्रस्थान करता है उसकी अभीष्ट सिद्धि होती है। शकुन आदि की अपेक्षा मन की शुद्धि अधिक महत्वपूर्ण होती है। यदि यात्रा काल में मन की प्रसन्नता न हो तो यात्रा नहीं करनी चाहिये। शुभ शकुन के अन्तर्गत ब्राह्मण (एक से अधिक ब्राह्मण), घोड़ा, हाथी, फल, अन्न, दूध, दही, गाय, सरसों , कमल, वस्त्र, वेश्या, वाद्य, मयूर, नीलकण्ठ, नेवला, बँधा हुआ पशु, मॉस, शुभवाणी, पुष्प, ईख जल से भरा कलश, छत्र, मिट्टी, कन्या, रत्न, पाडी, श्वेत बैल, शराब, पुत्रसहित स्त्री, प्रज्वलित अग्नि, दर्पण, काजल, धुले वस्त्रों के साथ धोबी, मछली, सिंहासन,रूदन रहित शव (मृत शरीर), पताका, शहद, बकरा, अस्त्र, गोरोचन, भारद्वाज (चातक) पक्षी, पालकी, वेदध्वनि, मांगलिक गीत, अंकुश तथा खाली घड़ा यात्री के पीछे की तरह जाता हुआ यदि यात्रा के समय दिखलाई पड़े तो शुभफलदायक होता है। बन्ध्या स्त्री, चमड़ा, भूसी, हड्डी , नमक, आग का अंगारा, इन्धन , नपुंसक,विष्ठा, तेल, पागल, चर्बी, औषधी, शत्रु, जटाधारी, सन्यासी, तृण, रोगी, वस्त्रहीन मानव, तेल उबटन लगाया हुआ व्यक्ति, विखरे बालों वाला स्त्री, पापी व्यक्ति, विकलांग, भूख से व्याकुल मनुष्य, रक्त, स्त्री का रजस्राव, गिरगिट , अपने घर का जलना, बिल्ली का युद्ध, छींक, काषाय वस्त्र धारण किये हुए मनुष्य, गुड़, मट्ठा, कीचड़, विधवा स्त्री, कुबड़ा , पारिवारिक कलह, शरीर से वस्त्र - छत्र आदि का गिरना, भैसों का युद्ध, काले रंग के अन्न, रूई, उल्टी, दाहिनी और गधे का शब्द, अधिक क्रोधी प्राणी, गर्भिणी स्त्री, मुण्डित व्यक्त, गीला वस्त्र, अपशब्द का प्रयोग, अन्धा, बहरा, तथा इन सभी का यात्रा के समय दिखलाई पड़ना शुभ नहीं होता है। ये अशुभ शकुन कहे गये है।

4.5 पारिभाषिक शब्दावली

विप्र – ब्राह्मण

कुसुम – फूल

इक्षुरस – गन्ने का रस

दर्पण - आइना

प्रयाणसमये – मृत्यु के समय

अपशकुन – अशुभ संकेत

वामांग – बायॉ अंग

काक – कौवा

सूकर – सूअर

सूर्यादिवार – रविवार, सोमवार, मंगलवार आदि

ऋण – कर्ज

4.6 बोधप्रश्नों के उत्तर

1. क
2. घ
3. ग
4. ख
5. ग

4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

मुहूर्त्तपारिजात - चौखम्भा विद्याप्रकाशन

मुहूर्त्तचिन्तामणि – चौखम्भा विद्याप्रकाशन

वृहज्ज्योतिसार – चौखम्भा विद्याप्रकाशन

ज्योतिष सर्वस्व – चौखम्भा विद्याप्रकाशन

वीरमित्रोदय – चौखम्भा विद्याप्रकाशन

4.8 सहायक पाठ्यसामग्री

1. जातक पारिजात
2. फलदीपिका
3. मुहूर्त्तचिन्तामणि – पीयूषधारा
4. जातकतत्व
5. भारतीय कुण्डली विज्ञान

4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. शुभ शकुनों का वर्णन कीजिये ।
2. अशुभ शकुनों का परिचय देते हुए उसका परिहार लिखिये ।
3. ज्योतिष में शकुन का क्या महत्व है। समझाइये।

इकाई – 5 यात्रा में कृत्याकृत्य विचार

इकाई की संरचना

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 यात्रा में कृत्य विचार
5.4 यात्रा में अकृत्य
बोध प्रश्न
5.5 सारांश
5.6 पारिभाषिक शब्दावली
5.7 बोध प्रश्नों के उत्तर
5.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
5.9 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

ज्योतिष शास्त्र से सम्बन्धित यह पॉचवी इकाई है । इस इकाई का शीर्षक 'यात्रा में कृत्याकृत्य विचार' है। इससे पूर्व की इकाईयों में आपने तिथि – नक्षत्र शुद्धि , वार एवं लग्न शुद्धि घात विचार तथा शकुन विचार का अध्ययन कर लिया है। प्रस्तुत इकाई में आप यात्रा प्रकरण के अन्तर्गत कृत्यात्य का अध्ययन करने जा रहे है।

यात्रा में कृत्याकृत्य से तात्पर्य है कि - यात्रा करने के दौरान क्या करना चाहिये और क्या नहीं करना चाहिये। कृत्य का अर्थ है – करने वाला, अकृत्य का अर्थ है - नहीं करने वाला।

किस समय यात्रा करने से क्या होता है तथा यात्रा आरम्भ करने से पूर्व क्या - क्या विचार करना चाहिये तत्सम्बन्धित अध्ययन आप इस इकाई में करेंगे।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप –

- ❖ यात्रा का आरम्भ किस प्रकार करना चाहिये समझा सकेंगे।
- ❖ कृत्य का क्या अर्थ है, इसे बता सकेंगे ।
- ❖ यात्रा में अकृत्य क्या है, इसे समझ लेंगे ।
- ❖ यात्रा की महत्ता को अपने शब्दों में व्यक्त कर पायेंगे ।
- ❖ यात्रा से सम्बन्धित विविध जानकारी प्राप्त कर लेंगे ।

5.3 यात्रा में कृत्य विचार

यात्रा में कृत्य विचार से पूर्व हमें यह स्मरण रखना चाहिये कि मूल रूप से यात्रा के कौन – कौन से मुहूर्त्त है। यात्रा का मुहूर्त्त है –

अश्विनी, पुनर्वसु, अनुराधा मृगशिरा, पुष्य, रेवती, हस्त, श्रवण और धनिष्ठा ये नक्षत्र यात्रा के लिए उत्तम होता है। रोहिणी, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद, तीनों पूर्वा, ज्येष्ठा, मूल और शतभिषा ये नक्षत्र मध्यम एवं भरणी, कृत्तिका, आर्द्रा, आश्लेषा, मघा, चित्रा, स्वाति और विशाखा ये नक्षत्र निन्द्य है। तिथियों में द्वितीया, तृतीया, पंचमी, सप्तमी, दशमी, एकादशी और त्रयोदशी शुभ बतायी गयी है। यात्रा के लिए वारशूल, नक्षत्रशूल, दिक्शूल , चन्द्रवास और राशि से चन्द्रमा का विचार करना चाहिए कहा भी गया है कि –

दिशाशूल ले आओ वामें राहु योगिनी पीठ।

सम्मुख लेवे चन्द्रमा लावे लक्ष्मी लूट ।।

यात्रा मुहूर्त्त को आप चक्र में भी समझ सकते है –

श्रेणियॉ	नक्षत्र
उत्तम	अश्विनी, पुनर्वसु, अनुराधा मृगशिरा, पुष्य, रेवती, हस्त, श्रवण और धनिष्ठा
मध्यम	रोहिणी, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद, तीनों पूर्वा, ज्येष्ठा, मूल और शतभिषा
निन्द्यनीय	भरणी, कृत्तिका, आर्द्रा, आश्लेषा, मघा, चित्रा, स्वाति और विशाखा

तिथि – २,३,५,७,१०,११,१३ ये तिथियॉ यात्रा में शुभ है।

यात्रा में कृत्य के अन्तर्गत चन्द्रवास एवं उसका फल विचार नितान्त आवश्यक है।

मेष, सिंह और धनु राशि का चन्द्रमा पूर्व दिशा में, वृष, कन्या और मकर राशि का चन्द्रमा दक्षिण दिशा में, तुला मिथुन व कुम्भ राशि का चन्द्रमा पश्चिम दिशा में कर्क, वृश्चिक और मीन राशि का चन्द्रमा उत्तर दिशा में वास करता है।

चन्द्रफल -

सम्मुख चन्द्रमा धन लाभ करने वाला, दक्षिण चन्द्रमा सुख सम्पत्ति देने वाला, पृष्ठ चन्द्रमा शोक सन्ताप देने वाला और वाम चन्द्रमा धननाश करने वाला होता है।

इसी क्रम में भद्रा का विचार –

सम्मुखे मृत्युलोकस्था पाताले च ह्यधोमुखी।
उर्ध्वस्था स्वर्गगा भद्रा सम्मुखे मरणप्रदा।।

मृत्युलोक की भ्रदा सम्मुख, पाताल लोक की अधोमुखी और स्वर्ग की उर्ध्वमुखी होती है। सम्मुख भद्रा मरण करती है।

जो व्यक्ति भद्रा के सम्मुख एक क्रोश भी जाता है, वह पुन: लौट कर आ नहीं पाता है, वैसे ही जैसे समुद्र में जाकर नदियॉ नहीं लौटती।

यात्रा विधि –

उद्धृत्य प्रथमत एव दक्षिणांघ्रि द्वात्रिंशत्पदमधिगत्य दिश्ययानम।
आरोहेत्तिलघृतहेमताम्रपात्रं दत्वाऽऽदौ गणकवराय च प्रगच्छेत्।।

यात्रा आरम्भ करते समय पहले अपनी दाहिने पैर को उठा कर बत्तिस पग चलकर गन्तव्य दिशा सम्बन्धि वाहन पर आरोहण करें तथा श्रेष्ठ दैवज्ञ को तिल – घी – सोना तथा ताम्रपात्र पहले प्रदान कर बाद में यात्रा करनी चाहिये।

दिक्शूल विचार –

शनिवार, सोमवार को पूरब दिशा, वृहस्पतिवार के दिन दक्षिण दिशा रविवार, शुक्रवार के दिन पश्चिम, बुध और मंगल के दिन उत्तर दिशा की यात्रा नहीं करनी चाहिये।

ऐशान्यं ज्ञे शनौ शूलमाग्नेयां गुरूसोमयो:।

वायव्यां भूमिपुत्रे तु नैर्ऋत्यां सूर्यशुक्रयोः ।।

बुध और शनिवार के दिन ईशान कोण में सोमवार और वृहस्पतिवार के दिन आग्नेय कोण में, मंगलवार को वायव्य कोण में रवि और शुक्र को नैऋत्य कोण में दिक्शूल रहता है। सम्मुख दिक्शूल गमन निषेध है।

दिक्शूल परिहार –

सूर्यवारे घृतं पीत्वा गच्छेसोमे पयस्तथा।
गुडमङ्गारवारे तु बुधवारे तिलानपि ।।
गुरूवारे दधि प्राश्य शुक्रवारे यवानपि
माषान्भुक्त्वा शनौ वारे शूलदोषोपशान्तये ।।

दिक्शूल में आवश्यक कार्यवश दोष की शान्ति के लिए रविवार को घृत, सोमवार को दूध, मंगलवार को गुड़, बुध को तिल, वृहस्पतिवार को दही, शुक्रवार को यव और शनिवार को उड़द भक्षण कर यात्रा करनी चाहिये।

यात्रा आरम्भ स्थान –

देवमन्दिर से अथवा गुरूगृह से अथवा अपने गृह से अथवा यदि कई स्त्रियॉ हो तो मुख्य स्त्री के गृह से पहले हविष्य खाकर, ब्राह्मणों से आज्ञा लेकर मंगलमय वस्तुओं को देखता हुआ, मांगलिक शब्दों को सुनता हुआ राजा अथवा अन्य व्यक्ति यात्रा करें।

दिशानुरूप यात्रा विधि –

आज्यं तिलौदनं मत्स्यं पयश्चापि यथाक्रमम्।
भक्षयेद् दोहदं दिश्यमाशां पूर्वादिकां व्रजेत् ।।

पूर्व दिशा में घी, दक्षिण दिशा में तिलमिश्रित भात, पश्चिम दिशा में मछली और उत्तर दिशा में दूध पीकर यात्रा करना चाहिये।

तिथि के अनुरूप यात्रा विधि –

प्रतिपदा तिथि में मदार का पत्ता, द्वितीया में चावल का धोया हुआ जल, तृतीया में घी, चतुर्थी में इमली, पंचमी में मूॅग, षष्ठी में सोना का धोवन, सप्तमी में पूआ, अष्टमी में रूचक, नवमी में शुद्ध जल, दशमी में गोमूत्र, एकादशी में यव का चावल, द्वादशी में खीर, त्रयोदशी में गुड़, चतुर्दशी में रक्त और पूर्णिमा में मूॅग मिला भात खाकर यात्रा करनी चाहिये।

तिथि – दोष की निवृत्ति के लिए तिथियों में जो ग्रहणीय वस्तु है। इसका प्रयोग करके यात्रा करनी चाहिए।

मास परक यात्रा मुहूर्त्त –

इषमासि सिता दशमी विजया शुभकर्मसु सिद्धिकरी कथिता।

श्रवणर्क्षयुता सुतरां शुभदा नृपतेस्तु गते जयसन्धिकरी ।।

आश्विन मास में शुक्लपक्ष की दशमी को विजया तिथि कहते है। वह विजयादशमी सम्पूर्ण शुभ कर्मो में विजय देने वाली कही गई है। यदि श्रवण नक्षत्र से युत हो तो अत्यन्त शुभफल दायक होता है। राजा की यात्रा में विजय अथवा सन्धि कराने वाली होती है। वैश्य वर्ग इस तिथि को बहुत उत्तम मानता है और धूमधाम से लक्ष्मी पूजा करता है।

अयन के अनुसार यात्रा विचार –

चन्द्रार्कौ दक्षिणगतौ यायाद्याम्यां परां प्रति।
सौम्यायनगतौ यायात्प्राचीं सौम्यां दिशं प्रति।।

सूर्य और चन्द्रमा दोनों यदि उत्तरायण मकरादि अर्थात् उत्तराषाढ़ा के 2 चरण से मिथुनान्त अर्थात् मृगशिरा के 2 चरण तक में हो तो उतृतर और पूर्व दिशा में यात्रा करें। यदि दोनों दक्षिणायन में हो तो दक्षिण पश्चिम दिशा में यात्रा उत्तम होती है। यदि सूर्य और चन्द्रमा का अयन भिन्न – भिन्न हो तो सूर्य के अयन की दिशा का यात्रा दिन में और चन्द्रमा के अयन की दिशा की यात्रा रात में करनी चाहिए। इसके विपरीत अर्थात् सूर्य के अयन की दिशा में रात में चन्द्र के अयन की दिशा में दिन में यात्रा करने से यात्री का वध होता है।

शुभ शकुन –

विप्राश्वेभफलान्नदुग्धदधिगोसिद्धार्थपद्माम्बरं
वेश्यावाद्यमयूरचाषनकुला बद्धैकपश्वामिषम्।
सद्वाक्यं कुसुमेक्षुपूर्णकलशच्छत्राणि मृत्कन्यका
रत्नोष्णीर्षासतोक्षमद्यससुततस्त्रीदीप्तवैश्वानराः ।।
आदर्शाञ्जनधौतवस्त्ररजका मीनार्ज्यासिंहासनं
शावं रोदनवर्जितं ध्वजमधुच्छागास्त्रगोरोचनम्।
भारद्वाजनृयानवेदनिनदा मांगल्यगीताङ्कुशा
दृष्टः सत्फलदाः प्रयाणसमये रिक्तौ घटः स्वानुगः ।।

ब्राह्मण (एक से अधिक ब्राह्मण), घोड़ा, हाथी, फल, अन्न, दूध, दही, गाय, सरसों , कमल, वस्त्र, वेश्या, वाद्य, मयूर, नीलकण्ठ, नेवला, बँधा हुआ पशु, मॉस, शुभवाणी, पुष्प, ईख जल से भरा कलश, छत्र, मिट्टी, कन्या, रत्न, पाडी, श्वेत बैल, शराब, पुत्रसहित स्त्री, प्रज्वलित अग्नि, दर्पण, काजल, धुले वस्त्रों के साथ धोबी, मछली, सिंहासन,रूदन रहित शव (मृत शरीर), पताका, शहद, बकरा, अस्त्र, गोरोचन, भारद्वाज (चातक) पक्षी, पालकी, वेदध्वनि, मांगलिक गीत, अंकुश तथा खाली घड़ा यात्री के पीछे की तरह जाता हुआ यदि यात्रा के समय दिखलाई पड़े तो शुभफलदायक होता है।

5.4 यात्रा में अकृत्य –

व्रतबन्धनदैवतप्रतिष्ठाकरपीडोत्सवसूतकासमाप्तौ

न कदापि चलेदकालविधुदघ्ज्ञनवर्षातुहिनेऽपि सप्तरात्रम् ।।

उपनयन, देवताओं की प्रतिष्ठा, विवाह, उत्सव होलिका,दीपावली आदि सूतक जननाशौच – मरणाशौच इनकी असमाप्ति में जब तक ये सभी कार्य पूर्णरूपेण सम्पन्न न हो जायें तब तक कदापि यात्रा नहीं करनी चाहिए। एवं अकाल में विजली चमके, बादल बरसे, पाला पड़े तो भी रात तक २४ ×७ = १६८ घंटे तक यात्रा नहीं करनी चाहिये।

सम्मुख शुक्र दोष विचार –

उदेति यस्यां दिशि यत्र याति गोलभ्रमाद्वाथ ककुब्भसंघे।

त्रिधोच्यते सम्मुख एव शुक्रो यत्रोदितस्तां तु दिशं न यायात् ।।

शुक्र जिस दिशा में उदित हो (अपने कालांश वश सूर्य से राश्यादि अधिक हो तो पश्चिम में, सूर्य की राश्यादि से शुक्र राश्यादि कम हो तो पूर्व दिशा में) अथवा गोलभ्रमणवश उत्तर या दक्षिण दिशा में हो तो अथवा कृत्तिका से मघा पर्यन्त ७ नक्षत्र पूर्व के, मघा से विशाखा तक ७ नक्षत्र दक्षिण के अनुराधा से श्रवण तक ७ नक्षत्र पश्चिम के , धनिष्ठा से भरणी तक ७ नक्षत्र उत्तर के दिग् नक्षत्र कहे जाते है। इन नक्षत्रों पर स्थिति वश जिस दिशा में हो, इस प्रकार 3 प्रकार का शुक्र होता है। जिस दिशा में शुक्र हो उस दिशा में यात्रा नहीं करनी चाहिए।

प्रस्थान काल विशेष -

प्रस्थाने भूमिपालो दशदिवसमभिव्याप्य नैकत्रतिष्ठेत्

सामन्तः सप्तरात्रं तदितरमनुजः पंचरात्रं तथैव।

उर्ध्वं गच्छेच्छुभाहेऽप्यथ गमनदिनात् सप्तरात्राणिपूर्वं

चाशक्तौ तद्दिनेऽसौ रिपुविजयमना मैथुनं नैव कुर्यात् ।।

जो राजा अपने देश का एकतन्त्र शासक हो, उसे प्रस्थान में १० दिनों तक एक जगह नहीं ठहरना चाहिए। सामन्त राजा ७ दिनों तक एक जगह न रूके और अन्य सामन्त राजा ७ दिनों तक एक जगह न रूके और अन्य साधारण जन ५ दिनों तक एक स्थान पर न ठहरें अर्थात् अपनी – अपनी अवधि के पहले ही उस पड़ाव से यात्रा आरम्भ कर दें। यदि किसी कारणवश कहे हुए दिनों से अधिक दिनों तक रूकना पड़े तो फिर शुभ मुहूर्त्त देखकर वहॉ से यात्रा करें।

अपने शत्रु पर विजय प्राप्ति की इच्छा रखने वाला राजा यात्रा दिन से ७ रात पहले से ही स्त्री के साथ मैथुन न करें। यदि ऐसा करें तो कम से कम यात्रा करने वाले दिन त्याज्य करना चाहिये।

यात्रा के निश्चित दिन से ३ दिन – रात पहले दुग्ध पान , ५ रात पहले क्षौर कर्म त्याज्य है। यात्रा के दिन मधु, तेल का सेवन और वमन निश्च ही त्याग देना चाहिये।

जो यात्रा के दिन तेल, गुड़, क्षार तथा पका हुआ मॉस खाकर यात्रा करता है, वह रोगी होकर लौटता है । स्त्री और ब्राह्मण का अनादर करके यात्रा करने वाले की मृत्यु होती है।

यात्रा में वर्षा तथा दुष्ट शकुन परिहार –

यदि पौष से लेकर 4 महीनों पौष,माघ, फाल्गुन, चैत्र में वर्षा हो तो अकाल वृष्टि कही जाती है। परन्तु जब तक पशुओं तथा मनुष्यों के पैर से पृथ्वी अंकित न हो जाये तब तक दोष नहीं होता। जब भूमि पर कीचड़ हो जाय तभी दोष होता है।

अल्प अकाल वृष्टि होने पर थोड़ा दोष, बहुत वृष्टि होन पर अधिक दोष होता है। जब मेघों का गर्जन अथवा वर्षा हो तो उस दोष की निवृत्ति के लिए राजा सुवर्ण का सूर्य और चन्द्रमा का बिम्ब बनवाकर ब्राह्मण को दान करें । यात्रा के समय अशुभ शकुन हो, तो राजा घी और सोना ब्राह्मण को देकर अपनी इच्छा के अनुसार यात्रा करें ।

अशुभ शकुन -

बन्ध्या चर्म तुषास्थि सर्पलवणाङ्गारेन्धनक्लीबविट्
तैलोन्मत्तवसौषधारिजटिलप्रव्राटतृणव्याधिताः ।
नग्नाभ्यक्तविमुक्तकेशपतिता व्यंगक्षुधार्ता असृक्
स्त्रीपुष्पं सरठः स्वगेहदहनं मार्जारयुद्धं क्षुतम् ॥
काषायी गुडतक्रपंकविधवाकुब्जाः कुटुम्बे कलि –
र्वस्त्रादेः स्खलनं लुलायसमरं कृष्णानि धान्यानि च ॥
कार्पासं वमनं च गर्दभरवो दक्षेऽतिरूट् गर्भिणी
मुण्डार्द्राम्बरदुर्वचोऽन्धबधिरोदक्यो न दृष्टाः शुभाः ॥

बन्ध्या स्त्री, चमड़ा, भूसी, हड्डी , नमक, आग का अंगारा, इन्धन , नपुंसक,विष्ठा, तेल, पागल, चर्बी, औषधी, शत्रु, जटाधारी, सन्यासी, तृण, रोगी, वस्त्रहीन मानव, तेल उबटन लगाया हुआ व्यक्ति, विखरे बालों वाला स्त्री, पापी व्यक्ति, विकलांग, भूख से व्याकुल मनुष्य, रक्त, स्त्री का रजस्राव, गिरगिट , अपने घर का जलना, बिल्ली का युद्ध, छींक, काषाय वस्त्र धारण किये हुए मनुष्य, गुड़, मट्ठा, कीचड़, विधवा स्त्री, कुबड़ा , पारिवारिक कलह, शरीर से वस्त्र - छत्र आदि का गिरना, भैसों का युद्ध, काले रंग के अन्न, रूई, उल्टी, दाहिनी और गधे का शब्द, अधिक क्रोधी प्राणी, गर्भिणी स्त्री, मुण्डित व्यक्त, गीला वस्त्र, अपशब्द का प्रयोग, अन्धा, बहरा, तथा इन सभी का यात्रा के समय दिखलाई पड़ना शुभ नहीं होता है। ये अशुभ शकुन कहे गये है।

अन्य शकुन –

गोधाजाहकसूकराहिशशकानां कीर्तनं शोभनं
नो शब्दो न विलोकनं च कपिऋक्षाणामतो व्यत्ययः।

नद्युत्तारभयप्रवेशसमरे नष्टार्थसंवीक्षणे

व्यत्यस्ता: शकुना नृपेक्षणविधौ यात्रोदिता: शोभना: ।।

गोह, जाहक (अंगसंकोची पशु), सर्प एवं खरगोश का नामोच्चारण ही शुभ होता है, परन्तु इन का शब्द या दर्शन यात्रा के समय शुभ नहीं होता है। बन्दर और भालू का गोह आदि से विपरीत फल होता है, अर्थात् बन्दर और भालू का शब्द (बोलना) और दर्शन होना शुभ तथा नामोच्चारण अशुभ होता है।

नदी पार करते समय, भय के उपस्थित होने पर या भय से भागते समय, गृहप्रवेश, युद्ध तथा नष्ट वस्तु के अन्वेषण के समय विपरीत शकुन ही शुभ अर्थात् अशुभ शकुन शुभ फलदायक तथा शुभ शकुन अशुभ फलदायक होते हैं तथा राजा के दर्शन सम्बन्धी कार्यों में यात्रा प्रसंग में बताये गये शुभ शकुन ही शुभदायक होते हैं।

वामांगे कोकिला पल्ली पोतकी सूकरी रला।

पिंगला छुच्छुका श्रेष्ठा: शिवा: पुरूषसंज्ञिता: ।।

कोयल, छिपकली, पोतकी, सूकरी रला (एक प्रकार का पक्षी) , पिंगला भैरवी, छछुन्दर, श्रृंगाली (गीदड़ी) तथा पुरूष संज्ञक पक्षी (कबूतर, खंजन, तित्तिर, हंसा आदि) यात्रा के समय वाम भाग में शुभ माने जाते है।

छिक्कर: पिक्ककको भास: श्रीकण्ठो वानरो रूरू:।

स्त्रीसंज्ञका: काकऋक्षश्वान: स्युर्दक्षिणा: शुभा: ।।

छिक्कर मृग, हाथी का बच्चा, भास पक्षी, मयूर, बन्दर, रूरूमृग, स्त्री संज्ञक पक्षी कौवा, भालू तथा कुत्ता यात्रा के समय दक्षिण भाग में शुभ होते हैं।

शकुन में विशेष –

प्रदक्षिणगता: श्रेष्ठा यात्रज्ञयां मृगपक्षिण: ।

ओजा मृगा व्रजन्तोऽतिधन्या वामे खरस्वन: ।।

यात्रा के समय दक्षिण भाग में जाते हुए मृग और पक्षी शुभ फलदायक होते हैं। यदि विषम संख्यक मृग हों तो अत्यन्त शुभ होते है। वाम भाग में गधे का शब्द सुनाई पड़े तो वह भी यात्रा में शुभ होता है।

अशुभ शकुनों के परिहार –

आद्येऽपशकुने स्थित्वा प्राणानेकादश व्रजेत्।

द्वितीये षोडश प्राणांस्तृतीये न क्वचिद्व्रजत् ।।

यात्रा के समय यदि प्रथम बार अपशकुन दिखलाई पड़े तो ११ प्राण (ग्यारह बार श्वास आने तक जितना समय हो उतने समय) तक रूक कर यात्रा करें। यदि द्वितीय बार अपशकुन दिखाई

पड़े तो १६ प्राण तक रूक कर यात्रा करें। यदि तृतीय बार अपशकुन का दर्शन हो तो कहीं भी नहीं जाना चाहिये।

बोध प्रश्न -

१. यात्रा हेतु निम्नलिखित में उत्तम नक्षत्र है –

क. रोहिणी ख. मृगशिरा ग. चित्रा घ. स्वाती

२. यात्रा में तिथि शुभ है –

क. ७ ख. १ ग. ४ घ. ६

३. मृत्युलोक की भद्रा होती है –

क. सम्मुख ख. अधोमुखी ग. उर्ध्वमुखी घ. कोई नहीं

४. धनु राशि का चन्द्रमा किस दिशा में होता है –

क. दक्षिण दिशा में ख. पूर्व दिशा में

ग. उत्तर दिशा में घ. पश्चिम दिशा में

५. सोमवार को क्या भक्षण करने से दिक्शूल परिहार होता है –

क. घृत ख. गुड़ ग. तिल घ. दूध

5.4 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि अश्विनी, पुनर्वसु, अनुराधा मृगशिरा, पुष्य, रेवती, हस्त, श्रवण और धनिष्ठा ये नक्षत्र यात्रा के लिए उत्तम होता है। रोहिणी, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद, तीनों पूर्वा, ज्येष्ठा, मूल और शतभिषा ये नक्षत्र मध्यम एवं भरणी, कृत्तिका, आर्द्रा, आश्लेषा, मघा, चित्रा, स्वाति और विशाखा ये नक्षत्र निन्द्य है। तिथियों में द्वितीया, तृतीया, पंचमी, सप्तमी, दशमी, एकादशी और त्रयोदशी शुभ बतायी गयी है। **यात्रा में कृत्य** के अन्तर्गत चन्द्रवास एवं उसका फल विचार नितान्त आवश्यक है।

मेष, सिंह और धनु राशि का चन्द्रमा पूर्व दिशा में, वृष, कन्या और मकर राशि का चन्द्रमा दक्षिण दिशा में, तुला मिथुन व कुम्भ राशि का चन्द्रमा पश्चिम दिशा में कर्क, वृश्चिक और मीन राशि का चन्द्रमा उत्तर दिशा में वास करता है। सम्मुख चन्द्रमा धन लाभ करने वाला, दक्षिण चन्द्रमा सुख सम्पत्ति देने वाला, पृष्ठ चन्द्रमा शोक सन्ताप देने वाला और वाम चन्द्रमा धननाश करने वाला होता है। यात्रा में कृत्य के अन्तर्गत चन्द्र वास विचार, भद्रा वास विचार, तिथि शुद्धि, नक्षत्र शुद्धि, लग्न शुद्धि, शुभाशुभ शकुनादि का विचार करना आवश्यक है। ज्योतिष में यात्रा के अन्तर्गत जो निषेध है, अर्थात् जो नहीं करने के लिये कहा गया है। वह अकृत्य है। अत: इस इकाई के अध्ययन

से आपने यह जान लिया है कि यात्रा में कृत्याकृत्य क्या है।

5.5 पारिभाषिक शब्दावली

सम्मुख – सामने

अधोमुखी – नीचे की ओर मुख

उर्ध्वमुखी – उपर की ओर मुख

दत्वा - देकर

निषेध – नहीं करने वाला

इन्दु – चन्द्रमा

सित – शुक्र

मार्जार – बिल्ली

जया – 3,8,13

सूर्यादिवार – रविवार, सोमवार, मंगलवार आदि

उत्तरायण – सूर्य का मकर राशि में प्रवेश करने से उत्तरायण आरम्भ होता है।

5.6 बोधप्रश्नों के उत्तर

1. ख
2. क
3. क
4. ख
5. घ

5.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

मुहूर्त्तपारिजात - चौखम्भा विद्याप्रकाशन

मुहूर्त्तचिन्तामणि – चौखम्भा विद्याप्रकाशन

वृहज्ज्योतिसार – चौखम्भा विद्याप्रकाशन

ज्योतिष सर्वस्व – चौखम्भा विद्याप्रकाशन

वीरमित्रोदय – चौखम्भा विद्याप्रकाशन

5.8 सहायक पाठ्यसामग्री

1. जातक पारिजात

2. फलदीपिका

3. मुहूर्त्तचिन्तामणि – पीयूषधारा

4. जातकतत्व

5. भारतीय कुण्डली विज्ञान

5.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. यात्रा में कृत्य कर्म का वर्णन कीजिये ।
2. यात्रा में अकृत्य क्या है । स्पष्ट कीजिये।
3. यात्रा में कृत्याकृत्य पर टिप्पणी लिखिये ।

खण्ड – 4

गृहारम्भ एवं गृहप्रवेश मुहूर्त्त

इकाई – 1 शिलान्यास विधि

इकाई की संरचना

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 शिलान्यास का परिचय
1.4 शिलान्यास की स्वरूप, पूजन व महत्व
बोध प्रश्न
1.5 सारांशः
1.6 पारिभाषिक शब्दावली
1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.8 बोधप्रश्नों के उत्तर
1.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई तृतीय खण्ड **गृहारम्भ एवं गृहप्रवेश मुहूर्त्त** के प्रथम इकाई के '**शिलान्यास विधि**' नामक शीर्षक से सम्बन्धित है। शिलान्यास कर्म गृह निर्माण कार्यारम्भ के पूर्व में होता है। सर्वप्रथम जब गृह का शिलान्यास किया जाता है, जिसमें भूमि पूजन से लेकर गृह का नींव निर्माण तक का कार्य होता है तत्पश्चात् गृहारम्भ का कार्य किया जाता है ।

गृहनिर्माण कार्यारम्भ के पूर्व गृह का नींव निर्माण सम्बन्धित किये जाना वाला कार्य '**शिलान्यास कर्म**' कहलाता है।

इससे पूर्व के इकाईयों में आपने जातक स्कन्ध एवं संस्कार प्रकाण्ड का अध्ययन कर लिया है। इस इकाई में आप यहॉं शिलान्यास विधि का ज्ञान प्राप्त करेंगे।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप-

1. **शिलान्यास** को परिभाषित करने में समर्थ हो सकेंगे।
2. **शिलान्यास विधि** के महत्त्व को समझा सकेंगे।
3. **शिलान्यास** विधि के विभेद का निरूपण करने में समर्थ होंगे।
4. **शिलान्यास** विधि का स्वरूप वर्णन करने में समर्थ होंगे।
5. **शिलान्यास** विधि को निरूपित करने में समर्थ हो सकेंगे ।

1.3 शिलान्यास विधि परिचय

शिलान्यास मुहूर्त्त –

अधोमुखैश्च नक्षत्रैः कर्त्तव्यं भूमिशोधनम्।
शिलान्यासः प्रकर्त्तव्यो गृहाणां श्रवणे मृगे॥
पौष्णे हस्ते च रोहिण्यां पुष्याश्विन्युत्तरात्रये।
मृदु - ध्रुवैः शुभं कुडयमित्युक्तं विश्वकर्मणा॥

अर्थ – आश्लेषा, मूल, विशाखा, कृत्तिका, तीनों पूर्वा, भरणी और मघा इन नक्षत्रों में भूमिशोधन खात, श्रवण, मृगशिरा, रेवती, हस्त, रोहिणी, पुष्य, अश्विनी और तीनों उत्तरा में शिलान्यास तथा मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा, तीनों उत्तरा रोहिणी इन नक्षत्रों में दिधाल आदि का निर्माण करना शुभ है।

गृहारम्भ की शुभ वेला में खनित नींव को प्रस्तुत शिलान्यास मुहूर्त्त के दिन विधिवत् पत्थरों से पूरित कर देना चाहिये। तदर्थ ग्राह्य तिथ्यादि शुद्धि इस प्रकार है –

तिथि – 1 कृ. 2,3,5,7,10,11,12,13 शु.।

वार – चन्द्रवार, बुधवार, गुरूवार, शुक्रवार एवं शनिवार।

नक्षत्र – अश्विनी, रोहिणी, मृगशिरा, पुनर्वसु, पुष्य, तीनों उत्तरा, हस्त, श्रवण एवं रेवती।

विशेष – सम्यक् समय में ब्रह्मा, वास्तुपुरूष, पंचलोकपाल, कूर्म, गणेश तथा स्थान देवताओं का शिष्टाचार पूर्वक पूजन एवं स्वस्ति – पुण्याहवाचनादि के साथ तथा स्वर्ण एवं गंगादि पुण्य स्थानों की रेणु सहित मुख्य शिला का उचित कोण में स्थापन करें। तदनन्तर, प्रदक्षिण क्रम से अन्य पत्थरों को जमाना चाहिये।

शिलान्यास में शिला का अर्थ है – पत्थर। शिला को या ईष्ट को स्थापित कर गृहारम्भ में पूजन की जाती है, तत्पश्चात् गृहनिर्माण का कार्य आरम्भ किया जाता है । विदित हो कि शिलान्यास के पूर्व ग्राम राशि से शुभाशुभ स्थान का विचार करना आवश्यक है, इसी के आधार पर गृह निर्माण हेतु उस स्थल पर शिलान्यास कर्म करना चाहिये।

ग्राम राशि से शुभाशुभ विचार –

एकभे सप्तमे ग्रामे वैरं हानिस्त्रिषष्ठभे।

तुर्याष्टद्वादशे रोगो ग्रामराशौ स्वनामभात्॥

अर्थ – अपनी नाम राशि से ग्राम की राशि एक हो वा सप्तम हो तो विरोध, तृतीय या षष्ठ हो तो हानि तथा चतुर्थ, अष्टम अथवा द्वादश पड़े तो रोग कारक है। अर्थात् 1,4,7,12,3,6 हो तो अशुभ और 2,5,9,10,11 राशि वाला ग्राम शुभ है।

मुहूर्त्त चिन्तामणि के अनुसार –

यद्धं द्वयंकसुतेशदिङ्मितमसौ ग्रामः शुभो नामभात्।

स्वं वर्गं द्विगुणं विधाय परवर्गाढयं गजैः शेषितम्॥

काकिण्यस्त्वनयोश्च तद्विवरतो यस्याधिकोः सोऽर्थ –

दोऽथ द्वारं द्विजवैश्यशूद्रनृपराशीनां हितं पूर्वतः॥

अर्थ – अपनी नामराशि से अभीष्ट स्थान की नाम राशि यदि 2,9,5,11,10 संख्यक हो तो अभीष्ट निवास स्थान हेतु शुभ होता है। अ क च ट त प य श इन वर्गों में जो वर्ग अपने नाम का हो उस वर्ग की संख्या को द्विगुणित कर स्थान की वर्ग संख्या को जोड़कर आठ का भाग देने से शेष उस व्यक्ति की काकिणी होती है। इसी प्रकार स्थान की वर्ग संख्या को दूगना कर पुरूष की वर्ग संख्या को जोड़कर आठ से भाग देने पर जो शेष बचे वह स्थान की काकिणी होती है। दोनों की काकिणियों का अन्तर करने से जिसकी काकिणी अधिक होती है वही धन देने वाला होता है। अभिप्राय यह है कि पुरूष की काकिणी से स्थान की काकिणी अधिक हो तो शुभ होता है।

ब्राह्मण वर्ण (कर्क, वृश्चिक, मीन राशि) वालों के लिये पूर्व में, वैश्य वर्ण (मिथुन, तुला, कुम्भ राशि) वालों के लिये पश्चिम तथा क्षत्रिय वर्ण (मेष सिंह और धनु राशि) वालों के लिये उत्तर दिशा में गृह

का द्वार शुभ होता है।

विमर्श – गृहस्थ के लिये आवश्यक होता है। गृह में रहने से ही गृहस्थ कहा गया है तथा एक निश्चित स्थान में स्थित रहकर त्रिवर्ग धर्म, अर्थ, काम का सेवन करता हुआ एक धार्मिक समाज का निर्माण करने वाला गृहस्थ होता है। कूर्म पुराण में महर्षि व्यास ने लिखा है –

त्रिवर्गसेवी सततं देवतानां च पूजनम्।
कुर्यादहरहर्नित्यं नमस्येत् प्रयतः सुरान्॥
विभागशीलः सततं क्षमायुक्तो दयालुकः।
गृहस्थस्तु समाख्यातो न गृहेण गृही भवेत्॥

गृहस्थ की समस्त क्रियाओं के सम्पादन हेतु गृह की आवश्यकता होती है। गृहस्थस्य क्रियाः सर्वाः न सिद्धयन्ति गृह विना।

प्रायोगिक रूप में शिलान्यास विधि –

शिलान्यास में सर्वप्रथम उत्तम भूमि का चयन करके वहॉ पॉच शिलाओं व ईट्टों को पूर्व दिशा में अग्नि कोण में स्थापना कर आरम्भ में षोडशोपचार विधि से गणेशादि देवता, वास्तु देवतादि का पूजन करना चाहिये, तत् पश्चात् शिलाओं का पूजन करना चाहिये। उसी क्रम में वास्तु देवता का पूजन करते समय तॉबे के कलश में चॉदी का नाग – नागीन, कच्छप, सप्तधातु आदि डालकर मन्त्र द्वारा अभिमन्त्रित कर भूमि के अन्दर स्थापित करना चाहिये। इससे गृहारम्भ कार्य आसानी पूर्वक सम्पन्न हो जाती है। शिलान्यास कर्म गृहारम्भ कार्य में अति आवश्यक है।

भूमेः खननाधिकारः -

स्वामिहस्तप्रमाणेन ज्येष्ठपत्नीकरेण वा।
हस्तमात्रं खनेद भूमिं नृणां प्रोक्तं पुरातनैः॥
जलान्तं प्रस्तरान्तं वा पुरूषान्तमथापि वा।
क्षेत्रं संशोध्य चोद्धृत्य शल्यं सदनमानभेत्॥

स्वामी के हाथ से अथवा प्रधान पत्नी के हाथ से एक हाथ गहरी भूमि को खोदकर परीक्षा करे या जल निकलने तक, या पत्थर निकलने तक या एक पुरूष के प्रमाण की गहराई तक भूमि को खोदकर उसका शोधन कर शल्य निकालकर गृह निर्माण प्रारम्भ करना चाहिये।

मुहूर्त्तचिन्तामणि में खातविधि –

देवालये गेहविधौ जलाशये राहोर्मुखं शुम्भुदिशे विलोमतः।
मीनार्कसिंहार्कमृगार्कतस्त्रिभे खाते मुखात् पृष्ठविदिक् शुभाभवेत्॥

देव मन्दिर के निर्माण में मीन से 3 राशि के सूर्य हो तो ईशान कोण में, मिथुन से 3 राशि में वायव्य कोण में, कन्या से 3 राशि में नैऋत्य कोण में और धन से 3 राशि में अग्नि कोण में राहु का मुख रहता

है।

गृह निर्माण में सिंह से 3 राशि में ईशान कोण में, वृश्चिक से 3 राशि में वायव्य कोण में, कुम्भ से 3 राशि में नैऋत्य कोण में और वृष से 3 राशि में अग्नि कोण में राहु का मुख रहता है।

जलाशय निर्माण में मकर से 3 राशि में, ईशान कोण में मेष से 3 राशि में, वायव्य कोण में कर्क से 3 राशि में नैऋत्य कोण में और तुला से 3 राशि में अग्निकोण में राहु का मुख रहता है। अत: मुख से पिछले कोण में खात शुभ होता है।

वृषाकोदिक्रिकं वेद्यां सिंहादि गणयेद् गृहे।
देवालये च मीनादि तडागे मकरादिकम्॥

गर्गाचार्य के मत से वेदी में वृषाक में 3 राशि, गृह में सिंह के सूर्य से 3 राशि, गृह में सिंह के सूर्य से 3 राशि, देवालय में मीन के सूर्य से 3 राशि, तडाग आदि में कमकर के सूर्य से 3 राशियों में राहु का मुख होता है।

विश्वकर्मप्रकाश में भूमिसंशोधनप्रकार –

खातं भूमिपरीक्षणे करमितं तत्पूरयेत्तन्मृदा
हीने हीनफलं समे समफलं लाभो रजोवर्द्धने।
तत्कृत्वा जलपूर्णमाऽऽशतपदं गत्वा परीक्ष्यं पुन: ॥
पादोनाऽर्द्धविहीनकेऽथनिभृते मध्याधमेष्टाम्बुभि:।
निखनेद्धस्तमात्रेण पुनस्तेनैव पूरयेत्।
पांशुनाधिकमध्योनश्रेष्ठमध्याधमा: क्रमात्॥

भूमि परीक्षण के समय भूस्वामी या उसकी प्रधान पत्नी के हाथ से एक – एक हाथ लम्बा, चौड़ा, गहरा गड्ढा खोदकर उसको पानी से भर दें। तत्पश्चात् उससे 100 कदम दूर जाकर उस भूमि के पास लौट आयें फिर परीक्षा करें यदि गर्त भरा हो तो उत्तम, चौथाई जल सूख जाये तो मध्यम आधे से भी कम रहे तो अधम समझे।

अथवा उसी मिट्टी से उस गड्ढा को भरे यदि मिट्टी बच जाये तो उत्तम, बराबर हो तो मध्यम, घट जाये तो अधम समझे।

बोध प्रश्न –

1. शिलान्यास में शिला का अर्थ है –

क. पत्थर ख. मकान ग. ईष्ट घ. कोई नही

2. काकिणी विचार होता है।

क. गृहप्रवेश में ख. गृहारम्भ में ग. द्वारस्थापन में घ. कोई नही

3. ब्राह्मण वर्ण की राशियॉ है –

क. कर्क, तुला, मीन ख. मकर, धनु, कुम्भ ग. कर्क, वृश्चिक एवं मीन घ. मेष, वृष एवं मिथुन

4. त्रिवर्ग से तात्पर्य है –

क. धर्म, अर्थ, मोक्ष ख. मोक्ष, काम, धर्म ग. धर्म, अर्थ एवं काम घ. धर्म, अर्थ काम एवं मोक्ष

5. देव मन्दिर के निर्माण में मीन से 3 राशि के सूर्य हो तो किस कोण में राहु रहता है –

क. आग्नेय कोण ख. नैऋत्य कोण ग. वायव्य कोण घ. ईशान कोण

वास्तुरत्न में भूमि संशोधन –

कर्तुश्च हस्तप्रमितं खनित्वा खातं पयोभि: परिपूरितं चेत्।
वसेत्सुतार्थी परिपूरितंसच्छुष्के भवेत् तत्क्षणमेव नाश:॥
स्थिरे जले वै स्थिरता गृहस्य स्याद्दक्षिणावर्त्तजलेन सौख्यम्।
क्षिप्रं जलं शोषयतीह खातो मृत्युर्हि वामेन जलेन कर्तु:॥
अथवा सर्वधान्यानि वापयेच्च समन्तत:।
यत्र नैव प्ररोहन्ति तां प्रयत्नेन वर्जयेत्॥

गृहपति के हाथ भर गहरी खोदी गयी भूमि को जल से भरें यदि जल भरा रह जाये तो शुभ, तत्काल सूख जाये तो अशुभ और जल भरते समय स्थिर रहे तो गृह की स्थिरता। पानी दक्षिण की ओर घूमे तो सुख, बायीं ओर घूमे तो मृत्युदायक होता है। अथवा जिस भूमि पर निवास करने की इच्छा हो उस पर सभी अन्नों को एक साथ बोयें, जहॉ अंकुर न उगें तो उस स्थान को निवास योग्य न समझे, अत: उसे त्याज्य कर देना चाहिये।

खातमध्ये पाषाणादिप्राप्तिफल –

खन्यमाने यदा भूमौ पाषाणं प्राप्यते तदा।
धनायुश्चिरता वै स्यादिष्टकासु धनागम:॥
कपालांगारकेशादौ व्याधिना पीडितो भवेत्।

भूमि खोदने पर यदि वहॉ पत्थर मिल जाये तो धन एवं आयु की वृद्धि होती है, यदि ईंट मिले तो धनागम, कपाल, हड्डी, कोयला, केश आदि से रोग पीड़ा होती है।

खाते यदाश्मा लभते हिरण्यं तथेष्टकायां च समृद्धिरत्र।
द्रव्यं च रम्याणि सुखानि धत्ते ताम्रादिधातुर्यदि तत्र वृद्धि:॥

यदि गड्ढे में से पत्थर मिले तो सुवर्ण लाभ ईंट से समृद्धि, द्रव्य से सुख और ताम्रादि धातु से सब प्रकार की वृद्धि होती है।

वास्तुराजवल्लभे भूमिपूजाविधि –

परीक्षितायां भुवि विघ्नराजं समर्चयेच्चण्डिकया समेतम्।

क्षेत्राधिपं चाष्ठदिगीशदेवान् पुष्पैश्च धूपैर्बलिभिः सुखाय ॥

उक्त प्रकार से भूमि की परीक्षा करके श्रीगणेश तथा भगवती दुर्गा की पूजा करके क्षेत्रपाल तथा आठों दिग्पालों की फल, धूप, बलि आदि से पूजा करनी चाहिये।

गृहनिर्माण के लिये इष्टिका विचार –

विजया मंगला चैव निर्मला सुखदेति च।
चतुर्द्धा चेष्टकाः प्रोक्ता गृहे च वरूणालये ॥
तिथ्यंगुलानि विजया मंगला सप्तचन्द्रकैः।
पक्षेन्दुभिर्निमलास्यात् सुखदा रामपक्षभिः ॥
प्रमाणमिष्टकायाश्च गर्गाद्यैर्मुनिभिः स्मृतः।

विजया, मंगला, निर्मला, सुखदा ये चार प्रकार की ईटें गृह तथा जलाशय के लिये कही गई है। अब इनके प्रमाण होते है – 15 अंगुल विजया, 17 अंगुल मंगला, 12 अंगुल निर्मला, 23 अंगुल सुखदा का प्रमाण गर्गादि मुनियों के द्वारा कथित है।

इष्टकाचक्रम् –

पंचत्रीणि त्रिकं पंच सप्त पंचावनीयभात्।
सौख्यं मृत्यु क्रमेणैव इष्टकारम्भकर्मसु ॥
मंगल के नक्षत्र से ईंट रखने के दिन नक्षत्र तक का फल निम्नलिखित है –

मंगल के नक्षत्र से गणना फल –

5	3	3	5	7	5
सौख्य	मृत्यु	सौख्य	मृत्यु	सौख्य	मृत्यु

इष्टकोपरि वह्निदीपचक्रम्

सप्तपंचमुनिवेदपंचभिः शोकलाभरूजभीतिभीसुखम्।
भौमभाच्च गणयेत्सुधीः सदा इष्टकोपरि सुवह्निदीपनम् ॥
मंगल के नक्षत्र से अग्निदीपन नक्षत्र तक का विचार चक्र –

मंगल नक्षत्र से गणना फल

7	5	7	4	5
शोक	लाभ	रोग	भय	सुख

शिलान्यास विधि –

दक्षिणपूर्वे कोणे कृत्वा पूजां शिलां न्यसेत् प्रथमम्।

शेषाः प्रदक्षिणेन स्तम्भांश्चैव प्रतिस्थाप्याः ॥

कोण की विधिवत् पूजा करके पूर्व दक्षिण के कोण में प्रथम शिलान्यास करके शेष प्रदक्षिण क्रम से स्थापना करे।

स्तम्भस्थापन –

प्रासादेषु च हर्म्येषु गृहेष्वन्येषु सर्वदा।

आग्नेय्यां प्रथमं स्तम्भं स्थापयेत्तिद्वधानतः ॥

प्रासाद, धनिकों के गृह तथा सामान्य ग्रहों में भी सदैव अग्निकोण में ही विधिपूर्वक स्तम्भ स्थापन करना चाहिये।

सूत्रभित्तिशिलान्यासं स्तम्भस्यारोपणं तथा।

पूर्वदक्षिणयोर्मध्ये कुर्यादित्याह कश्यपः ॥

महर्षि कश्यप के मत से सूत्रभित्ति, शिलान्यास तथा प्रथम स्तम्भ स्थापन पूर्व दक्षिण के मध्य में ही करना चाहिये।

1.5 सारांश

इस इकाई में आपने अक्षराम्भ, विद्यारम्भ एवं उपनयन संस्कार का अध्ययन किया है। संस्कारों के क्रम में बालक का जन्मकाल से लेकर पॉचवें वर्ष से होने वाला संस्कारों में अक्षराम्भ संस्कार है। तत् पश्चात् आठवें वर्ष में व्रतबन्ध संस्कार एवं अक्षराम्भ के बाद उस संस्कार का जिससे उसका जीविका चलता है, तत्सम्बन्धी जातक विद्याध्ययन करता है। आशा है पाठकगण इन संस्कारों से सम्यक् रूप से अवगत हो पायेंगे तथा स्वजीवन में उसका उपयोग कर सकेंगे।

1.6 पारिभाषिक शब्दावली

गृहनिर्माण- घर बनाना

गृहस्थ – गृह में रहने वाला गृहस्थ

शिलान्यास – गृहनिर्माण से पूर्व उसकी नींव सम्बन्धित पूजन कर किया गया कार्य

काकिणी - गृहनिर्माण सम्बन्धित किया जाने वाला विचार

अग्निकोण – पूर्व एवं दक्षिण के कोण

वह्नि – आग

इष्टिका – ईंट

1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

वास्तुराजवल्लभ – चौखम्भा प्रकाशन , वाराणसी

मुहूर्त्तचिन्तामणि – चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी

वृहद्वास्तुमाला - चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी

ज्योतिष सर्वस्व - चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी

मयमतम् - चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी

1.8 बोधप्रश्नों के उत्तर

1. क
2. ख
3. ग
4. ग
5. घ

1.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. शिलान्यास को परिभाषित करते हुये सविस्तार वर्णन कीजिये ।
2. शिलान्यास विधि को समझाते हुये भूमि संशोधन को स्पष्ट कीजिये।

इकाई – 2 गृहारम्भ

इकाई की संरचना

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 गृहारम्भ का परिचय
2.4 गृहारम्भ स्वरूप व महत्व
बोध प्रश्न
2.5 सारांशः
2.6 पारिभाषिक शब्दावली
2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
2.8 बोधप्रश्नों के उत्तर
2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई तृतीय खण्ड **गृहारम्भ एवं गृहप्रवेश मुहूर्त्त** के द्वितीय इकाई '**गृहारम्भ**' नामक शीर्षक से सम्बन्धित है । मानव मात्र के तीन मूलभुत आवश्यकतायें है – भोजन, वस्त्र एवं आवास। आवास का सम्बन्ध गृह निर्माण से है।

मनुष्य अपने स्वजनों के साथ जहॉ निवास करता है, वही उसका आवास होता है । गृह निर्माण आरम्भ करने से सम्बन्धित प्रक्रिया को **गृहारम्भ** कहते है।

इससे पूर्व की इकाईयों में आपने शिलान्यास का ज्ञान प्राप्त कर लिया है । यहॉ इस इकाई में आप गृहारम्भ सम्बन्धित ज्ञान प्राप्त करेंगे।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप-

1. **गृहारम्भ** को परिभाषित करने में समर्थ हो सकेंगे।
2. **गृहारम्भ** के महत्त्व को समझा सकेंगे।
3. **गृहारम्भ** विधि के विभेद का निरूपण करने में समर्थ होंगे।
4. **गृहारम्भ** विधि का स्वरूप वर्णन करने में समर्थ होंगे।
5. **गृहारम्भ** विधि को निरूपित करने में समर्थ हो सकेंगे ।

2.3 गृहारम्भ परिचय

गृहारम्भ विधि -

द्वारशुद्धिं निरीक्ष्यादौ भशुद्धिं वृषचक्रत: ।
निष्पंके स्थिरे लग्ने द्वयंगे वालयमारभेत् ।।
त्यक्त्वा कुजार्कयोश्चांशं पृष्ठे चाग्रे स्थितं विधुम् ।
बूधेज्यराशिगं चार्कं कुर्याद् गेहं शुभाप्तये ।।

सर्वप्रथम द्वारशुद्धि का विचार कर वृषचक्र के अनुसार नक्षत्र शुद्धि देखें, पंचक धनिष्ठा से रेवती तक के नक्षत्रों को छोड़कर स्थिर अथवा द्विस्वभाव लग्न में गृहारम्भ करना चाहिये । मंगल और सूर्य का अंश, आगे तथा पीछे का चन्द्रमा एवं मिथुन, कन्या, धनु एवं मीन राशि के सूर्य को छोड़कर गृहारम्भ करे।

गृहनिर्माण में हेतु –

स्त्रीपुत्रादिकभोगसौख्यजननं धर्म्मार्थकामप्रदम् ।
जन्तूनामयनं सुखास्पदमिदं शीताम्बुघर्मापहम् ।।
वापीदेवगृहादिपुण्यमखिलं गेहात्समुत्पद्यते ।
गेहं पूर्वमुशन्ति तेन विबुधा: श्रीविश्वकर्म्मादय: ।।

स्त्री पुत्र आदि के भोग, सुख, धर्म, अर्थ, काम को देने वाला, प्राणियों के सुख का स्थान और सर्दी, वायु, गर्मी, आदि कष्टों से रक्षा करने वाला गृह ही है । विधिवत् गृहनिर्माणकर्ता को बावड़ी, देवालय, आदि के निर्माण का पुण्य भी प्राप्त होता है, अतएव विश्वकर्मा आदि देवशिल्पियों ने सर्वप्रथम गृहनिर्माण का निर्देश किया है।

अपि च –

कोटिघ्नं तृणजे पुण्यं मृण्मये दशसंगुणम् ।
ऐष्टिके शतकोटिघ्नं शैलेऽनन्तं फलं गृहे ।।

पर्णशाला बनाने से कोटि गुण, मिट्टी का घर बनाने से दस करोड़ गुण, ईंट का गृह बनाने से सौ करोड़ गुण और पत्थरों द्वारा घर बनाने से अनन्त फलों की प्राप्ति होती है।

परगृह निवास फलम् –

परगेहकृतास्सर्वाः श्रौतस्मार्तक्रियाः शुभाः ।
निष्फलाः स्युर्यतस्तासां भूमीशः फलमश्नुते ।।

दूसरे के घर में बिना शुल्क दिये रहकर किये गये श्रौत स्मार्त आदि समस्त शुभकार्य अपने लिये निष्फल हो जाते है, क्योंकि उनका फल भूस्वामी को प्राप्त होता है।

गृहारम्भे कालशुद्धि –

गृहेशतत्स्त्रीसुतवित्तनाशोऽर्केन्द्वीज्यशुक्रे विबलेऽस्तनीचे ।
कर्तुः स्थितिर्नो विधुवास्तुनोर्भे पुरःस्थिते पृष्ठगते खनिः स्यात् ।।

अर्थ – सूर्य, चन्द्र, गुरू और शुक्र के निर्बल, अस्त और नीच राशि में स्थित होने पर क्रम से गृहस्वामी, गृहेश की पत्नी, सुख और धन का नाश होता है । अर्थात् यदि सूर्य निर्बल, एवं नीच राशिगत हो तो गृहस्वामी का, चन्द्रमा निर्बल एवं नीच हो तो स्त्री का, गुरू निर्बल अस्त एवं नीच राशिगत हो तो सुख का तथा शुक्र यदि निर्बल – अस्त और नीच हो तो धन का नाश होता है।

चान्द्र नक्षत्र और वास्तु नक्षत्र दोनों के गृह के सम्मुख दिशा में रहने से गृहस्वामी का निवास उस गृह में नहीं होता तथा उक्त दोनों नक्षत्रों के गृह के पृष्ठभाग में स्थित रहने पर चौर भय होता है।

गृहों के नाम –

ध्रुवधान्ये जयनन्दौ खरकान्तमनोरमं सुमुख दुर्मुखोग्रं च ।
रिपुदं वित्तद नाशे चाक्रन्द विपुल विजयाख्यं स्यात् ।।

1. ध्रुव 2. धान्य, 3. जय 4. नन्द 5. खर 6. कान्त 7. मनोरम 8. सुमुख 9. दुर्मुख, 10. उग्र 11. रिपुद 12. वित्तद 13. नाश 14. आक्रन्द 15. विपुल 16. विजय ये क्रम से 16 गृहों के नाम है।

ध्रुवादि नाम साधन। गृह में पूर्व और उत्तर द्वार अभीष्ट है। अत: शाला ध्रुवांक योग 1 + 8 = 9, 9 + 1 = 10 योग संख्या 10 है। अत: दसवें गृह का नाम उग्र दो अक्षरों वाला हुआ ।

अंश साधन – पूर्वसाधित व्यय – 1, ध्रुवादि गृह की नामाक्षर संख्या – 2 गृहपिण्ड - 101, 1 + 2 = 3 + 101 = 104 ÷ 3 = शेष 2 अत: यम अंश हुआ।

नक्षत्रानुसार शुभाशुभ विचार –

वास्तुरत्नावली में यह कहा गया है कि जन्म नक्षत्र के अनुसार भी गृह में या नगर में वास करना चाहिये।

अभीष्ट नगर या गॉव के नक्षत्र से गणना कर इस प्रकार नक्षत्र स्थापित करके देखें जहॉ अपना जन्म नक्षत्र पड़े। तदनुसार शहर में निवास का शुभाशुभ विचार करें।

पुरूषाकृति ग्राम वास चक्र –

अंग	मस्तक	मुख	पेट	पाद	पीठ	नाभि	गुदा	दायॉ हाथ	बायॉ हाथ
नक्षत्र	5	3	5	6	1	4	1	1	1
फल	लाभ	धन हानि	धन धान्य	स्त्री हानि	हानि	सम्पत्ति	भय पीड़ा	युद्ध	विलाप

उदाहरणार्थ किसी व्यक्ति का जन्म नक्षत्र आर्द्रा है। दिल्ली का नक्षत्र पू0भा0 है। पूर्वा भाद्रपद से गणना करने पर आर्द्रा नौवॉ नक्षत्र आया। जो पेट पर पड़ता है। अत: धन धान्य वृद्धि दिल्ली में रहने का फल आया।

अथव ग्राम नक्षत्र से 7 -7 नक्षत्र क्रमश: मस्तक, पीठ, हृदय व पैरों पर मान कर देखें। मस्तक में धन व मान, पृष्ठ में हानि व निर्धनता हृदय पर सुख सम्पत्ति व पैरों पर अस्थिरता रहती है। यहॉ अपने नाम नक्षत्र से देखा जायेगा। उदाहरण में दिल्ली के नक्षत्र से विचारणीय व्यक्ति शुभदर्शन का नाम नक्षत्र शतभिषा पूर्वाभाद्रपद से गणना करने पर अन्तिम सप्तक अर्थात् पैरों पर पड़ता है जो कि मन की अस्थिरता का द्योतक है।

गृहराशि विचार –

मेष में अश्विनी से नक्षत्र, सिंह में मघा से 3 नक्षत्र व धनु में मूल से 3 नक्षत्र होते है। अन्य सभी राशियॉ यथा क्रम 2.2 नक्षत्रों की होती है।

अश्विन्यादि त्रयं मेषे सिंहे प्रोक्तं मघा त्रयम्।
मूलादित्रितयं चापे शेषभेषु द्वयं द्वयम्॥

शाला से शुभाशुभ - बाल्कनी, प्रवेश लॉबी, ऑगन कहॉ बनायें यह ध्यान रखना चाहिये। इससे भी शुभाशुभ होता है। यदि उक्त चीजें न हों तो गृह में जिधर बाहर खुलने वाले दरवाजे बनायें उससे भी विचार किया जा सकता है।

पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, तथा उत्तर इस क्रम से 1,2,4,8 ये ध्रुवांक है। जिधर शाला हो उसके ध्रुवांको में 1 जोड़कर जो संख्या बने, वही निम्नानुसार गृह का नाम या संज्ञा होती है। तदनुसार फल शुभ नाम से शुभ या अशुभ से अशुभ होगा –

1. ध्रुव
2. धान्य
3. जय
4. नन्द

5. खर
6. कान्त
7. मनोरम
8. प्रमुख
9. दुर्मुख
10. क्रूर
11. रिपुद
12. धनद
13. क्षय
14. आक्रान्द
15. विपुल
16. विजय

ध्यातव्य हो कि यदि चारों दिशाओं में द्वार शालादि बनती हो तब यह पूर्वोक्त विचार नहीं करना है। उक्त उदाहरण वाले व्यक्ति शुभदर्शन के फ्लैट में यथोचित परिवर्तन क्षेत्रफल में करवा दिया गया है। अब दरवाजा व बाल्कनी उत्तर व दक्षिण पूर्व के कोने में निर्माण करवानी है।

पूर्वांक 1 + दक्षिण दिशांक 8 = 9 + 1 अतिरिक्त तो 10 वॉं घर क्रूर होगा। यह ठीक नहीं है। अत: हम शुभदर्शन जी को सलाह देते हैं कि आप अपने गृह मं सम्भव हो तो बाल्कनी दक्षिण पश्चिम में या पूर्व दिशा में अग्निकोण से हटाकर बनायें तो शुभ होगा।

यदि मकान बनवाते समय कुशल वास्तुविद् ज्योतिषी से सलाह लेते है, तो निश्चित ही कल्याणकारी सिद्ध होगा।

2.4 बोध प्रश्न

1. गृह निर्माण आरम्भ करने से सम्बन्धित प्रक्रिया को कहते है।

क. गृहारम्भ ख. द्वारस्थापन ग. शीलान्यास घ. गृह

2. गृहारम्भ में नक्षत्रशुद्धि देखी जाती है।

क. वास्तु चक्र से ख. वृष वास्तु चक्र से ग. काकिणी से घ. कोई नही

3. **खनि** शब्द का अर्थ है -

क. शुद्ध ख. हानि ग. चोरी घ. लाभ

4. यदि स्थान के नक्षत्र से व्यक्ति का नक्षत्र पॉंचवा हो तो फल होता है।

क. लाभ ख. धनहानि ग. सम्पत्ति घ. कोई नही

5. निम्नलिखित में गृहों के नाम नहीं है।

क. ध्रुव ख. धान्य ग. जय घ. आनन्द

गृह निर्माणारम्भ – वैशाख, श्रावण, मार्गशीर्ष, माघ, फाल्गुन मासों में 3,6,9 राशियों की संक्रान्ति को छोड़कर गृहारम्भ करना चाहिये। कार्तिक मास निर्माणारम्भ के लिये मध्यम है।

1,4,9,14,30 तिथियों को छोड़कर शेष वारों में, जहॉ तक हो सके शुक्ल पक्ष में अग्नि, मृत्यु, बाणादि की शुद्धि देखकर व भूमिशयन न होने पर गृह निर्माणारम्भ करें।

वेधरहित चित्रा, अनुराधा, मृगशिरा, रेवती, स्वाती, पुष्य, तीनों उत्तरा, रोहिणी, धनिष्ठा, हस्त, पुनर्वसु, शतभिषा, नक्षत्रों में पूर्ववत् लग्न शुद्धि देखकर गृहारम्भ करना चाहिये। चर लग्न को गृहारम्भ में वर्जित करना चाहिये।

तिथ्यादि शुद्धि –

भौमार्करिक्तामाद्यूने चरोनेऽङ्गे विपंचके।
व्यष्ठान्त्यस्थैः शुभैर्गेहारम्भस्त्रयायारिगैः खलैः॥

मंगल और रविवार को छोड़कर अन्य वारों में 4,9,14,30,1 तथा किसी के मत से अष्टमी को भी त्याग कर शेष तिथियों में, चर लग्न मे, क, तु, म, रहित लग्न में, बाण पंचक स्पष्ट सूर्य के भुक्तांश 2,11,20,29 हों तो अग्नि दोष रहित काल में, लग्न से शुभग्रह 12,8 से अतिरिक्त स्थान में और पापग्रह 3,6,11 वे हो तो गृह निर्माणारम्भ शुभ है।

गृहारम्भ में निषेध –

गृहेशतत्स्त्रीसुतवित्तनाशो
ऽर्केन्द्वीज्यशुक्रे विबलेऽस्तनीचे।
कर्तुः स्थितिर्नो विधुवास्तुनोर्भे॥
पुरः स्थिते पृष्ठगते खनिः स्यात्॥

गृहारम्भ के समय गृहकर्ता के सूर्य, चन्द्रमा, वृहस्पति और शुक्र निर्बल हो, अस्त हो या नीच के हो तो क्रम से गृहेश, उसकी स्त्री, सुख और धन का नाश होता है। चन्द्रमा नक्षत्र तथा वास्तु नक्षत्र सम्मुख पड़े तो गृहकर्ता का उसमें वास न हो, यदि पृष्ठगत पड़े तो खनि (चोरी) होती है।

गृहारम्भ में नक्षत्र और वार से विशेष फल –

पुष्यध्रुवेन्दु हरिसर्पजलैः सजीवै।
स्तद्वासरेण च कृतं सुतराज्यदं स्यात्॥
द्वीशाष्वितक्षवसुपाशिशिवैः सशुक्रै।
वरि सितस्य च गृहं धनधान्यदं स्यात्॥
सारैः करेज्यान्त्यमघाम्बुमूलैः कौजे
ऽह्नि वेश्माग्निसुतार्विदं स्यात्॥
सज्ञैः कदास्त्रार्यमतक्षहस्तैर्ज्ञस्यैव।
वारे सुखपुत्रदं स्यात्॥
अजैकपादहिर्बुध्न्यशक्रमित्रानिलान्तकैः।
समन्दैर्मन्दवारे स्याद्रक्षोभूतयुते गृहम्॥

पुष्य, तीनों उत्तरा, रोहिणी, मृगशिरा, श्रवण, आश्लेषा, पूषा इनमें से कोई नक्षत्र में वृहस्पति हो और वृहस्पति वार हो तो गृहारम्भ करने से पुत्र और धन की प्राप्ति हो, तथा विशाखा, अश्विनी, चित्रा, धनिष्ठा, शततारा, आर्द्रा इनमें से किसी नक्षत्र से युक्त शुक्र और शुक्र ही के वार में गृहारम्भ करने

से धन – धान्यदायक होता है।

हस्त, पुष्य, रेवती, मघा, पूषा, मूल इनमें से किसी नक्षत्र से युक्त मंगल और मंगलवार भी हो तो गृहारम्भ करने से अग्निभय और पुत्र को पीड़ा हो तथा यदि रोहिणी, अश्विनी, उ0फा0, चित्रा, हस्त इनमें से किसी नक्षत्र से युक्त बुध हो और बुधवार भी हो तो गृहारम्भ करने से पुत्रसुख होता है।

पू0भा0, उ0भा0, ज्येष्ठा, अनुराधा, रेवती, स्वाती, भरणी इनमें से किसी नक्षत्र से युक्त शनि और शनिवार भी हो तो ऐसे योग में गृहारम्भ करने से वह गृह राक्षस और भूत से युक्त होता है।

लक्ष्मीयुक्त गृह के योग –

स्वोच्चे शुक्रे लग्नगे वा गुरौ वेश्मगतेऽथ वा।
शनौ स्वोच्चे लाभगे वा लक्ष्म्यायुक्तं चिरं गृहम्॥

लग्न में उच्च का शुक्र हो या चतुर्थ स्थान में उच्च का वृहस्पति हो अथवा उच्च् का शनि एकादश में रहने से गृहारम्भ करने पर गृह दीर्घकाल तक लक्ष्मी से युक्त रहता है।

गृहप्रवेश का मुहूर्त्त –

माघफाल्गुनवैशाखज्येष्ठमासेषु शोभनः।
प्रवेशो मध्यमो ज्ञेयः सौम्यकार्तिकमासयोः॥
प्रविशेन्नूतनं हर्म्यं ध्रुवैर्मैत्रैः सुखाप्तये।
यद्दिङ्मुखं गृहद्वारं तद्द्वारर्क्षे गृहं विशेत्॥

गृहप्रवेश में माघ, फाल्गुन, वैशाख और ज्येष्ठ मास शुभ तथा मार्गशीर्ष और कार्तिक मास मध्यम है। तीनों उत्तरा, रोहिणी, मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा अथवा द्वार के नक्षत्र में नवीन गृह में प्रवेश करना शुभ है।

विशेष - पूर्वादि दिशा में क्रम से कृत्तिकादि सात – सात नक्षत्र समझना चाहिये। यथा गृह का द्वार पूर्व दिशा में हो तो कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य और आश्लेषा ये सात नक्षत्र प्रशस्त है।

गृहशांति पूजन –

जब किसी भवन, गृह आदि का निर्माण पूर्ण हो जाता है, एवं गृहप्रवेश के पूर्व जो पूजन किया जाता है, उसे **गृहशांति पूजन** कहते है। यह पूजन एक अत्यंत आवश्यक पूजन है, जिससे गृह-वास्तु-मंडल में स्थित देवता उस मकान आदि में रहने वाले लोगों को सुख, शांति, समृद्धि देने में सहायक होते हैं। यदि किसी नये गृह में गृहशांति पूजन आदि न करवाया जाए तो गृह-वास्तु -देवता लोगों के लिए सर्वथा एवं सर्वदा विघ्न करते रहते है। गृह, पुर एवं देवालय के सूत्रपात के समय, भूमिशोधन, द्वारस्थापन, शिलान्यास एवं गृहप्रवेश इन पांचों के आरम्भ में वास्तुशांति आवश्यक है। गृह-प्रवेश के आरंभ में गृह-वास्तु की शांति अवश्य कर लेनी चाहिए। यह गृह मनुष्य के लिए ऐहिक एवं पारलोकिक सुख तथा शान्तिप्रद बने इस उद्देश्य से गृह वास्तु शांति कर्म का प्रतिपादन ऋषियों द्वारा किया गया। कर्मकाण्ड में वास्तुशांति का विषय अत्यधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि, जरा सी भी त्रुटि रह जाने से लाखों एवं करोडों रूपये व्यय करके बनाया हुआ गृह जरा से समय मे भूतों का निवास अथवा गृहनिर्माणकर्ता, शिल्पकार अथवा गृहवास्तु शांति कराने वाले विद्वान के लिए घातक

हो सकता है। वास्तुशांति करवाने वाले योग्य पंडित का चुनाव ही महत्वपूर्ण होता है, कारण कि वास्तुशांति का कार्य यदि वैदिक विधि द्वारा पूर्णतः संपन्न नहीं होता तो गृहपिण्ड एवं गृहप्रवेश का मुहूर्त भी निरर्थक हो जाता है। अतः गृह निर्माण कर्ता को कर्मकाण्डी विद्वान का चुनाव अत्यधिक विचारपूर्वक करना चाहिए।

गृहशांति पूजन न करवाने से हानियाँ -

- गृहवास्तु दोषों के कारण गह निर्माता को तरहतरह की विपत्तियों का सामना करना पडता - है।
- यदि गृहप्रवेश के पूर्व गृहशांति पूजन नहीं किया जाए तो दुस्वप्न आते हैं, अकालमृत्यु, अमंगल संकट आदि का भय हमेशा रहता है।
- गृहनिर्माता को भयंकर ऋणग्रस्तता, का समना करना पडता है, एवं ऋण से छुटकारा भी जल्दी से नहीं मिलता, ऋण बढता ही जाता है।
- घर का वातावरण हमेशा कलह एवं अशांति पूर्ण रहता है। घर में रहने वाले लोगों के मन में मनमुटाव बना रहता है। वैवाहि जीवन भी सुखमय नहीं होता।
- उस घर के लोग हमेशा किसी न किसी बीमारी से पीडित रहते है, तथा वह घर हमेशा बीमारीयों का डेरा बन जाता है।
- गहनिर्माता को पुत्रों से वियोग आदि संकटों का सामना करना पड सकता है।
- जिस गृह में वास्तु दोष आदि होते है, उस घर मे बरकत नहीं रहती अर्थात् धन टिकता नहीं है। आय से अधिक खर्च होने लगता है।
- जिस गृह में बलिदान तथा ब्राहमण भोजन आदि कभी न हुआ हो ऐसे गृह में कभी भी प्रवेश नहीं करना चाहिए। क्योंकि वह गृह आकस्मिक विपत्तियों को प्रदान करता है।

गृहशांति पूजन करवाने से लाभ

- यदि गृहस्वामी गृहप्रवेश के पूर्व गृहशांति पूजन संपन्न कराता है, तो वह सदैव सुख को प्राप्त करता है।
- लक्ष्मी का स्थाई निवास रहता है, गृह निर्माता को धन से संबंधित ऋण आदि की समस्याओं का सामना नहीं करना पडता है।
- घर का वातावरण भी शांत, सुकून प्रदान करने वाला होता है। बीमारीयों से बचाव होता है।
- घर मे रहने वाले लोग प्रसन्नता, आनंद आदि का अनुभव करते है।
- किसी भी प्रकार के अमंगल, अनिष्ट आदि होने की संभावना समाप्त हो जाती है।
- घर में देवीदेवताओं का वास होता है-, उनके प्रभाव से भूतप्रेतादि की बाधाएं नहीं होती - एवं उनका जोर नहीं चलता।
- घर में वास्तुदोष नहीं होने से एवं गृह वास्तु देवता के प्रसन्न होने से हर क्षेत्र में सफलता मिलती है।
- सुसज्जित भवन में गृह स्वामी अपनी धर्मपत्नी तथा परिवारीकजनों के साथ मंगल गीतादि

से युक्त होकर यदि नवीन गृह में प्रवेश करता है तो वह अत्यधिक श्रैष्ठ फलदायक होता है।

2.5 सारांश

इस इकाई में आपने गृहारम्भ से सम्बन्धित विषयों का अध्ययन किया है। गृह मनुष्य के मूलभुत आवश्यकताओं में एक माना जाता है। मनुष्य के निवास स्थल के लिये गृह का होना आवश्यक है, गृह वह स्थल होता है जहॉ मनुष्य अपने परिवार के साथ निवास करता है, और अपना जीवन यापन करता है। इस इकाई में ज्योतिष शास्त्र के माध्यम से यह बतलाया गया है कि मनुष्य को गृहारम्भ कब कराना शुभ होता है, गृह में कौन सी चिजें कहॉ होना चाहिये आदि। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप गृहारम्भ से सम्बन्धित बातों को भली भॉति समझ सकेंगे।

2.6 पारिभाषिक शब्दावली

गृहनिर्माण – गृहाणां सम्बन्धिनां निर्माणं गृहनिर्माणम्।

गृहारम्भ – गृहनिर्माण सम्बन्धिकार्यारम्भ: गृहारम्भ:

काकिणी – गृहप्रवेश में किया जाने वाला विचार

तिथिशुद्धि - तिथिनां शुद्धि: तिथिशुद्धि:।

अमंगल – हानि

अकालमृत्यु – असमय मृत्यु

ऋणग्रस्तता – ऋण से ग्रस्त

गृहकर्ता – गृह बनाने वाले को

निरर्थक – बेकार

लग्नगे – लग्न में गया हुआ

2.7 बोधप्रश्नों के उत्तर

1. क
2. ख
3. ग
4. क
5. घ

2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

वास्तुराजवल्लभ - चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी

मुहूर्त्तचिन्तामणि - चौखम्भा प्रकाशन

वृहद्वास्तुमाला - चौखम्भा प्रकाशन

ज्योतिष सर्वस्व - चौखम्भा प्रकाशन

मयमतम् – चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी

2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. गृहारम्भ को परिभाषित करते हुये सविस्तार वर्णन कीजिये ।
2. गृहारम्भ निर्माण में आवश्यक तत्व कौन – कौन से है, स्पष्ट कीजिये।
3. तिथि शुद्धि से क्या तात्पर्य है। स्पष्ट करते हुये लिखिये।

इकाई – 3 द्वारस्थापन

इकाई संरचना

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 द्वारस्थापन का परिचय व स्वरूप
द्वारस्थापन
बोध प्रश्न
3.5 सारांशः
3.6 पारिभाषिक शब्दावली
3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
3.8 बोधप्रश्नों के उत्तर
3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई तृतीय खण्ड **गृहारम्भ एवं गृहप्रवेश मुहूर्त्त** के तृतीय इकाई '**द्वारस्थापन** नामक शीर्षक से सम्बन्धित है । गृहनिर्माण प्रक्रिया में शिलान्यास के पश्चात् द्वारस्थापन का कार्य होता है।

गृह निर्माण प्रक्रिया में गृह में द्वार लगाने की प्रक्रिया को द्वारस्थापन कहते है। गृह में द्वारस्थापन अति आवश्यक अंग है। द्वार के बिना गृह शोभाहीन होता है।

इससे पूर्व की इकाईयों में आपने शिलान्यास, गृहारम्भ का ज्ञान प्राप्त कर लिया है। यहॉ इस इकाई में आप द्वारस्थापन सम्बन्धित ज्ञान प्राप्त करेंगे।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप-

1. **द्वारस्थापन** को परिभाषित करने में समर्थ हो सकेंगे।
2. **द्वारस्थापन** के महत्त्व को समझा सकेंगे।
3. **द्वारस्थापन** विधि के विभेद का निरूपण करने में समर्थ होंगे।
4. **द्वारस्थापन** विधि का स्वरूप वर्णन करने में समर्थ होंगे।
5. **द्वारस्थापन** विधि को निरूपित करने में समर्थ हो सकेंगे ।

3.3 द्वारस्थापन परिचय

गृह में द्वारस्थापन का कार्य आचार्यों के द्वारा प्रत्येक वर्णों के लिये पृथक् – पृथक् कहा गया है। यथा -

पूर्वे ब्राह्मणराशीनां वैश्यानां दक्षिण शुभम्।
शूद्राणां पश्चिमे द्वार नृपाणामुत्तरे मतम्॥

ब्राह्मण राशि के लिये पूर्वद्वार, क्षत्रियराशि के लिये उत्तर द्वार वैश्य राशि के लिये दक्षिण द्वार और शूद्रराशि के लिये पश्चिम द्वार शुभ है।

महेश्वर मत में द्वार विचार –

सर्वद्वार इहध्वजो वरूणदिग्द्वारं च हित्वा हरि:।
प्राग्द्वारो वृषभोगजोयमसुरेशाशामुख: स्याच्छुभ:॥

पूर्ववर्णित ध्वज आय को सभी दिशाओं में द्वार शुभ होता है, सिंह आय को पश्चिम के अतिरिक्त अन्य द्वार भी शुभ होते है। वृष आय को पूर्वद्वार और गज आय को दक्षिण और पूर्व द्वार शुभ होते है

आयवर्णदृष्ट्या द्वार विचार –

ध्वजे प्रतीच्यां मुखमग्रजाना
मुदङ्मुखं भूमिभृतां च सिंहे।

विशो वृषे प्राग्वदनं गजे तु
शूद्रस्य याम्यां हि समामनन्ति ॥

ध्वज आय और ब्राह्मण वर्ण को पश्चिम मुख द्वार सिंह आय, क्षत्रिय वर्ण का उत्तर द्वार, वृष आय, वैश्य वर्ण को पूर्व मुख द्वार और गजआय, शूद्र जाति को दक्षिण मुख द्वार शुभ होता है।

मार्तण्डोक्त द्वारविचार –

पूर्वादौ त्रिषडर्थपञ्चमलवेद्वा: सव्यतोऽङ्कौद्धृते।
दैर्घ्ये व्यंशसमुच्छ्रिताब्धिलवके सर्वासुदिक्षूतिदता ॥

वराहमिहिरोक्त द्वारवेध फलम् –

मार्ग तरू कोण कूप स्तम्भ भ्रम विद्धमशुभदं द्वारम्।
उच्छ्रायाद्द्विगुणमितां त्यक्त्वा भूमिं न दोषाय ॥

मार्ग, वृक्ष , कोण, कूप,स्तम्भ, चक्र से वेधयुक्त द्वार अशुभ होता है। किन्तु द्वार की उँचाई से दूरी पर ये सब हों तो उक्त दोष नहीं होते।

विशेष फल विचार –

रथ्या विद्धं द्वारं नाशाय कुमारदोषदं तरूणा।
पङ्द्वारे शोकोव्ययोऽम्बु नि:स्राविणिप्रोक्त: ॥
कूपेनापस्मारो भवति विनाशश्च देवताविद्धे।
स्तम्भेन स्त्रीदोषा: कुलनाशो ब्राह्मणाभिमुखे ॥

मार्ग से वेध युक्त गृह द्वार गृहपति का नाश करता है। वृक्ष से वेध युक्त गृह द्वार बालकों के लिये अहित कारक होता है, पंक विद्ध द्वार शोक करता है। जल निकलने वाले मार्ग से विद्ध द्वार धन व्यय कराता है, कुँए से विद्ध द्वार अपस्मार रोग देता है, देव मूर्ति से विद्धद्वार विनाश कारक होता है। स्तम्भ विद्ध द्वार स्त्री को दुश्चरित्र बनाता है, ब्राह्मण से विद्ध द्वार कुल नाश कराता है।

द्वार विषय में विशेष विचार –

उन्माद: स्वयमुद्घाटितेऽथ पिहिते स्वयं कुलविनाश:।
मानाधिके नृपभयं दस्युभयं व्यसनमेव नीचे च ॥
द्वार द्वारस्योपरि यत्तन्न शिवाय शंकटं यच्च।
आव्यात्तं क्षुद्भयं कुब्जं कुलनाशनं भवति ॥
पीडाकरमतिपीडितमन्तविनतं भवेदभावाय।
वाह्यविनते प्रवासो दिग्भ्रान्ते दस्युभि: पीडा ॥

दरवाजा यदि अपने आप खुलता हो तो उन्माद रोग होता है। स्वयं बन्द हो तो कुल नाश, प्रमाण से अधिक हो तो राजभय, प्रमाण से कम हो तो चोर भय और शारीरिक कष्ट होता है। द्वार के उपर द्वार शुभ नहीं होता है। मोटाई में कमद्वार भी अच्छा नहीं होता, जो अधिक मोटा दरवाजा होता है वह भूख का भय कराता है। यदि टेढ़ा हो तो कुल का नाश करता है द्वार पर यदि गूलर का पेड़ हो तो गृहपति को कष्ट देता है। गृह के भीतर झुकाव हो तो गृहपति का मरण होता है यदि बाहर की ओर झुका हो तो परदेश में निवास करता है और यदि दूसरी दिशा में झुका हो तो चोर पीड़ादायक होता है

तत्र विशेष विचार: -

मूलद्वारं नान्यैर्द्वारैरभिसन्दधीत रूपर्द्धया।
घटफलपत्रप्रमथादिभिष्च तन्मंगलैश्चिनुयात् ।।

प्रधान द्वार की रचना जिस प्रकार की गई हो अन्य द्वारों की भी उसी प्रकार करे और उसको कलश, श्रीफल, लता, पत्र एवं सिंह आदि के चित्रों से अलंकृत करना चाहिये।

वृहत्संहितोक्त द्वारों का शुभाशुभफल –

अनिलभयं स्त्रीजननं प्रभूतधनता नरेन्द्रवाल्लभ्यम् ।
क्रोधपरतानृतत्वं क्रौर्यं चौर्यं च पूर्वेण ।।

गृह भित्ति दीवार के 9 विभाग करने से प्रत्येक भित्ति में आठ – आठ द्वार होते है इस प्रकार चारों भित्तियों के 32 द्वार होते है। पूर्व के 8 द्वारों का फल प्रथम शिखिद्वार से वायु भय, द्वितीय पर्जन्य द्वार से कन्या लाभ, तृतीय जयन्त द्वार से धनलाभ, चतुर्थ इन्द्र द्वार से राजप्रियता, पंचम सूर्य द्वार से क्रोध की अधिकता, षष्ठ सत्य द्वार से असत्यता, सप्तम भृशद्वार से क्रूरता और अष्टम अन्तरिक्ष द्वार से चौर भय होता है।

अल्पसुतत्वं प्रैष्यं नीचत्वं भक्ष्यपानसुतवृद्धिः ।
रौद्रं कृतघ्नमधतं सुतवीर्यघ्नं च याम्येन ।।

दक्षिण के 8 द्वारों का फल – प्रथम अनिल द्वार से पुत्रों की संख्या में कभी द्वितीय पौष्ण द्वार से दासवृत्ति, तृतीय विघद्वार से नीचता, चतुर्थ वृहत्क्षत द्वार से भक्ष्यपान, पुत्र वृद्धि, पंचम याम्य द्वार से अशुभ, षष्ठ गन्धर्वद्वार से कृतघ्न, सप्तम भृंगराज द्वार से धन हीनता और अष्टम मृगद्वार से बल नाश होता है।

सुतपीडारिपुवृद्धिर्नसुतधनाप्तिः सुतार्थफलसम्पत् ।
धनसम्पन्नृपतिभयं धनक्षयो रोग इत्यपरे ।।

पश्चिम के 8 द्वारों का फल – प्रथम पितृद्वार से पुत्र कष्ट, द्वितीय दौवारिक द्वार से शत्रुवृद्धि, तृतीय सुग्रीव द्वार से धन, पुत्र हानि, चतुर्थ कुसुभदन्त द्वार से पुत्र धन फल की प्राप्ति, पंचम वरूण द्वार से धन- सम्पत्ति, षष्ठ असुर द्वार से राजभय, सप्तम शोष द्वार से धन नाश, और अष्टम पापयक्ष्मा द्वार से रोग भय होता है।

वधवन्धो रिपुवृद्धिः सुतधनलाभः समस्तगुण सम्पत् ।
पुत्रधनाप्तिर्वैरं सुतेन दोषाः स्त्रिया नैःस्वम् ।।

उत्तर के 8 द्वारों का फल –

प्रथम रोग द्वार से बध – बन्धन, द्वितीय सार्प द्वार से रिपुवृद्धि, तृतीय मुख्य द्वार से पुत्र धन लाभ, चतुर्थ भल्लाट द्वार से सद – गुण – सम्पत्ति, पंचम सौभ्य द्वार से पुत्र धन लाभ, षष्ठ भुजंग द्वार से पुत्र वैर, सप्तम आदित्य द्वार से स्त्रीजन्म दोष और अष्टम दिति द्वार से निर्धनता होती है।

रामदैवज्ञ के मत मे द्वार चक्रम् –

सूर्यर्क्षाद्युगभैः शिरस्यथ फलं लक्ष्मीस्ततः कोणभै ।
र्नागैरूद्वसनं ततो गजमितैः शाखासु सौख्यं भवेत् ।।
देहल्यां गुणभैमृतिर्गृहपतेर्मध्यस्थितैर्वेदभैः ।

सौख्यं चक्रमिदं विलोक्य सुधिया द्वारं विधेयं शुभम् ।।

सूर्य के नक्षत्र से द्वारचक्र का विचार करके द्वार निर्माण करने से लक्ष्मी प्राप्ति, 8 नक्षत्र कोण में दें इनसे उद्वास (परदेश जाने की इच्छा) 8 नक्षत्र शाखा मेंदे इनसे सुख फिर 3 नक्षत्र देहली में दें, इसमें गृहपति की मृत्यु, 4 नक्षत्र बीच में दें इनसे सुख प्राप्ति होता है। इस चक्र के द्वारा निर्माण शुभ होता है।

द्वारस्थापने शुभनक्षत्राणि –

द्वारस्थापननक्षत्राण्युच्यन्तेश्विनि चोत्तरा: ।

स्वातौ पूष्णि च रोहिण्यां द्वारशाखावरोपणम् ।।

अश्विनी, तीनों उत्तरा, स्वाती, रोहिणी ये नक्षत्र द्वारस्थापन के लिये शुभ होते है।

द्वारस्थापने तिथिविचार: -

पंचमी धनदा चैव मुनिनन्दवसौ शुभम् ।

प्रतिपत्सु न कर्त्तव्यं कृते दु:खमवाप्नुयात् ।।

द्वितीयायां द्रव्यहानि: पशुपत्रुविनाशनम् ।

तृतीया रोगदा ज्ञेया चतुर्थी भंगकारिणी ।।

कुलक्षयं तथा षष्ठी दशमी धननाशिनी ।

विरोधकृदमा पूर्णा नस्याच्छाखावरोपणम् ।।

पंचमी तिथि में द्वार स्थापन करने से धन लाभ, इसके अतिरिक्त सप्तमी, अष्टमी, नवमी तिथियॉं भी शुभ है। प्रतिपदा तिथि को द्वार स्थापन करने से दु:ख प्राप्ति होती है, अत: यह वर्जित है। तृतीया में रोग चतुर्थ में भंग, षष्ठी में कुलनाश, दशमी में धन नाश और पूर्णिमा, अमावस्या वैरकारक होती है।

3.4 बोध प्रश्न

1. ब्राह्मण राशि के लिये द्वार शुभ होता है।

क. पूर्व द्वार ख. पश्चिम द्वार ग. उत्तर घ. दक्षिण

2. पश्चिम द्वार शुभ होता है।

क. ब्राह्मणों के लिये ख. शूद्रो के लिये ग. वैश्यों के लिये घ. कोई नहीं

3. दरवाजा यदि अपने आप खुलता हो तो कौन सा रोग होता है

क. उन्माद रोग ख. मानसिक रोग ग. नेत्र रोग घ. कोई नहीं

4. पश्चिम के आठ द्वारों के फल में प्रथम द्वार का फल है –

क. पुत्र कष्ट ख. पत्नी कष्ट ग. पिता कष्ट घ. पति कष्ट

भवेत्पूष्णमैत्रे च पुष्ये च शाक्रे ।

करे दस्रचित्रानिलौचादितौ च ।।

गुरूश्चन्द्रशुकार्कसौम्ये च वारे ।

तिथौ नन्दपूर्णाज्याद्वारशाखा ॥

रेवती, अनुराधा, पुष्य, ज्येष्ठा, हस्त, अश्विनी, चित्र, स्वाती और पुनर्वसु नक्षत्र रवि, सोम, बुध, गुरू, शुक्र वार तथा नन्दा जया पूर्णा तिथियॉं द्वार स्थापना में शुभ होती है।

3.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन से आपने जाना कि ब्राह्मण राशि के लिये पूर्वद्वार, क्षत्रियराशि के लिये उत्तर द्वार वैश्य राशि के लिये दक्षिण द्वार और शूद्रराशि के लिये पश्चिम द्वार शुभ है। पूर्ववर्णित ध्वज आय को सभी दिशाओं में द्वार शुभ होता है, सिंह आय को पश्चिम के अतिरिक्त अन्य द्वार भी शुभ होते है। वृष आय को पूर्वद्वार और गज आय को दक्षिण और पूर्व द्वार शुभ होते है। ध्वज आय और ब्राह्मण वर्ण को पश्चिम मुख द्वार सिंह आय, क्षत्रिय वर्ण का उत्तर द्वार, वृष आय, वैश्य वर्ण को पूर्व मुख द्वार और गजआय, शूद्र जाति को दक्षिण मुख द्वार शुभ होता है। द्वारस्थापना गृहारम्भ से जुड़ा एक विभाग है। गृह निर्माण करते समय द्वार का किस दिशा में होना शुभ होता है, इसका विवेचन द्वारस्थापना के अन्तर्गत करते है। यदि मकान का द्वार शुभ होगा तो मकान में रहने वालों के लिये भी उनके जीवन के लिये हितकर होगा। अत: द्वारस्थापना का ज्ञान गृहनिर्माण के लिये परमावश्यक है।

3.6 पारिभाषिक शब्दावली

द्वारस्थापन –

गृहारम्भ –

काकिणी –

तिथिशुद्धि –

द्वारस्थापन ।

3.7 बोधप्रश्नों के उत्तर

1. क
2. ख
3. क
4. क

3.8सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

वास्तुराजवल्लभ

मुहूर्त्तचिन्तामणि

वृहद्वास्तुमाला

ज्योतिष सर्वस्व

3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. द्वारस्थापन को परिभाषित करते हुये सविस्तार वर्णन कीजिये ।
2. ज्योतिषोक्त द्वारस्थापन का मुहूर्त्त लिखते हुये स्पष्ट कीजिये।

इकाई – 4 जीर्ण गृहप्रवेश

इकाई की संरचना

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 जीर्ण गृहप्रवेश विचार

बोध प्रश्न

4.4 सारांश

4.5 पारिभाषिक शब्दावली

4.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

4.8 सहायक पाठ्यसामग्री

4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई तृतीय खण्ड **गृहारम्भ एवं गृहप्रवेश मुहूर्त्त** के चतुर्थ इकाई '**जीर्णगृहप्रवेश** नामक शीर्षक से सम्बन्धित है । इससे पूर्व की इकाईयों में आपने द्वारस्थापन का अध्ययन कर लिया है। अब आप इस इकाई में जीर्णगृहप्रवेश का अध्ययन करने जा रहे है।

जीर्ण का अर्थ है – पुराना। अर्थात् पुराने मकान का नवीन तरीके से निर्माण कर उसमें प्रवेश की क्रिया जीर्णगृहप्रवेश कहलाता है।

मनुष्य अपने जीवन में नूतन गृह के साथ – साथ पुरातन घर का ही जीर्णोद्धार कर उसमें नये तरीके से प्रवेश करता है। प्रवेश सम्बन्धित ज्योतिष शास्त्र में मुहूर्त्त बताये गये है। उसका अनुपालन करते हुए ही जीर्णगृहप्रवेश करना चाहिए।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप-

1. जीर्णगृहप्रवेश क्या है। समझा सकेंगे।
2. जीर्णगृहप्रवेश के महत्त्व को समझा सकेंगे।
3. जीर्णगृहप्रवेश की विधि को समझ लेंगे।
4. जीर्ण गृह का स्वरूप वर्णन करने में समर्थ होंगे।
5. जीर्णगृह का विश्लेषण कर सकेंगे ।

4.3 जीर्णगृहप्रवेश विचार

जीर्ण का शाब्दिक अर्थ है – पुराना। जीर्णगृहप्रवेश में पुराने गृह का जीर्णोद्धार करते हुए या पुर्ननिर्माण करते हुए उसमें प्रवेश करते है । इसका विवेचन करते हुए आचार्य रामदैवज्ञ जी ने मुहूर्त्तचिन्तामणि में लिखा है –

जीर्णे गृहेऽग्न्यादिभयान्नवेऽपि मार्गोर्जयो: श्रवणिकेऽपि सन् स्यात्।
वेशोऽम्बुपेज्यानिलवासवेषु नावश्यमस्तादिविचारणाऽत्र ।।

जीर्ण गृह में तथा अग्निवृष्टि – राजकोप आदि से गृह नष्ट हो जाने पर नवनिर्मित गृह में भी मार्गशीर्ष, कार्तिक, और श्रावण मासों में शतभिष, पुष्य, स्वाती तथा धनिष्ठा नक्षत्रों में भी गृहप्रवेश शुभ होता है। ऐसी स्थिति में गुरू और शुक्र के अस्त आदि का विचार आवश्यक नहीं होता है।

जीर्ण गृह में भी प्रथम प्रवेश की आवश्यकता पड़ती है। जैसे किसी निर्मित प्राचीन गृह को क्रय कर उसमें प्रवेश करना हो या जीर्ण गृह का जीर्णोद्धार कर पुन: उसमें निवास हेतु प्रवेश करना **जीर्णगृह प्रवेश** होता है। यदि वर्षा, बाढ़, भूकम्प, अग्निदाह, राजकीय आदेश आदि से निर्मित गृह ध्वस्त

हो जाय तथा उसी स्थान पर या अन्यत्र सद्य: नवनिर्मित गृह में भी प्रवेश जीर्णगृह की तरह ही उन्हीं मुहूर्त्तों में कर लेना चाहिये।

गृहप्रवेश मुहूर्त्त: -

सौम्यायने ज्येष्ठतपोऽन्त्यमाधवे
यात्रानिवृत्तौ नृपतेर्नवे गृहे।
स्याद्वेशनं द्वा:स्थमृदुध्रुवोडुभि
जन्मर्क्षलग्नोपचयोदये स्थिरे॥

सूर्य के उत्तरायण होने पर मकर संक्रान्ति से मिथुन संक्रान्ति पर्यन्त, ज्येष्ठ, माघ, फाल्गुन एवं वैशाख मासों में गृह के मुख्य द्वार की दिशा वाले नक्षत्रों में तथा मृदुसंज्ञक (मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा) और ध्रुवसंज्ञक(उ0फा0, उ0षा0, उ0भा0, रोहिणी) नक्षत्रों में जन्मराशि और जन्मलग्न से उपचय (३,६,१०,११) भावों में स्थित लग्नों एवं स्थिर (२,५,८,११) लग्नों में यात्रा के निवृत्ति पर राजा का अपने गृह में पुन: प्रवेश (सपूर्व प्रवेश) तथा नूतन गृह में प्रथम प्रवेश (अपूर्व प्रवेश) शुभ होता है।

गृहप्रवेश तीन प्रकार का होता है –

१. अपूर्व गृहप्रवेश
२. सपूर्व गृहप्रवेश
३. द्वन्द्वाभय प्रवेश

कुछ विद्वानों ने वधूप्रवेश को भी इसी के साथ गणना कर प्रवेश को ४ प्रकार का बतलाया है। वस्तुत: गृहप्रवेश तीन प्रकार का ही माना गया है। वसिष्ठ ने तीनों प्रवेशों का लक्षण इस प्रकार कहा है –

अपूर्वसंज्ञ: प्रथमप्रवेशो
यात्रावसाने तु सपूर्वसंज्ञ:।
द्वन्द्वाभयस्त्वग्निभयादिजात -
स्त्वेवं प्रवेशस्त्रिविध: प्रदिष्ट:॥

अर्थात् नूतननिर्मित गृह में प्रथम प्रवेश अपूर्व संज्ञक एक बार मुहूर्त्त से यात्रा आरम्भ कर यात्रा की समाप्ति पर राजा पुन: मुहूर्त्त के अनुसार ही राज प्रसाद में जब प्रवेश करता है उसे यात्रानिवृत्ति में पुन: प्रवेश को सपूर्व संज्ञक तथा जल, अग्नि एवं राजकोप आदि से पीड़ित व्यक्ति किसी अन्य गृह में प्रवेश करता है उसे द्वन्द्वाभय प्रवेश कहते हैं।

मृदुध्रुवक्षिप्रचरेषु मूलभे वास्त्वर्चनं भूतबलिं च कारयेत्।
त्रिकोणकेन्द्रायधनत्रिगै: शुभैर्लग्ने त्रिषष्ठायगतैश्च पापकै:॥

शुद्धाम्बुरन्ध्रे विजनुर्भमृत्यौ व्यर्कारिरिक्ताचरदर्शचैत्रे
अग्रेऽम्बुपूर्ण कलशं द्विजांश्च कृत्वा विशेद्विश्म भकूटशुद्धम् ।।

मृदुसंज्ञक (मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा) ध्रुवसंज्ञक (तीनों उत्तरा, रोहिणी), चरसंज्ञक (स्वाती, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिष) एवं मूल नक्षत्रों में वास्तुपूजन कर भूतबलि देनी चाहिये। अनन्तर जिस लग्न से त्रिकोण (५,९) केन्द्र (१,४,७,१०) ११,२ और ३ भावों में शुभ ग्रह स्थित हों , ३,६,११ भावों में पापग्रह गये हों, ४,८ भाव शुद्ध ग्रहरहित हों तथा गृहस्वामी के जन्मलग्न या जन्मराशि से अष्टम राशि प्रवेश लग्न में न हो, रविवार, भौमवार, रिक्ता ४,९,१४ तिथि, चर (१,४,७,१०) लग्न अमावस्या और चैत्र मास छोड़कर तथा भकूट (२ × १२ , ५ × ९ , ६ × ८ को छोड़कर) शुद्ध होने पर , जल से पूर्ण कलश और ब्राह्मण को आगे कर गृह में प्रवेश करना चाहिए ।

गृहप्रवेश के पूर्व वास्तुपूजन का विधान है। पूजन के अनन्तर कलश, गौ, ब्राह्मण, आदि के साथ अपने – अपने कुलाचार एवं देशाचार के अनुसार गृहप्रवेश होता है। वसिष्ठ ने गृहप्रवेश की विधि बतलाते हुए लिखा है - शुक्र को पीछे तथा सूर्य को वाम भाग में कर, ब्राह्मणों तथा पूज्य पुरूषों का पूजन कर तोरण, माला, फूल, वितान आदि से सुसज्जित कर आगे पूर्णकलश, स्त्री एवं गीत वाद्य के साथ प्रवेश करना चाहिये।

गृहप्रवेशनिर्देश –

आदौ साम्यायने कार्यं नववास्तु प्रवेशनम् ।
राज्ञा यात्रानिवृत्तौ च यद्वा द्वन्द्वप्रवेशनम् ।।
विधाय पूर्वदिवसे वास्तुपूजां बलिक्रियान् ।
माघ – फाल्गुन- वैशाख – ज्येष्ठमासेषु शोभनः ।।
प्रवेशो मध्यमो ज्ञेयः सौम्यकार्तिकमासयोः।
प्रवेशे निर्णयः प्रोक्तः शास्त्रज्ञैः पूर्वसूरिभिः ।।
गृहारम्भोदिते मासे धिष्ण्ये वारे विशेद् गृहम्
विशेत्सौम्यायने हर्म्यं तृणागारे तु सर्वदा ।।

नवीन गृह में प्रवेश उत्तरायण में करना चाहिये । यात्रा निवृत्ति पर राजा का गृहप्रवेश भी उत्तरायण में शुभ होता है, द्वन्द्वात्मक प्रवेश भी उत्तरायण में ही करना चाहिये।

पहले दिन वास्तु पूजा और बलिदान करके माघ फाल्गुन वैशाख, ज्येष्ठ में गृहप्रवेश होता है तथा कार्तिक, मार्गशीर्ष में गृहप्रवेश मध्यम होता है।

गृहारम्भ के लिये कहे गये नक्षत्र तथा वार के समय सूर्य उत्तरायण में हो तो ईंट, पत्थर मिट्टी के गृह में प्रवेश करना शुभ होता है। तृणनिर्मित गृह में कभी भी शुभ दिन वार में प्रवेश किया जा

सकता है।

शुभयोग निर्देश –

पौष्णे धनिष्ठास्वथ वारूणेषु स्वायंभुवर्क्षेषु त्रिषूत्तरासु।
अक्षीणचन्द्रे शुभवासरे च तिथावरिक्ते च गृहप्रवेशः॥
शुभः प्रवेशो देवेज्यशुक्रयोर्दृश्यमानयोः।
व्यर्कावारतिथिषु रिक्तामावर्जितेषु च ॥
वस्वीज्यान्त्येन्दुवरूणत्वाष्ट्रमित्रस्थिरोडुषु
दिवा वा यदि वा रात्रौ प्रवेशो मंगलप्रदः॥

रेवती, धनिष्ठा, शतभिषा, रोहिणी, तीनों उत्तरा ये नक्षत्र हों, चन्द्रमा क्षीण न हो, रिक्ता के अतिरिक्त तिथि हो तो गृहप्रवेश शुभ होता है।

वृहस्पति एवं शुक्र उदयी हों, रवि, मंगलवार तथा रिक्ता तिथियों को छोड़ कर धनिष्ठा, पुष्य, रेवती, मृगशिरा, शतभिषा, चित्रा, अनुराधा, तीनों उत्तरा नक्षत्र हो तो ऐसे अवसर पर दिन अथवा रात्रि में प्रवेश शुभ होता है।

गृहप्रवेश में कुम्भ चक्र विचार -

वक्त्रे भूरविभात्प्रवेशसमये कुम्भेऽग्निदाहः कृताः।
प्राच्यामुद्वसनं कृतायमगताः लाभः कृताः पश्चिमे॥
श्रीर्वेदाः कलिरूत्तरे युगमिता गर्भे विनाशो गुदे
रामाः स्थैर्यमतः स्थिरत्वमनला कण्ठे भवेत्सर्वदा॥

गृहप्रवेश के समय कुम्भ चक्र बना कर उसके अनुसार शुभाशुभ का निर्णय करके गृहप्रवेश करना चाहिये। सूर्य के नक्षत्र से कलशचक्र के मुख में १ नक्षत्र रखें, इसमें प्रवेश करने से अग्निदाह, इसके पूर्व में ४ नक्षत्र उद्वास , ४ नक्षत्र दक्षिण में लाभ, ४ नक्षत्र पश्चिम में लक्ष्मी प्राप्ति, ४ नक्षत्र उत्तर में, कलह, ४ नक्षत्र गर्भ में गर्भ नाश, ३ नक्षत्र गुद में स्थिरता और ३ नक्षत्र कण्ठ में सुस्थिरता होती है।

गृहारम्भे कुम्भचक्र -

स्थान	**नक्षत्र**	**फल**
मुख	१	अग्निदाह
पूर्व	४	उद्वसन
दक्षिण	४	लाभ
पश्चिम	४	लक्ष्मी
उत्तर	४	कलह

गर्भ	४	विनाश
अध:	३	स्थिरता
कण्ठे	३	स्थिर

वास्तु प्रदीप में गृहप्रवेश विचार -

वैशाखमासेऽपि च फाल्गुनेऽपि ज्येष्ठे प्रवेश: शुभदो गृहस्य।
यात्रानिवृत्तावथवा नवस्य भूमिभुजां द्विर्भवनस्थिरेषु॥

फाल्गुन, वैशाख, ज्येष्ठ में द्विस्वभाव अथवा स्थिर लग्नों में यात्रा से लौटने के पश्चात् अथवा नवीन गृह में प्रवेश शुभ होता है।

माण्डव्यमत में विशेष विचार –

सूत्र शंकु शिला द्वार तुलाच्छादनपूर्वकम् ।
कार्यस्तम्भप्रतिष्ठोक्ते धिष्ण्ये वारे तिथौ तथा॥

सूत्र, शंकु, शिलान्यास, द्वारस्थापन, गृहच्छादन, स्तम्भ प्रतिष्ठा आदि में निर्दिष्ट नक्षत्र, तिथि,वार, योग लग्नों में ही उक्त कार्य करना चाहिये।

बोध प्रश्न –

१. जीर्णगृहप्रवेश के लिये कौन सा मास शुभ है –
क. वैशाख ख. ज्येष्ठ ग. मार्गशीर्ष घ. आषाढ़

२. गृहप्रवेश में किसका विचार नहीं होता –
क. मास ख. तिथि ग. गुरू – शुक्रास्त घ. वर्ष

३. सूर्य उत्तरायण कब होते है –
क. धनु राशि में प्रवेश करते समय ख. मकर राशि में प्रवेश करते समय
ग. वृश्चिक राशि में प्रवेश करते समय घ. तुला राशि में प्रवेश करते समय

४. गृहप्रवेश कितने प्रकार का होता है –
क. 1 ख. 2 ग. 3 घ. 4

५. कुम्भचक्र में मुख का फल है –
क. लक्ष्मी प्राप्ति ख. अग्निदाह ग. कलह घ. उद्वसन

4.4 सारांश

इस इकाई के अध्ययन से आपने जाना कि जीर्ण का अर्थ है – पुराना। जीर्ण गृह में तथा अग्निवृष्टि – राजकोप आदि से गृह नष्ट हो जाने पर नवनिर्मित गृह में भी मार्गशीर्ष, कार्तिक, और

श्रावण मासों में शतभिष, पुष्य, स्वाती तथा धनिष्ठा नक्षत्रों में भी गृहप्रवेश शुभ होता है। ऐसी स्थिति में गुरू और शुक्र के अस्त आदि का विचार आवश्यक नहीं होता है। जीर्ण गृह में भी प्रथम प्रवेश की आवश्यकता पड़ती है। जैसे किसी निर्मित प्राचीन गृह को क्रय कर उसमें प्रवेश करना हो या जीर्ण गृह का जीर्णोद्धार कर पुन: उसमें निवास हेतु प्रवेश करना **जीर्णगृह प्रवेश** होता है। यदि वर्षा, बाढ़, भूकम्प, अग्निदाह, राजकीय आदेश आदि से निर्मित गृह ध्वस्त हो जाय तथा उसी स्थान पर या अन्यत्र सद्य: नवनिर्मित गृह में भी प्रवेश जीर्णगृह की तरह ही उन्हीं मुहूर्त्तों में कर लेना चाहिये। सूर्य के उत्तरायण होने पर मकर संक्रान्ति से मिथुन संक्रान्ति पर्यन्त, ज्येष्ठ, माघ, फाल्गुन एवं वैशाख मासों में गृह के मुख्य द्वार की दिशा वाले नक्षत्रों में तथा मृदुसंज्ञक (मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा) और ध्रुवसंज्ञक(उ0फा0, उ0षा0, उ0भा0, रोहिणी) नक्षत्रों में जन्मराशि और जन्मलग्न से उपचय (३,६,१०,११) भावों में स्थित लग्नों एवं स्थिर (२,५,८,११) लग्नों में यात्रा के निवृत्ति पर राजा का अपने गृह में पुन: प्रवेश (सपूर्व प्रवेश) तथा नूतन गृह में प्रथम प्रवेश (अपूर्व प्रवेश) शुभ होता है। गृहप्रवेश तीन प्रकार का होता है – अपूर्व गृहप्रवेश सपूर्व गृहप्रवेश द्वन्द्वाभय प्रवेश । अत: आपने इस इकाई के अध्ययन से जीर्णगृहप्रवेश को जान लिया है।

4.5 पारिभाषिक शब्दावली

जीर्ण – पुराना

जीर्णोद्धार – पुराने को नया बनाना

सौम्य – बुध

निवृत्ति – छुटकारा

संक्रान्ति – परिवर्तन

मृदुसंज्ञक - मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा

4.6 बोधप्रश्नों के उत्तर

1. ग
2. ग
3. ख
4. ग
5. ख

4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

वास्तुराजवल्लभ

मुहूर्त्तचिन्तामणि

वृहद्वास्तुमाला

ज्योतिष सर्वस्व

4.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1. जीर्णगृहप्रवेश को परिभाषित करते हुये सविस्तार वर्णन कीजिये ।
2. ज्योतिषोक्त जीर्णगृहप्रवेश का मुहूर्त्त लिखते हुये स्पष्ट कीजिये।
3. कुम्भचक्रम का वर्णन कीजिये।

इकाई – 5 शकुन विचार

इकाई की संरचना

5.1 प्रस्तावना

5.2 उद्देश्य

5.3 शकुन विचार

बोध प्रश्न

5.4 सारांश

5.5 पारिभाषिक शब्दावली

5.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

5.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

5.8 सहायक पाठ्यसामग्री

5.9 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई तृतीय खण्ड **गृहारम्भ एवं गृहप्रवेश मुहूर्त्त** के पॉचवी इकाई '**शकुन विचार**' नामक शीर्षक से सम्बन्धित है । इससे पूर्व की इकाईयों में आपने द्वारस्थापन एवं जीर्णगृहप्रवेशका अध्ययन कर लिया है। अब आप इस इकाई में शकुन का अध्ययन करने जा रहे है।

शकुन का अर्थ है- संकेत। ज्योतिष में शकुन विचार द्वारा शुभाशुभ संकेत प्राप्त होते है, जिसके द्वारा उनका शुभाशुभ फल कहा जाता है।

व्यावहारिक रूप में शकुन का अत्यंत उपयोग है। शकुन का ज्ञान व्यक्ति को आम जीवन में भी काफी लाभप्रद सिद्ध हो सकता है। अत: प्रस्तुत इकाई में पाठक के ज्ञानार्थ शकुन का वर्णन किया जा रहा है।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप-

1. शकुन क्या है। समझा सकेंगे।
2. शकुन के महत्त्व को समझा सकेंगे।
3. शकुन विधि को समझ लेंगे।
4. शकुन के स्वरूप वर्णन करने में समर्थ होंगे।
5. ज्योतिषोक्त शकुन का विश्लेषण कर सकेंगे ।

5.3 शकुन विचार

शकुन हमारे भविष्य में होने वाली घटना का संकेत देते हैं। प्राचीन काल में ये शकुन लोकवार्ता के द्वारा ही पीढ़ी दर पीढ़ी पहुंचते रहे हैं। कुछ लोग इन शकुनों को अंधविश्वास मानते हैं। फिर भी ज्यादातर लोग इन शकुनों की उपेक्षा नहीं करते। हर मनुष्य कभी कभी किसी ना किसी रूप-में शकुनों को मानता है। शकुनों के परिणाम उतने ही प्राचीन हैं जितनी मनुष्य जाति। न केवल भारत में अपितु विश्व भर में ये शकुन प्रचलित हैं। शकुन का संकेत हमारे वेदों, पुराणों व धार्मिक ग्रंथों में भी मिलता है। महाभारत व रामायण जैसे महाकाव्यों में भी कई जगह शकुनों की बात कही गई है। ज्योतिष में भी शकुनों पर विशेष विचार किया जाता है। प्रश्न कुंडली की विवेचना में शकुनों का महत्व विशेष है। शुभ शकुनों में पूछे गये प्रश्न सफल व अपशकुनों में पूछे गये प्रश्न असफल होते देखे गये हैं। शकुन पृथ्वी से, आकाश से, स्वप्नों से व शरीर के अंगों से संबंधित हो सकते हैं। किसी भी कार्य के वक्त घटित होने वाले प्राकृतिक व अप्राकृतिक तथ्य अच्छे व बुरे फल की भविष्यवाणी करने में सक्षम होते है।

अनुराधा ज्येष्ठा मूल हस्त मृगसिरा अश्विनी पुनर्वसु पुष्य और रेवती ये नक्षत्र यात्रा के लिये शुभ है,

आर्द्रा भरणी कृतिका मघा उत्तरा विशाखा और आश्लेषा ये नक्षत्र त्याज्य है।

इनके इलावा बाकी नक्षत्र मध्यम माने गये है, षष्ठी द्वादशी रिक्ता तथा पर्व तिथियां भी त्याज्य है, मिथुन कन्या मकर तुला ये लग्न शुभ है। यात्रा में चन्द्रबल तथा शुभ शकुनो का भी विचार करना चाहिये।

दिकशूल

शनिवार और सोमवार को पूर्व दिशा में यात्रा नही करनी चाहिये,

गुरुवार को दक्षिण दिशा की यात्रा त्याज्य करनी चाहिये,

रविवार और शुक्रवार को पश्चिम की यात्रा नही करनी चाहिये,

बुधवार और मंगलवार को उत्तर की यात्रा नही करनी चाहिये,

इन दिनो में और उपरोक्त दिशाओं में यात्रा करने से दिकशूल माना जाता है.

सर्व दिशागमनार्थ शुभ नक्षत्र

हस्त रेवती अश्वनी श्रवण और मृगसिरा ये नक्षत्र सभी दिशाओं की यात्रा के लिये शुभ बताये गये है,

जिस प्रकार से विद्यारम्भ के लिये गुरुवार श्रेष्ठ रहता है,

उसी प्रकार पुष्य नक्षत्र को सभी कार्यों के लिये श्रेष्ठ माना जाता है.

योगिनी विचार

प्रतिपदा और नवमी तिथि को योगिनी पूर्व दिशा में रहती है,

तृतीया और एकादशी को अग्नि कोण में

त्रयोदशी को और पंचमी को दक्षिण दिशा में

चतुर्दशी और षष्ठी को पश्चिम दिशा में

पूर्णिमा और सप्तमी को वायु कोण में

द्वादसी और चतुर्थी को नैऋत्य कोण में,

दसमी और द्वितीया को उत्तर दिशा में

अष्टमी और अमावस्या को ईशानकोण में योगिनी का वास रहता है,

वाम भाग में योगिनी सुखदायक,पीठ पीछे वांछित सिद्धि दायक,दाहिनी ओर धन नाशक और सम्मुख मौत देने वाली होती है.

यात्रा हेतु तिथि विचार

यात्रा के लिये प्रतिपदा श्रेष्ठ तिथि मानी जाती है,

द्वितीया कार्यसिद्धि के लिये,

तृतीया आरोग्यदायक,

चतुर्थी कलह प्रिय,

पंचमी कल्याणप्रदा

षष्ठी कलहकारिणी

सप्तमी भक्षयपान सहित,

अष्टमी व्याधि दायक

नवमी मौत दायक,

दशमी भूमि लाभ प्रद,

एकादशी स्वर्ण लाभ करवाने वाली,

द्वादशी प्राण नाशक,और

त्रयोदशी सर्व सिद्धि दायक होती है, त्रयोदशी चाहे शुक्ल पक्ष की हो या कृष्ण पक्ष की सभी सिद्धियों को देती है, पूर्णिमा एवं अमावस्या को यात्रा नही करनी चाहिये, तिथि क्षय मासान्त तथा ग्रहण के तीन दिन यात्रा नुकसान दायक मानी गयी है।

पंथा राहु विचार

दिन और रात को बराबर आठ भागों में बांटने के बाद आधा आधा प्रहर के अनुपात से विलोम क्रमानुसार राहु पूर्व से आरम्भ कर चारों दिशाओं में भ्रमण करता है, अर्थात पहले आधे प्रहर पूर्व में दूसरे में वायव्य कोण में तीसरे में दक्षिण में चौथे में ईशान कोण में पांचवें में पश्चिम में छठे में अग्निकोण में सातवें में उत्तर में तथा आठवें में अर्ध प्रहर में नैऋत्य कोण में रहता है।

राहु आदि का फल

राहु दाहिनी दिशा में होता है तो विजय मिलती है,योगिनी बायीं तरह सिद्धि दायक होती है,राहु और योगिनी दोनो पीछे रहने पर शुभ माने गये है,चन्द्रमा सामने शुभ माना गया है.

यात्रा या वार परिहार

रविवार को पान, सोमवार को भात (चावल),मंगलवार को आंवला,बुधवार को मिष्ठान,गुरुवार को दही,शुक्रवार को चटपटी वस्तु और शनिवार को माह यानी उडद खाकर यात्रा पर जाने से दिशा शूल या काम नही बिगडता है।

प्राचीन काल से ही भारत में शकुन द्वारा शुभाशुभ विचार करके यात्रा या किसी नवीन कार्य के आरम्भ करने की परंपरा रही है। प्रकृति से प्राप्त संकेत ही शकुन का आधार हैं। अच्छी या बुरी किसी भी महत्वपूर्ण घटना से पूर्व प्रकृति में कुछ विकार उत्पन्न होता है। हमारे ऋषि मुनियों ने इन प्राकृतिक विकारों का अपने अनुभव के आधार पर शुभाशुभ वर्गों में वर्गीकरण किया। वास्तव में शकुन स्वयम न तो शुभ हैं न अशुभ , ये केवल इष्ट अथवा अनिष्ट के सूचक मात्र हैं । किसी महत्वपूर्ण कार्य को आरम्भ करते समय या उसके लिए यात्रा पर जाते समय शकुन पर विचार किया जाता है। शुभ शकुन होने पर कार्य सिध्धि तथा अशुभ शकुन होने पर कार्य की हानि का संकेत मिलता है। प्राचीन राजा –महाराजा भी अपने दरबार में विद्वान शकुनी को महत्वपूर्ण स्थान देते थे

तथा प्रत्येक कार्य से पूर्व उसका परामर्श लेते थे।

पुराणों में शकुन विचार

पुराणों में अनेक स्थानों पर शकुन के विषय में लिखा गया है। रामायण तथा महाभारत में भी शकुन के विषय में विस्तृत वर्णन मिलता हें। अग्नि पुराण के अनुसार शकुन दो प्रकार के होते हैं –

1.दीप्त शकुन

2.शांत शकुन

काल की सूक्ष्म गति को जानने वाले ऋषि मुनियों ने दीप्त शकुन का फल अशुभ व कार्य नाशक कहा है। दीप्त शकुन के छह भेद कहे गए हैं।

1. वेला दीप्त शकुन – शकुन का विचार करते समय दिन में विचरने वाले प्राणी रात्री को तथा रात्रिचर प्राणी दिन में शकुन कारक हों तो वेलादीप्त शकुन कहा जाता है। शकुनकालीन लग्न या नक्षत्र पाप ग्रह से पीड़ित हो तो भी वेला दीप्त शकुन होता है।

2. दिग्दीप्त शकुन – सूर्य जिस दिशा में स्थित हो उसे ज्वलिता ,जिस दिशा से आये हों उसे धूमिता तथा जिस दिशा में जाने वाले हों उसे अन्गारिणी कहते हैं। ये तीनों दिशाएँ दीप्त कही गयी हैं। दीप्त दिशा में होने वाले शकुन को दिग्दीप्त कहा गया है जिसका फल अशुभ व कार्य नाशक होता है।

3. देश दीप्त शकुन – जंगली पशु –पक्षी का गाँव व शहर में तथा शहर के पालतू पशु –पक्षियों का जंगल में दिखना देश दीप्त शकुन है। शकुन यदि अशुभ स्थान पर दिखाई दे तो भी देश दीप्त शकुन होता है जिस का फल अशुभ कहा गया है।

4. क्रिया दीप्तशकुन- कोई पुरुष,स्त्री या पशु पक्षी अपने स्वभाव के विरुद्ध आचरण करता हुआ दिखाई दे तो क्रिया दीप्त शकुन कहलाता है।

5. रुतदीप्त शकुन – फटी हुई ,कर्कश एवम रोने की आवाज का सुनाई देना रुतदीप्त शकुन कहलाता है।

6.जाति दीप्त शकुन – मांसाहारी प्राणियों का दर्शन जाति दीप्त शकुन कहलाता है जिसका फल कार्य की असफलता का सूचक है।

शांत शकुन

उपरोक्त सभी दीप्त शकुनों से विपरीत शकुनों वाले सभी शकुन शांत शकुन होते हैं जिनका दर्शन या श्रवण कार्य में सफलता का संकेत देता है। दीप्त व शांत दोनों ही शकुन दिखाई दें तो कठिनता से कार्य सिध्धि समझनी चाहिए।

शुभ संज्ञक शकुन

यात्रा ,प्रश्न या किसी कार्य के आरम्भ में निम्नलिखित पदार्थों का दर्शन या श्रवण कार्य में सफलता का सूचक होता है –

श्वेत पुष्प, भरा हुआ घड़ा, प्रज्ज्वलितअग्नि, घास, ताजा गोबर, सोना ,चांदी, रत्न, मत्स्य, सरसों, मूंग, तलवार, छाता, राजचिन्ह, फल, घी, दही, दूध, चावल, दर्पण, मधु, शंख, ईख, शुभ वचन , भजन कीर्तन , गौ, अश्व, हाथी, बकरा, मन में संतोष।

नारद पुराण के अनुसार सुन्दर स्त्री, चन्दन, चूना, पालकी, खाद्य पदार्थ , धुला वस्त्र , श्वेत बैल , ब्राह्मण, नगाड़ा, मृदंग, वीणा, वेद मन्त्र , आरती, मंगल गीत शुभ सूचक शकुन होते हैं।

गरुड़ पुराण के अनुसार अपने दाएँ ओर हिरन, सर्प, वानर, बिलाव, कुत्ता, सूअर, नीलकंठ, नेवला, व चूहा तथा बाएं ओर गीदड, ऊंट व गधे का दिखना शुभ होता है। ब्राह्मण कन्या, सदाचारी व्यक्ति , वेणु, शंख व संगीत ध्वनि, पूर्व पश्चिम वायव्य कोण में छींक कार्य की सफलता का परिचायक होती है।

अग्नि पुराण के अनुसार घर के मुख्य द्वार पर कौए का बार बार आना जाना किसी मेहमान के आगमन का सूचक है। कौआ किसी व्यक्ति के सामने पीले रंग के पदार्थ डाल दे तो सोने की , कच्चा मांस डालने पर धन , मिटटी का डला गिराए तो भूमि , रत्न गिराए तो राज्य प्राप्ति का सूचक है। किसी अशुभ स्थान पर स्थित कौए का आवाज करना कार्य नाश की सूचना देता है। कुत्ते का व्यक्ति के बाएं अंग को सूंघना, मुख में मांस या जूता ले कर सामने आना शुभ सूचक है। मूत्र त्याग कर कुत्ता किसी शुभ स्थान ,वृक्ष या मांगलिक पदार्थ के पास जाए तो कार्य सिध्धि का सूचक है|

अशुभ संज्ञक शकुन

यात्रा, प्रश्न या किसी कार्य के आरम्भ में निम्नलिखित पदार्थों का दर्शन या श्रवण कार्य में असफलता का सूचक होता है।

कपास, सूखा गोबर, अंगार, नग्न साधु, लोहा, कीचड, चमड़ा, बाल, पागल, नपुंसक ,चांडाल, गर्भिणी , विधवा , भूसा, राख, शव, हड्डी, टूटा बर्तन इत्यादि।

कौआ मकान के ऊपर लाल रंग की या जली वस्तु डाल दे तो मकान में आग लगने का भय होता है जिस पदार्थ को कौआ मकान से उठा कर ले जाता है उस से सम्बंधित पदार्थ की हानि घर के स्वामी की होती है |सामने से कौआ कांव –कांव करता आये तो यात्रा में असफलता मिलती है। किसी सूखे या खोखले पेड़ पर बैठा कौआ आवाज करे तो कार्य की हानि करता है। बाहर से भौंकता या रोता कुत्ता घर के अंदर आये तो गृह स्वामी पर कष्ट आने का संकेत है। कुत्ता मार्ग रोक कर खड़ा हो तो यात्रा में चोरी का भय होता है। मुख में हड्डी ,रस्सी ,फटा कपडा लिए हुए कुत्ते का दिखना अशुभ सूचक है।

गरुड़ पुराण के अनुसार अग्नि कोण में छींक होने पर शोक व संताप ,दक्षिण में हानि , नैऋत्य में शोक, उत्तर में कलह तथा ईशान में मृत्यु तुल्य कष्ट की परिचायक है।

नारद पुराण के अनुसार चर्बी , पतित, अंगार, जटाधारी, वन्ध्या स्त्री, गिरगिट, नमक, सूखी घास,

भूखा नंगा, शरीर में तेल लगाता हुआ व्यक्ति, रात्रि में कौए या दिन में कबूतर का क्रन्दन कार्य नाशक होता है।

ज्योतिष शास्त्र में शकुन विचार

ज्योतिष शास्त्र के संहिता विभाग में शुभाशुभ शकुनों का विस्तृत वर्णन मिलता है। बृहत्संहिता में शकुनाध्याय में लिखा है –

अन्य जन्मांतर कृतं कर्म पुंसां शुभाशुभं ।

यत्तस्य शकुन: पाकं निवेदयति गच्छताम ।।

अर्थात मनुष्य ने पूर्व जन्म में जो भी शुभाशुभ कर्म किये हैं शकुन उनके शुभाशुभ फल को प्रकाशित करता है।

बृहत्संहिता, योगयात्रा ,भद्रबाहू संहिता ,प्रश्न मार्ग व वसंतराज शाकुन इत्यादि ग्रंथों के आधार पर निम्नलिखित प्रकार से शकुनों का शुभाशुभ फल जानना चाहिए –

शंख व वेद ध्वनि , पुराण कथा , नीलकंठ , मोर , चकोर , कीचड से लिप्त सूअर की पीठ पर बैठा कौआ , पंखा , चन्दन, गौ, बकरा, निम्बू फल , ध्वजा, भरा हुआ पात्र , पगड़ी , स्वस्तिक , सरसों , दर्पण ,जल , सुरमा , वीणा , स्वर्णपात्र , घी , मधु, गोरोचन, कुमारी कन्या , कमल पुष्प, मत्स्य ,ब्राह्मण , अग्नि, आम, खाद्य पदार्थ , रत्न, चावल, देव मूर्ति, अलंकार, पान,आसन, शरीर के दायें अंगों का फडकना , नवीन वस्त्र , बंधा हुआ पशु ,चांदी, वनस्पति का दर्शन , स्पर्श या वर्णन सफलता देने वाला है। सर्प , खरगोश, सूअर व गोह का केवल नाम उच्चारण ही इष्ट कारक है इनका दर्शन या आवाज नहीं। रीछ ,भालू,वानर का शब्द व दर्शन शुभ है पर इनका नाम उच्चारण नहीं। पूर्व दिशा में अश्व या श्वेत रंग के पदार्थ , दक्षिण में शव व मांस , पश्चिम में कन्या व दही ,उत्तर में ब्राह्मण , साधु व गौ के दर्शन कार्य सिध्धि का संकेत करते हैं।

अंगार , राख, कीचड , कपास, तुष, खुले केश , काली वस्तु, लोहा, वृक्ष की छाल, पाषाण , विष्ठा औषधि तेल , चमड़ा, खाली या टूटा पात्र, नमक, लस्सी, लोहे की जंजीर , उपला , तेज वायु का चलना , तेज वर्षा, वमन, सर मुंडाया व्यक्ति, छिन्न अंग, रोगी, रजस्वला या गर्भिणी स्त्री, मद्यप ,जटाधारी, कलह, पशुओं या पक्षियों की आपस में लड़ाई, वस्त्र खिसक कर नीचे गिरना, शरीर के वाम अंगों का फडकना, सन्यासी, नपुंसक, रोता हुआ प्राणी अशुभ फल का संकेत करते हैं।

आने वाले समय में क्या होगा ये तो किसी को पता नहीं होता। लेकिन पशु-पक्षी और जीव-जंतु भी विभिन्न तरह से हमें भविष्य में होने वाली घटनाओं से अवगत कराते हैं। घरों में आमतौर पर पाई जाने वाली छिपकली भी भविष्य में होने वाली कई घटनाओं के बारे में संकेत करती है। इसका वर्णन शकुन शास्त्र में मिलता है। तो जानिए छिपकली से जुड़े शकुन और अपशकुनों के बारे में।

1 - नए घर में प्रवेश करते समय यदि गृहस्वामी को छिपकली मरी हुई व मिट्टी लगी हुई दिखाई दे तो

उसमें निवास करने वाले लोग रोगी हो सकते हैं, ऐसा शकुन शास्त्र में लिखा है। इस अपशकुन से बचने के लिए पूरे विधि-विधान से पूजन करने के बाद ही नए घर में प्रवेश करना चाहिए।

2 - अगर छिपकली समागम करती मिले तो किसी पुराने मित्र से मिलना हो सकता है। लड़ती दिखे तो किसी दूसरे से झगड़ा संभव है और अलग होती दिखे तो किसी प्रियजन से बिछुडऩे का दु:ख सहन करना पड़ सकता है।

3 - शकुन शास्त्र के अनुसार दिन में भोजन करते समय यदि छिपकली का बोलना सुनाई दे शीघ्र ही कोई शुभ समाचार मिल सकता है या फिर कोई शुभ फल प्राप्त हो सकता है। हालांकि ये घटना बहुत कम होती है क्योंकि छिपकली अधिकांश रात के समय बोलती है।

4 - छिपकली अगर माथे पर गिरती है तो संपत्ति मिलने की संभावना बढ़ जाती है।

5 - यदि छिपकली आपके बालों पर गिरती है, इसका मतलब मृत्यु सामने खड़ी है।

6 - दाहिने कान पर छिपकली का गिरना यानी आभूषण की प्राप्ति होगी। बाएं कान पर छिपकली का गिरना यानी आयु वृद्धि।

7 - नाक पर छिपकली गिरना यानी जल्द ही भाग्योदय होगा।

8 - मुख पर छिपकली गिरना यानी मधुर भोजन की प्राप्ति होगी।

9 - बाएं गाल पर छिपकली गिरना यानी पुराने मित्र से मुलाकात होगी। दाहिने गाल पर छिपकली गिरना यानी आपकी उम्र बढ़ेगी।

10 - गर्दन पर छिपकली गिरने का मतलब यश की प्राप्ति होगी।

11 - दाढ़ी पर छिपकली गिरने का मतलब आपके सामने जल्दा ही कोई भयावह घटना हो सकती है।

12 - मूंछ पर छिपकली गिरना यानी सम्मापन की प्राप्ति।

13 - भौंह पर छिपकली गिरना यानी धन हानि।

14 - दाहिनी आंख पर छिपकली गिरने का मतलब किसी दोस्तत से मुलाकात होगी। बाईं आंख पर छिपकली गिरने का मतलब जल्दख ही कोई बड़ी हानि होगी।

15- कंठ पर छिपकली गिरने का मतलब शत्रुओं का नाश होगा।

16 - दाहिने कंधे पर छिपकली गिरने पर विजय की प्राप्ति होती है। बाएं कंधे पर अगर छिपकली गिरे तो नए शत्रु बनते हैं।

17 - दाहिनी भुजा पर छिपकली गिरे तो धन लाभ मिलता है। बायीं भुजा पर छिपकली गिरने से संपत्ति छिनने की आशंका बढ़ती है। दाहिनी हथेली पर छिपकली गिरने से कपड़े मिलते हैं। बाईं हथेली पर छिपकली गिरने पर धन की हानि होती है।

18 - छाती के दाहिनी ओर छिपकली गिरने से जल्द ही ढेर सारी खुशियां मिलती हैं जबकि बाईं

ओर गिरने से घर में ज्यादा क्लेश होता है।

19 - पेट पर छिपकली गिरने से आभूषण की प्राप्ति होती है।

20 - कमर के बीच में अगर छिपकली गिरे तो आर्थिक लाभ मिलता है। पीठ पर दाहिनी ओर छिपकली गिरने से सुख मिलता है जबकि बाईं तरफ छिपकली गिरने का मतलब रोग का दस्तक देना है। पीठ पर बीच में अगर छिपकली गिरती है तो घर में कलह होती है।

21 - नाभि पर छिपकली गिरने से मनोकामनाएं पूरी होती हैं। दाहिनी जांघ पर छिपकली गिरने से सुख मिलता है। वहीं बाईं जांघ पर छिपकली गिरने से दु:ख ही दु:ख यानी शारीरिक पीड़ा।

बोध प्रश्न -

१. शकुन का अर्थ है –

क. रास्ता ख. शुभ संकेत ग. अपशकुन घ. कोई नहीं

२.प्रतिपदा और नवमी तिथि को योगिनी किस दिशा में रहती है –

क. दक्षिण दिशा ख. पश्चिम दिशा ग. पूर्व घ. उत्तर दिशा

३.अग्नि पुराण के अनुसार शकुन कितने प्रकार के होते है –

क. ३ ख. ४ ग. ५ घ. २

४. वृहत्संहिता के रचयिता है –

क. भास्कराचार्य ख. आर्यभट्ट ग. वराहमिहिर घ. कमलाकर भट्ट

५. नन्दा संज्ञक तिथि है –

क. १,११,६ ख. २,७,१२ ग. ३,८,१३ घ. ९,४,१४

अन्य शकुन –

गोधाजाहकसूकराहिशशकानां कीर्तनं शोभनं
नो शब्दो न विलोकनं च कपिऋक्षाणामतो व्यत्यय:।
नद्युत्तारभयप्रवेशसमरे नष्टार्थसंवीक्षणे
व्यत्यस्ता: शकुना नृपेक्षणविधौ यात्रोदिता: शोभना: ॥

गोह, जाहक (अंगसंकोची पशु), सर्प एवं खरगोश का नामोच्चारण ही शुभ होता है, परन्तु इन का शब्द या दर्शन यात्रा के समय शुभ नहीं होता है। बन्दर और भालू का गोह आदि से विपरीत फल होता है, अर्थात् बन्दर और भालू का शब्द (बोलना) और दर्शन होना शुभ तथा नामोच्चारण अशुभ होता है।

नदी पार करते समय, भय के उपस्थित होने पर या भय से भागते समय, गृहप्रवेश, युद्ध तथा नष्ट वस्तु के अन्वेषण के समय विपरीत शकुन ही शुभ अर्थात् अशुभ शकुन शुभ फलदायक तथा शुभ

शकुन अशुभ फलदायक होते हैं तथा राजा के दर्शन सम्बन्धी कार्यों में यात्रा प्रसंग में बताये गये शुभ शकुन ही शुभदायक होते हैं।

वामांगे कोकिला पल्ली पोतकी सूकरी रला।

पिंगला छुच्छुका श्रेष्ठाः शिवाः पुरूषसंज्ञिताः।।

कोयल, छिपकली, पोतकी, सूकरी रला (एक प्रकार का पक्षी) , पिंगला भैरवी, छछुन्दर, श्रृंगाली (गीदड़ी) तथा पुरूष संज्ञक पक्षी (कबूतर, खंजन, तित्तिर, हंसा आदि) यात्रा के समय वाम भाग में शुभ माने जाते है।

5.4 सारांश

इस इकाई के अध्ययन से आपने जाना कि शकुन हमारे भविष्य में होने वाली घटना का संकेत देते हैं। प्राचीन काल में ये शकुन लोकवार्ता के द्वारा ही पीढ़ी दर पीढ़ी पहुंचते रहे हैं। कुछ लोग इन शकुनों को अंधविश्वास मानते हैं। फिर भी ज्यादातर लोग इन शकुनों की उपेक्षा नहीं करते। हर मनुष्य कभीकभी किसी ना किसी रूप में शकुनों को- मानता है। शकुनों के परिणाम उतने ही प्राचीन हैं जितनी मनुष्य जाति। न केवल भारत में अपितु विश्व भर में ये शकुन प्रचलित हैं। शकुन का संकेत हमारे वेदों, पुराणों व धार्मिक ग्रंथों में भी मिलता है। महाभारत व रामायण जैसे महाकाव्यों में भी कई जगह शकुनों की बात कही गई है। ज्योतिष में भी शकुनों पर विशेष विचार किया जाता है। प्रश्न कुंडली की विवेचना में शकुनों का महत्व विशेष है। शुभ शकुनों में पूछे गये प्रश्न सफल व अपशकुनों में पूछे गये प्रश्न असफल होते देखे गये हैं। शकुन पृथ्वी से, आकाश से, स्वप्नों से व शरीर के अंगों से संबंधित हो सकते हैं। किसी भी कार्य के वक्त घटित होने वाले प्राकृतिक व अप्राकृतिक तथ्य अच्छे व बुरे फल की भविष्यवाणी करने में सक्षम होते है।

5.5 पारिभाषिक शब्दावली

शकुन – शुभ संकेत

अप्राकृतिक – जो प्राकृतिक न हों

रिक्ता – ९,४,१४

नन्दा – १,११,६

जया - ३,८,१३

वृहत्संहिता – वराहमिहिर द्वारा संहिता ग्रन्थ

5.6 बोधप्रश्नों के उत्तर

1. ख

2. ग

3. घ

4. ग

5. क

5.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

वास्तुराजवल्लभ

मुहूर्त्तचिन्तामणि

वृहद्वास्तुमाला

ज्योतिष सर्वस्व

5.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1. शकुन को परिभाषित करते हुये सविस्तार वर्णन कीजिये ।
2. शकुन के कितने प्रकार है। स्पष्ट कीजिये।
3. सम्प्रति ज्योतिष में शकुन का क्या योगदान है। वर्णन कीजिये।